5.2

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
९

महाकविकालिदासविरचितं

रघुवंशम्

मल्लिनाथकृत-सञ्जीविनी-व्याख्या-समलङ्कृतम्
'विमला'-'चन्द्रकला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतम्

व्याख्याकारः—
डॉ० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
(व्याकरण-साहित्य-वेदान्त-सांख्ययोग-धर्मशास्त्र-पुराणेतिहासाचार्यः)
लब्धावकाशप्राध्यापकः, पुराणेतिहास-भूगोल-संस्कृति-विभागाध्यक्षश्च
वाराणसेय श्रीसम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

६

महाकविकालिदासविरचितं

रघुवंशम्

मल्लिनाथकृत-सञ्जीविनी-व्याख्या-समलङ्कृतम्

तथैव च

'विमला'-'चन्द्रकला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतम्

(षष्ठ-सप्तमसर्गात्मकम्)

व्याख्याकारः—

डॉ० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

(व्याकरण-साहित्य-वेदान्त-सांख्ययोग-धर्मशास्त्र-पुराणेतिहासाचार्यः)

लब्धावकाशप्राध्यापकः, पुराणेतिहास-भूगोल-संस्कृति-विभागाध्यक्षश्च

वाराणसेय श्रीसम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशक—
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन
पोस्ट बाक्स नं० १२९
वाराणसी २२१००१

सर्वाधिकार सुरक्षित
चतुर्थ संस्करण १९८२
मूल्य ६-००

अन्य प्राप्तिस्थान—
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
पोस्ट बाक्स नं० ६९
वाराणसी २२१००१

मुद्रक—
श्रीजी मुद्रणालय
वाराणसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

9

RAGHUVAMŚAM

OF

KĀLIDĀSA

(*Cantos VI–VII*)

WITH 'SANJIVINI' COMMENTARY OF MALLINATHA

and

'Vimala'-'Chandrakala' Sanskrit & Hindi Commentaries

By

Dr. Shrikrishnamani Tripathi

Former Professor & Head of the Deptt. of Puranetihas

Sri Sampurnananda Sanskrit Vishwavidyalaya, Varanasi

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

© CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(*Oriental Booksellers & Publishers*)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 129
VARANASI 221001

Fourth Edition
1982
Price Rs. 6-00

Also can be had of
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(*Oriental Booksellers & Publishers*)
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 69
VARANASI 221001

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राक्कथन

स विश्ववन्द्यो महतां कवीनां गुरुर्मनीषी कविकालिदासः।
यत्काव्यपीयूषरसप्रवाहः स्वादामितानन्दमयो हि लोकः॥

कविकुलकलाधर कविवर कालिदास की कमनीयकलेवर कविता विश्व के किस सहृदय-हृदय को आनन्दमग्न नहीं कर देती ? महाकवि कालिदास हमारे राष्ट्रीय कवि थे तथा भारतीय संस्कृति के प्रमुख परिपोषक थे। भारत की संस्कृति इनकी काव्यवाणी में बोलती है और इनके नाटकों में अपना मनोरम रूप दिखाकर मानवमात्र के हृदय का मनोरञ्जन करती है। कालिदास ने अपने काव्य-चमत्कार से समस्त संसार में ख्याति प्राप्त की है। इनके काव्यों में पदलालित्य, रचनाचातुर्य, कल्पनाशक्ति, प्रकृतिवर्णन एवं चरित्र-चित्रण पढ़कर विश्व का प्रत्येक पाठक प्रफुल्ल हो उठता है, इनमें विचारगाम्भीर्य है, संसार का अनुभव है, बहुमूल्य सिद्धान्त हैं, इनके पदों से उपदेश भी मिलता है और इनकी उक्तियाँ आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन करती हैं। इनकी कविता में प्रसादगुण की अगाधता, माधुर्य का मधुर सन्निवेश, कोमलकान्तपदावली का प्राचुर्य, उपमा की अपूर्वता, अलङ्कारों की रमणीयता, छन्दों की छटा और भावसौष्ठव पर्याप्तमात्रा में विद्यमान हैं। इनके काव्यों को जिस दृष्टि से देखा जाय उसी से काव्यकला की कमनीयता प्रकट होती है। इनकी कविता में सरस, सरल, सुबोध तथा सुन्दर शब्द एवं भावों का साम्राज्य, सहृदयों की तो बात ही क्या है, साधारण मनुष्य के मन को भी मुग्ध कर देता है। व्यंग्यार्थप्रतिपादन की विलक्षण शैली, रसप्रकर्ष का प्रकाशन, विस्तृत विषय का थोड़े में वर्णन, वर्ण्य-विषय को सुन्दर क्रम से रखकर रोचक बनाना, स्वाभाविक भाव के द्वारा लोकोत्तरानन्दप्रदान का ढंग आदि कालिदास की कविता के विशेष गुण हैं।

कालिदास संस्कृत साहित्य के अद्वितीय महाकवि माने जाते हैं। इनकी कविता की मधुरिमा के सामने अन्य कवियों की कविता फीकी पड़ जाती है। आपने जैसा मानवहृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का निरीक्षण किया है वैसा अन्य कवियों ने नहीं। कालिदास अन्तर तथा बाह्य दोनों जगत् के सूक्ष्म निरीक्षक कवि हैं।

यों तो कालिदास ने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर सभी रसों का सन्निवेश किया है, पर ये प्रधान रूप से श्रृङ्गार रस के रसिक कवि हैं। इनकी रचनाओं में श्रृङ्गार रस ओत-प्रोत है। इनके काव्यों में सम्भोग-श्रृङ्गार का प्रकाशमान रूप तथा विप्रलम्भ-श्रृङ्गार की करुणामूर्ति पाठक एवं श्रोताओं के हृदय को चमत्कृत कर देते हैं। मेघदूत में विप्रलम्भ-श्रृङ्गार और कुमारसम्भव में सम्भोग-श्रृङ्गार का प्राचुर्य है। सम्भोग-श्रृङ्गार की अपेक्षा इनका विप्रलम्भ-श्रृङ्गार उच्चकोटि का होता है। मेघदूत का उदाहरण देखिए—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥

पर्वत के चट्टानों पर गैरिकादि धातुओं से प्रणयकुपिता अपनी प्रियतमा की मूर्ति बनाकर क्षमा के लिए उसके चरणों पर गिरने का प्रयत्न करते समय अश्रुप्रवाह उमड़ आने से कल्पित सम्भोग में भी बाधा पड़ने के कारण क्षुब्धहृदय यक्ष का क्रूर कृतान्त-विषयक उपालम्भ पढ़कर किस सहृदय का हृदय व्यथित नहीं हो उठता है ? निर्जीव मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के पास प्रेममय सन्देश भेजनेवाले यक्ष के प्रेमोन्माद को पढ़कर कालिदास की काव्यकला की प्रशंसा किए बिना कौन रह सकता है ?

कालिदास के करुणरस का वर्णन भी स्वाभाविक होता है। कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग में शङ्कर की क्रोधाग्नि से कामदेव के भस्मसात् हो जाने पर रति का विलाप तथा रघुवंश के अष्टम सर्ग में आकाश से गिरी हुई पुष्पमाला के आघात से इन्दुमती के मर जाने पर अज का विलाप करुण रस के मर्मस्पर्शी उदाहरण हैं। इन्दुमती के मर जाने पर अज विलाप करते हुए कहते हैं—

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥

कुमारसम्भव में भगवान् शङ्कर के ललाटस्थ तृतीय नेत्र से निर्गत अग्नि से भस्मसात् हुए अपने पति के शरीर को देखकर रति विलाप करती हुई कहती है—

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला को अपने पति के घर जाते समय कवि ने ऐसा मर्मस्पर्शी करुण रस का चित्र अङ्कित किया है कि विषयसुख से विमुख कण्व जैसे धीर महर्षि भी रोये बिना नहीं रहे—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥

कालिदास की कविता में हास्य रस भी उच्चकोटि का है। इनकी कविता पढ़कर पाठक मुस्करा देता है, ठहाके की हँसी नहीं हँसता। कुमारसम्भव महाकाव्य के पञ्चमसर्ग में पार्वती के आश्रम पर आकर भगवान् शङ्कर की निन्दा करता हुआ कपटवटु पार्वती का उपहास करता हुआ कहता है—

इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना यदूढया वारणराजहार्यया।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साहित्यजगत् के समालोचक शेक्सपियर को अन्तर्जगत् का तथा कालिदास को बाह्यजगत् का कलाकार कवि कहते हैं। प्रकृति के मनोरम चित्रण में कालिदास अद्वितीय हैं। इनके प्रकृतिचित्रण में रमणीयता, भव्यता, सजीवता तथा स्वाभाविकता ओत-प्रोत है।

प्रकृति के साथ कालिदास की अपूर्व सहानुभूति है। प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन जैसा इन्होंने किया है वैसा संस्कृत जगत् का कोई अन्य कवि नहीं कर पाया है। इन्होंने प्रकृति के अनुपम दृश्यों का सच्चा चित्र खींचा है। ये कोमल रूप के उपासक हैं, भवभूति के समान उग्र रूप में इनका प्रेम नहीं है। ये प्रायः शान्त तपोवन, नदीतट, उपवन, प्रासाद, भ्रमर, मृग तथा कोकिल आदि के वर्णन करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। इन्हें विन्ध्याचल पर्वत की अपेक्षा हिमालय से अधिक प्रेम है। इन्होंने अपने कुमार-सम्भव में हिमालय का सजीव वर्णन किया है। इन्हें ६ ऋतुओं में ग्रीष्म और वसन्तऋतु बहुत प्रिय हैं।

जहाँ पाश्चात्त्य कवियों के प्रकृतिवर्णन नग्न होते हैं वहाँ भारतीय कवियों का प्रकृति-वर्णन अलंकृत होता है। पाश्चात्त्य कवि बिना किसी आवरण के प्रकृति को उसके असल रूप में उपस्थित कर देते हैं, परन्तु भारतीय कवि प्रकृति को मनोरम मुग्धकारी विविध आभूषणों से सुसज्जित कर पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं। महाकवि कालिदास में इस अलंकृत वर्णनशैली की ही निपुणता है। इतना ही नहीं इनके प्रकृति-वर्णन में वैज्ञानिक ज्ञान का पर्याप्त परिचय मिलता है।

रघुवंश के नवम सर्ग में वायु से हिलाई गई लता को लक्ष्य कर वसन्त ऋतु का कैसा मनोरञ्जक वर्णन है—

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः॥

स्त्री और पुरुषों के विविध मनोभावों का इन्हें पूर्ण ज्ञान है, उसे व्यक्त करने के लिए इन्होंने अभिधाशक्ति का प्रयोग न कर व्यंजनाशक्ति से ही काम लिया है। इससे इनकी कविता में और भी चमत्कार आ जाता है।

जब अङ्गिरा ऋषि हिमालय के पास आकर कहने लगे कि अपनी पुत्री पार्वती का विवाह भगवान् सदाशिव के साथ कर दीजिए। उस समय पार्वती का वर्णन करते हुए अन्तर्जगत् के पारखी कालिदास कहते हैं—कि अङ्गिरा ऋषि के इस प्रकार कहते समय अपने पिता हिमालय के पास खड़ी हुई पार्वती लज्जावश मुँह नीचे करके हाथ में लिए लीलाकमल के पत्रों को गिनने लगीं—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती॥

इस श्लोक में कवि ने लज्जा शब्द का प्रयोग नहीं किया है; किन्तु लज्जा के उदय होने पर पार्वती ने जो कार्य किया है, उसी का वर्णन किया है, वही कार्य हृदयगत लज्जाभाव को व्यक्त कर देता है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर्वतों में हिमालय, नगरियों में उज्जयिनी, देवताओं में शिव, छन्दों में मन्दाक्रान्ता, अलङ्कारों में उपमा, रसों में श्रृङ्गार और ऋतुओं में वसन्त कालिदास को परम प्रिय थे।

संस्कृत साहित्य के लक्षणकार आचार्यों ने गौडी, पाञ्चाली, वैदर्भी और लाटी नाम की चार रीतियाँ तथा माधुर्य, ओज और प्रसाद ये ३ गुण माने हैं। गौडी रीति में बड़े-बड़े समास तथा पाञ्चाली में छोटे-छोटे समास होते हैं। वैदर्भी रीति में समास प्रायः नहीं के बराबर होते हैं। गौडी में ओज गुण, पाञ्चाली में माधुर्य गुण और वैदर्भी में प्रसाद गुण की प्रधानता होती है।

कालिदास की कविता में वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण ओतप्रोत है। प्रसाद गुण के प्राधान्य होने के कारण कालिदास की कविता शीघ्र ही समझ में आ जाती है।

कालिदास का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। इनकी भाषा व्याकरण से परिष्कृत सरल, सरस एवं सुबोध होती है। ये—'च, तु, हि, वै, किल, खलु आदि का प्रयोग केवल पाद की पूर्ति के लिए नहीं करते हैं; किन्तु उनका जहाँ प्रयोग करते हैं वहाँ वे सार्थक होते हैं। इनके शब्द नपे-तुले होते हैं और इनके वाक्यों में क्रियापद प्रायः स्पष्ट होते हैं। ये किसी बात को घुमा-फिरा कर कहने की अपेक्षा सीधे कह देना अधिक पसन्द करते हैं। थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ व्यक्त करने की प्रवृत्ति इनमें विशेष रूप से दीख पड़ती है।

जैसे भिन्न-भिन्न वर्णों के उच्चारण के लिए भिन्न-भिन्न कण्ठ-ताल्वादि के आघातों के भेद हैं और भिन्न-भिन्न वर्ण, भिन्न-भिन्न रस भाव एवं अलङ्कारों के व्यञ्जक हैं, वैसे ही विभिन्न रसों को व्यक्त करने के लिए विभिन्न छन्द भी हैं। श्रृङ्गार रस के व्यञ्जक वर्णों के द्वारा ह'.श्रृङ्गार रस की पुष्टि तथा वीर रस के व्यञ्जक वर्णों से वीर रस की पुष्टि हो सकती है, अन्य वर्णों से नहीं। अतः केवल शब्द-योजना ही काव्य में रस सिद्धि के लिए पर्याप्त नहीं है, उसके लिए छन्द की योजना भी अपेक्षित है। क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में कहा है कि काव्य में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दों का विनियोग करना चाहिए—

काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीतसर्ववृत्तानां विनियोगं विभाववित्॥

कालिदास का छन्द-विषयक ज्ञान भी गम्भीर और पूर्ण है। उन्होंने अपने काव्यों में प्रायः सभी प्रमुख छन्दों का प्रयोग किया है। ये छन्दों का चुनाव रस और वर्ण्य-वस्तु के अनुकूल ही करते हैं। कालिदास मन्दाक्रान्ता छन्द के सिद्धहस्त कवि माने जाते हैं। इन्होंने अपने खण्डकाव्य मेघदूत को केवल मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा है।

सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति।
सदश्वस्य दमस्येव कम्बोजतुरगाङ्गना॥

प्रत्येक कवियों में किसी न किसी विषय की खास विशेषता रहती है। कविवर कालिदास उपमा अलंकार के आचार्य माने जाते हैं। तत्तत् कवियों की विशेषता व्यक्त करते हुए एक आलोचक ने बहुत ही ठीक कहा है—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं त्रयोऽप्येकैकतोऽधिकाः ॥

कालिदास की उपमाएँ एक से एक बढ़कर हैं उन्होंने नई-नई उपमाओं की उद्भावना की है। इनकी उपमाओं के विशेष चमत्कार का कारण यह है कि प्रायः इनकी उपमाएँ अन्तर्जगत और बाह्यजगत् दोनों से ली गई हैं। इन्होंने उपमाओं में उपमान तथा उपमेय के वचन और लिंग तक का भी विचार किया है। रघुवंश के षष्ठ सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर में उपस्थित राजाओं की दशा का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रियं यं व्यतीयाय पतिम्वरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥

इस श्लोक में इन्दुमती की उपमा स्त्रीवाची दीपशिखा शब्द से दी गई है। और राजा की उपमा पुंलिङ्ग अट्ट शब्द से दी गई है। लिंग की समता के साथ-साथ वचन की समता भी दर्शनीय है।

रघुवंश के द्वितीय सर्ग में जब दिलीप वसिष्ठजी की लाल नन्दिनी को चराकर लौटते हैं तो सुदक्षिणा उनकी प्रतीक्षा करती हुई स्वागत करने के लिए खड़ी है, दोनों के बीच में नन्दिनी की शोभा का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥

यहाँ राजा की उपमा दिन से, सुदक्षिणा की उपमा रात्रि से और लाल नन्दिनी की उपमा लाल सन्ध्या से दी गई है। और भी देखिए—

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥

शरीर की दुर्बलता के कारण कुछ ही आभूषण पहनी हुई उस सुदक्षिणा की लोध्रपुष्प सदृश पीले मुख से ऐसी शोभा हुई जैसे प्रातःकाल टिमटिमाते हुए ताराओं से युक्त रात की शोभा पीले वर्ण के चन्द्रमा से होती है। यह भाव व्यक्त करने के लिए कवि ने लोध्रपाण्डु मुख से चन्द्रमा की एवं एकाध तारा युक्त प्रभातकल्पशर्वरी से सुदक्षिणा की उपमा देते हुए कितने सुन्दर ढङ्ग से पूर्णोपमा व्यक्त की है। इस प्रकार कालिदास की कविता में स्थल-स्थल पर अनूठी उपमा का चमत्कार मिलता है। इनकी उपमाओं में स्वाभाविकता का उत्कर्ष है जिससे पाठक का हृदय सहसा चमत्कृत हो उठता है।

कालिदास का समय

संस्कृतसाहित्य जगत् के देदीप्यमानमणि कविवर कालिदास के समय के सम्बन्ध में विद्वानों का महान मतभेद है, क्योंकि कालिदास ने तो अपने सम्बन्ध में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। विभिन्न विद्वानों ने आन्तरिक एवं बाह्य प्रमाणों के आधार पर कालिदास का अस्तित्व

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ई० पू० प्रथम शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक माना है। कालिदास ने प्रथमशती के शुङ्गवंशी नरेश अग्निमित्र को अपने मालविकाग्निमित्र नामक नाटक का नायक बनाया है तथा छठी शताब्दी के महाराज हर्षवर्द्धन के दरबारी महाकवि बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में कालिदास की कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अतः कालिदास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी के बीच में कहीं होना चाहिए। इस आधार पर इनके विषय में मुख्य रूप से तीन मत उपस्थित होते हैं—

(१) कालिदास की सत्ता छठी शताब्दी में मानना आवश्यक है।
(२) कालिदास जैसे उत्तम कवि गुप्तनरेशों के स्वर्णयुग में ही हो सकते हैं।
(३) कालिदास ई० पू० प्रथम शताब्दी के महाकवि हैं।

प्रथम मत—डॉ० हार्नली मानते हैं कि यशोवर्धन् ने बलादित्य नरसिंह गुप्त की सहायता से कारुर के युद्ध में हूणवंश के प्रतापी राजा मिहिरकूल को हराकर विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त की और अपनी इस बड़ी विजय के उपलक्ष्य में उसने विक्रम नाम का एक नया संवत् चलाया, जिसे प्राचीन सिद्ध करने के लिए उसे छः सौ वर्ष पूर्व से ही प्रचारित कर दिया।

समीक्षा—यशोवर्धन् द्वारा ६०० सौ वर्ष पहले से विक्रम संवत् का चलाना इतिहास विरुद्ध है, क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि मालव संवत् के नाम से जो संवत् चला आता था, शकारि विक्रमादित्य ने शकों की विजय के उपलक्ष्य में उसीका नाम विक्रम संवत् रख दिया। हूणों के विजेता यशोवर्धन् हूणारि कहे जा सकते हैं, शकारि नहीं, और उनके शिलालेखों में विक्रम संवत् की स्थापना की चर्चा कहीं भी नहीं हैं। दूसरी बात यह भी है कि ४७३ ई० में कुमारगुप्त की प्रशस्ति के लेखक वत्सभट्टिकवि ने अपने ग्रन्थ में कालिदास के अनेक पद्यों का अनुकरण किया है। अतः कालिदास पञ्चम शताब्दी के बाद नहीं हो सकते हैं। यह मत अब अनेकों प्रमाणों में अमान्य एवं अग्राह्य हो चुका है।

दूसरा मत—बहुत से विद्वानों ने सर्वतः समृद्ध एवं शान्तिमय गुप्त नरेशों के स्वर्णयुग में कालिदास की सत्ता मानी है। इनमें पूना के प्रो० के० पी० पाठक का मत है कि कालिदास गुप्त नरेशों के समकालीन थे, क्योंकि रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु के दिग्विजय से समुद्रगुप्त के दिग्विजय में अधिक समानता है, किन्तु डा० स्मिथ, कीथ, मेक्डानल, रा० कृ० भण्डारकर, पं० रामावतार शर्मा आदि बहुसंख्यक विद्वान् मानते हैं कि कालिदास के आश्रयदाता गुप्त नरेशों में सबसे अधिक प्रभावशाली चन्द्रगुप्त द्वितीय थे, क्योंकि शकों को भारत से बाहर निकाल देने वाले विक्रमादित्य उपाधिधारी इन्हीं के राज्य-काल में हर तरह से शान्ति थी तथा भारतीय कलाकौशल की उन्नति चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। कालिदास के ग्रन्थों के समान गम्भीर विचार के ग्रन्थ ऐसे ही शान्तिमय समय में स्थिर चित्त से लिखे जा सकते हैं।

समीक्षा—कालिदास को गुप्तकाल के स्वर्णयुग का कवि मानना ठीक नहीं, क्योंकि केवल चन्द्रगुप्त द्वितीय ही विक्रमादित्य नहीं थे, किन्तु इनसे पूर्व मालवा में राज्य करनेवाले विक्रमादित्य का भी पता इतिहास को है। दूसरी बात यह है कि यदि कालिदास गुप्तकाल में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होते तो प्रयाग के समुद्रगुप्त के स्तम्भ पर कालिदास की रचना न होकर साधारण विद्वान् हरिसेन से क्यों लिखवाया जाता ? अतः कालिदास को गुप्तकाल में मानना सर्वथा असंगत है।

तीसरा मत—उपर्युक्त कल्पनाओं से असन्तुष्ट होकर कुछ विद्वानों ने ६८ई० की गाथा-सप्तशती के पद्यों में दानशील राजा विक्रमादित्य के स्पष्ट उल्लेख मिलने के आधार ईसा के पूर्व विक्रमादित्य की सत्ता प्रामाणिक रूपसे स्थिर मान ली है। इनके शकारि होने में भी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं, क्योंकि ईसा १५० वर्ष पूर्व भारत में आने वाले शकों का पता इतिहास में पाया जाता है। अतः इन्हीं की सभा में कालिदास की सत्ता मानना युक्तियुक्त एवं प्रामाणिक प्रतीत होता है। इस मत के तर्क एवं प्रमाण विश्वसनीय हैं।

इसीलिए वल्लालसेन ने अपने भोज-प्रबन्ध में विक्रम संवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा शकारि वीर विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में कविवर कालिदास की भी गणना की है, जिनके विना उनको एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता था और इनकी अद्भुत कविकल्पना पर वे सदा मुग्ध रहा करते थे—

धन्वतरि–क्षपणकामरसिंह–शङ्कु–वेतालभट्ट–घटखर्पर–कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरोनृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

कालिदास के ग्रन्थों से भी राजा विक्रमादित्य के दरबार में रहने का सङ्केत मिलता है। अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक की प्रस्तावना में रस एवं भाव का चमत्कार दिखाने वाले कलाकारों के आश्रयदाता विक्रमादित्य की अभिरूप भूयिष्ठ परिषद् में उस नाटक के अभिनय करने का संकेत है—'**आर्ये ! इयं हि रसभावविशेषदीक्षागुरोर्विक्रमादित्यस्याभिरूपभूयिष्ठा परिषद्।**' और विक्रमोर्वशीय नाटक में यद्यपि पुरूरवा नायक है तथापि विक्रम का स्पष्ट नामोल्लेख है—'**अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः**'। इत्यादि वचनों से इसकी पुष्टि होती है कि कालिदास का विक्रमादित्य से सम्बन्ध अवश्य था।

रामचन्द्र काव्य में तो स्पष्ट उल्लेख है कि शकाराति वीर विक्रमादित्य ने कालिदास की बड़ी ख्याति की थी—**ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिका।** अतः कालिदास राजा विक्रमादित्य की सभा के नव रत्नों में एक महारत्न अवश्य थे। जनश्रुति भी इसी मत की पुष्टि करती है। **नह्यमूला जनश्रुतिः।**

इसी प्रकार किसी ने इन्हें बङ्गाली, कुछ ने काश्मीरी, कतिपय विद्वानों ने मालव निवासी सिद्ध करने की चेष्टा की है। कालिदास के यशस्वी जीवन तथा उनकी अनुपम भारती का गुणगान करने में जितनी उत्सुकता भारतीय विद्वानों में है, उससे किसी भी अंश में विदेशी विद्वान् पीछे नहीं हैं। इनका अनुपम काव्य-कौशल इनके व्यक्तित्व का वास्तविक परिचायक है। इनकी प्रतिभा से निःसृत अमृतकणों का पानकर सबको प्रसन्नता होती है। अतः ये सबके मान्य कवि हैं।

कालिदास की कृतियाँ

महाकवि कालिदास के जन्म एवं जीवनी के विषय में जिस प्रकार मतभेद रहा है वैसे ही उनकी कृतियों के सम्बन्ध में भी कम विवाद नहीं है। कुछ दिन पहले कालिदास

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नामधारी दूसरे व्यक्तियों की कृतियों को इनके नाम से जोड़ देने के सम्बन्ध में काफी विवाद रहा है, किन्तु इधर आधुनिक विद्वानों की खोजों के आधार पर प्रमुख रूप से कालिदास की निम्नाङ्कित कृतियाँ मानी जाती हैं—दो महाकाव्य—(१) रघुवंश, (२) कुमारसम्भव। तीन नाटक—(क) अभिज्ञानशाकुन्तल, (ख) विक्रमोर्वशीय, (ग) मालविकाग्निमित्र। एक खण्ड काव्य—मेघदूत तथा एक मुक्तककाव्य—ऋतुसंहार। शृङ्गारतिलक के इनके कृतित्व में समीक्षकों को सन्देह है।

रघुवंश की विशेषता

रघुवंश में महाकाव्य के सभी लक्षण घटते हैं। इसके १९ सर्गों में कवि कालिदास ने इक्ष्वाकुवंशी महाप्रतापी राजा दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक २० राजाओं का आदर्शमय वर्णन किया है। यद्यपि इस काव्य की कथा वाल्मीकिरामायण, महाभारत तथा पद्म आदि पुराणों में पायी जाती है, पर वाल्मीकि से अधिक समता; फिर भी वाल्मीकिरामायण और रघुवंश के वंशक्रम में महान् अन्तर है। वा० रा० आदि काण्ड, सर्ग ७० के १९–४३ श्लोकों के अनुसार दिलीप से राम तक १८ राजाओं का नाम निर्दिष्ट है; किन्तु रघुवंश में दिलीप से राम तक ५ ही पीढ़ी पड़ती है (१) दिलीप, (२) रघु, (३) अज, (४) दशरथ और (५) राम।

रघुवंश महाकाव्य की संस्कृत व्याख्याओं में मल्लिनाथ की सञ्जीविनी व्याख्या सर्वोत्कृष्ट तथा प्रामाणिक मानी जाती है। अतः इस संस्करण में सञ्जीविनी व्याख्या भी दी गई है और परीक्षार्थी छात्रों की सुविधा के लिए अन्वय, संस्कृत में व्याख्या, समास, भावार्थ तथा हिन्दी में भाषार्थ भी दे दिया गया है जिससे यह ग्रन्थ और भी सुबोध एवं उपादेय हो गया है। आशा है, छात्रवर्ग व्याख्याकार तथा प्रकाशक के प्रयास को अवश्य सफल बनायेगा। इति शम्।

विजयादशमी
सं० २०३२

वशंवद
श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथासार

षष्ठ सर्ग

षष्ठ सर्ग में इन्दुमती के स्वयम्वर का आकर्षक वर्णन है। राजा रघु के पुत्र युवराज अज ने स्वयंवर-स्थान में उपस्थित होकर मंचों पर सजाये हुए सिंहासनों पर आसीन सुन्दर वेशवाले उन राजाओं को देखा, जो विमानों पर बैठे हुए देवताओं के समान सुशोभित हो रहे थे। अज राजा भोज द्वारा बताये गये योग्य मंच पर सुन्दर बनी सीढ़ियों के मार्ग से उस प्रकार चढ़ गये जैसे शेर का बच्चा पर्वत की चट्टानों पर पैर रखता हुआ ऊँचे शिखर पर चढ़ जाता है। वे राजा कामदेव के समान सुन्दर अज को देखकर इन्दुमती के प्रति निराश हो गये। सुन्दर रंग-विरंगे वस्त्रों से आच्छन्न रत्नजटित सिंहासन पर बैठे हुए अज अनेक रंगवाली मोर की पीठ पर बैठे हुए कार्तिकेय जैसे लग रहे थे।

जिस प्रकार प्रफुल्लित वृक्षों को छोड़कर भवरें मद बहाने वाले जंगली हाथी के ऊपर झुक जाते हैं उसी प्रकार नागरिक दर्शकों की दृष्टि सब राजाओं को छोड़कर अज पर ही आ डटी। अनन्तर राजाओं के वंशों को जानकर बन्दीजन चन्द्रवंशी एवं सूर्यवंशी राजाओं का गुण-गान करने लगे, सुगन्धित धूपबत्ती का धुआं आकाश में फैल गया तथा माङ्गलिक बाजे बजने लगे। इसी समय भोजराज की छोटी बहन इन्दुमती पालकी में बैठकर अपनी सखी सुनन्दा के साथ मञ्चों के बीच बने राजमार्ग से स्वयंवर-स्थल पर आ पहुँची। विधाता की अद्वितीय सृष्टि सर्वाङ्गसुन्दरी उस इन्दुमती को देख सभी राजा अपने मन के भावों को विविध प्रकार की चेष्टाओं से व्यक्त करने लगे। सात पद्यों में कवि ने विभिन्न राजाओं की शृङ्गार चेष्टाओं का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है, जिनका अभिप्राय राजाओं ने अपने मन के अनुकूल समझा तथा इन्दुमती ने इसके विपरीत सबको कुलक्षणी समझा। स्वयंवर में विराजमान राजाओं का नैसर्गिक वर्णन अतिरोचक ढंग से उपस्थित किया गया है। सबसे पहले मगध देश के राजा का वर्णन है।

राजाओं के चरित्र एवं वंशावली को जानने वाली पुरुषों के समान धृष्ट रनिवास की द्वारपालिका सुनन्दा, इन्दुमती को मगधनरेश परन्तप के समक्ष उपस्थित कर कहने लगी— राजकुमारी! इस भूमण्डल में अनेक राजाओं के रहते हुए भी पृथ्वी इन्हीं से राजन्वती है। इन्होंने निरन्तर अपने यज्ञानुष्ठान में इन्द्र को बुलाकर इन्द्राणी को चिरवियोगिनी बना दिया है। यदि इन्हें वरण कर लोगी, तो अपने-अपने महलों में बैठी पुष्पपुर की महिलाओं को आनन्दित करोगी। परन्तप इन्दुमती को नहीं जँचे। उसने सुनन्दा को आगे बढ़ने का इशारा किया। बाद सुनन्दा ने अङ्ग देश के राजा को दिखा कर कहा—ये भूलोक में भी स्वर्गीय सुख भोगते हैं। इनके पास एक साथ लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों रहती हैं। अतः कान्तिमती एवं मधुरभाषिणी तुम तीसरी हो जाओ। किन्तु इन्दुमतो की रुचि न होने से सुनन्दा उसे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उज्जयिनी के राजा के पास ले जाकर कहने लगी—ये महाप्रतापी राजा महाकाल के समीप रहते हैं। अतः कृष्ण पक्ष में भी ये चांदनी रातों का उपभोग करते हैं। यदि तुम सिप्रा नदी की वायु से कँपाई गयी बाग-बगीचों की परम्पराओं में विहार करना चाहती हो तो इनका वरण कर लो, फिर भी वे इन्दुमती को न जँचे।

बाद सुनन्दा अनूप देश के राजा के पास ले जाकर कहने लगी—ये सहस्रार्जुन के वंश में उत्पन्न हुए हैं और बड़े गुणी हैं। इस राजा की माहिष्मती राजधानी की करधनी बनी नर्मदा नदी को महल में बैठकर देखने की यदि तुम्हारी इच्छा हो तो, इनकी अङ्क-लक्ष्मी बन जाओ। अत्यन्त मनोरम होते हुए भी ये इन्दुमती को न जँचे। तब सुनन्दा मथुरा के राजा सुषेण के पास ले जाकर इन्दुमती से उनका परिचय देने लगी–ये नीप वंश में उत्पन्न हुए हैं और इनकी कीर्ति दूसरे देशों में भी गायी जाती है। इनकी रनिवास की स्त्रियों के स्तनों के चन्दन से स्नान करते समय यमुना–गङ्गा की तरङ्गों से मिली हुई-सी जान पड़ती हैं। अतः कुबेर के बगीचे के समान वृन्दावन में विहार करने की इच्छा हो तो इनसे विवाह कर वर्षा ऋतु में गोवर्द्धन की कन्दराओं में शिलाजीत से सुगन्धित चट्टानों पर बैठ कर मोरों का नाच देखो। इनको छोड़कर इन्दुमती आगे बढ़ती और सुनन्दा कलिङ्ग देश के राजा हेमाङ्गद के वर्णन के बाद नागपुर के राजा के वर्णन में कहने लगी कि ये पाण्डु प्रान्त के राजा देवताओं के तुल्य हैं। महर्षि अगस्त्य भी इनके अश्वमेध-यज्ञ के अन्त में अवभृथस्नान की निर्विघ्न सम्पन्नता पूछते हैं। इनके बल से डर कर रावण भी इनसे मित्रता रखता है। ये नीलकमल के समान श्यामल हैं, तुम गोरोचना के समान गोरी हो। अतः मेघ एवं बिजली के समान तुम्हारा सम्बन्ध हो जाय। ये भी इन्दुमती को न जँचे। जिस प्रकार रात में बत्ती जिन-जिन मकान को छोड़कर आगे बढ़ती जाती है। वे-वे मकान प्रकाश के अभाव में अन्धकार से विवर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार इन्दुमती जिन-जिन राजाओं को छोड़कर आगे गयी, वे-वे राजा भी उदास होते गये।

इसके बाद इन्दुमती जब अज के पास पहुँची, तो उनका दक्षिण बाहु फड़कने लगा, उससे उनको विश्वास हो गया कि यह मेरा ही वरण करेगी। इधर इन्दुमती सर्वाङ्गसुन्दरी एवं दोषरहित अज को प्राप्त कर आगे जाने से उसी प्रकार रुक गयी जैसे वसन्त ऋतु में बौर आये हुए आम के वृक्ष को छोड़कर भ्रमरपंक्ति दूसरे वृक्षों पर नहीं जाती। सुनन्दा अज का वर्णन करती हुई कहने लगी—ये इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न महाराज दिलीप के पुत्र उस राजा रघु के सुपुत्र हैं, जिन्होंने चारों दिशाओं से सम्पत्ति बटोर कर विश्वजित नामक यज्ञ में सर्वस्व समर्पण कर दिया था, केवल उनके पास मिट्टी का बर्तन मात्र शेष रह गया था। ये कुमार राजा रघु के वैसे ही पुत्र हैं जैसे इन्द्र का जयन्त। अतः कुल से, कान्ति से, नयी अवस्था से, विनय आदि गुणों से सम्पन्न तुम्हारे अनुरूप हैं। अतः तुम इनका वरण कर लो। जैसे रत्न की शोभा सुवर्ण के साथ अधिक होती है वैसे ही तुम्हारा और अज का मेल अत्यन्त अनुरूप होगा। तब राजकुमारी इन्दुमती ने बड़ी प्रसन्नता से अज को स्वीकार कर लिया। लज्जा के कारण वाणी से तो कुछ न कह सकी, किन्तु रोमाञ्च के बहाने सात्त्विक भाव के उदय हो जाने से उसका अनुराग प्रकट हो गया। इन्दुमती के अजविषयक अनुराग

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को देखकर सखी सुनन्दा ने परिहास पूर्वक कहा—आर्ये ! दूसरे राजा के पास चलो, यह सुन इन्दुमती ने सुनन्दा को रोषपूर्वक तिरछी नजर से देखा, क्योंकि अब अन्यत्र जाना इन्दुमती को इष्ट नहीं था।

अनन्तर राजकुमारी इन्दुमती ने सुनन्दा के हाथों से कुंकुम के चूर्ण से लाल धागा वाली स्वयंवर माला को रघु पुत्र अज के गले में पहनवा दिया। एक समान शील, स्वभाव एवं सौन्दर्य गुणवाले अज और इन्दुमती के सम्बन्ध से प्रसन्न हुए नगरनिवासी कहने लगे कि यह इन्दुमती आज अज से वैसे ही मिल गयी जैसे निर्मल चन्द्र से चाँदनी तथा सागर से गङ्गा मिलती है। उस स्वयंवर मण्डप में एक तरफ प्रसन्न हुए वर-पक्ष वाले थे और दूसरी ओर इन्दुमती को न प्राप्त कर सकने वाले राजाओं का-झुण्ड था। उस समय वह सरोवर के समान लग रहा था, जिसमें प्रातःकाल एक तरफ खिले हुए कमल हों तो दूसरी ओर बिना खिले कुमुदों का समूह हो।

सप्तम सर्ग

स्वयम्वर मण्डप में इन्दुमती द्वारा अज को माला पहनाकर वरण कर लेने के बाद भोजराज ने समान योग्य वर अज के साथ अपनी बहन इन्दुमती को लेकर अपने नगर की ओर चले और मुरझाये चेहरे वाले दूसरे राजा लोग इन्दुमती के प्रति निराश होकर अपने रूप एवं वेशभूषा की निन्दा करते हुए अपने-अपने शिविर की ओर चल दिये।

पुष्प, माला, ध्वजा, पताका आदि से अच्छी तरह सजाये गये राज-मार्ग से जाते हुए वर-वधू को देखने वाली स्त्रियों की अनेकविध चेष्टाएँ हुईं—कोई स्त्री अपने केशपाश में माला बाँधना भूलकर जूड़े को अपने हाथ में थामे ही खिड़की पर आ पहुँची। दूसरी सुन्दरी जो दासी से अपने पैरों में महावर लगवा रही थी, शीघ्रता में उसे छुड़ा कर वह झरोखे तक गीली महावर से पैर का निशान बनाती गयी, तीसरी एक आँख में काजल लगाकर दूसरे में बिना लगाये ही हाथ में सलाई लिये दौड़ पड़ी, चौथी साड़ी की नीवी बिना बांधे ही हाथ से पकड़ कर खिड़की में दृष्टि लगाकर खड़ी रही, पांचवीं बैठकर मोतियों की करधनी गूँथ रही थी, जिसका एक किनारा अपने पैर के अँगूठे में बांध रखा था, अभी आधी ही गूँथ पायी थी कि अज को देखने की जल्दी में उसे छोड़कर ऐसी दौड़ी कि खिड़की तक एक-एक दाने बिखरे गये, उसके अँगूठे में केवल धागा ही धागा लिपटा रह गया।

उन नागरिक स्त्रियों के मुखों से परिपूर्ण झरोखे ऐसे प्रतीत होते थे, मानों वे चञ्चल नेत्र रूपी भौंरों से व्याप्त कमलों से भरे हैं। अज को भली भाँति देखकर वे प्रसन्नता व्यक्त करती हुई कहने लगीं कि स्वयम्वर करना अच्छा हुआ नहीं तो इन्दुमती समान योग्य पति को कैसे पाती ! यदि ब्रह्मा इन दोनों की जोड़ी नहीं लगाता तो इन दोनों का सौन्दर्य विधान ही व्यर्थ हो जाता। ये दोनों पूर्व जन्म में रति एवं कामदेव रहे होंगे, नहीं तो इन्दुमती ने हजारों राजाओं में इन्हीं अज को क्यों वर लिया ? इस प्रकार नगर नारियों का वर्णन सुनते हुए

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अज भोज के घर पहुँच कर कामरूप के राजा का बाहु पकड़कर हथिनी से उतर कर अन्दर चौक में चले गये।

वहाँ राजा भोज ने वैदिक विधि-विधान से मधुपर्क-वस्त्र आदि देकर विवाह कृत्य आरम्भ किया, पुरोहित ने हवन के बाद अग्नि को साक्षी बनाकर वर-वधू को मिला दिया। यहाँ वैवाहिक कार्यों को अत्यन्त स्वाभाविक एवं सामाजिक नियमोपनियमों का मनोरम वर्णन है। इस प्रकार विवाह के बाद भोज ने दूसरे राजाओं को यथावत् सत्कार कर बिदा किया।

ये ईर्ष्यालु राजा लोग इन्दुमती को अज से बलात् छीन लेने की इच्छा से आगे बढ़कर मार्ग में बैठ गये। इधर भोज ने अपनी श्रद्धा एवं सामर्थ्य के अनुसार दहेज देकर बहन को विदा किया। तीन रात तक इनके साथ में रहकर भोज पुनः अपनी राजधानी को लौट गये। बाद मार्ग रोकने वाले राजा लोग इन्दुमती को ले जाते हुए अज को रोक कर युद्ध के लिए तैयार हो गये। अज ने इन्दुमती की रक्षा के निमित्त विश्वासी मन्त्री को नियत कर युद्ध करने के लिए रणाङ्गण में उतर गये। दोनों पक्षों के सैनिकों के साथ घमासान युद्ध होने लगा। अन्त में अज ने प्रियम्वद नामक गन्धर्व से प्राप्त गन्धर्वदेवतात्मक निद्राकारक अस्त्र का प्रक्षेप किया, जिसके प्रभाव से सब के सब राजा एवं सैनिक ज्यों-के-त्यों चेष्टा शून्य होकर सो गये। अज ने विजय-शंख बजाया, शंखध्वनि सुनकर अज के सैनिक उनके पास लौट आये। इस प्रकार विजय-लक्ष्मी प्राप्त कर अज घबड़ाई हुई इन्दुमती के पास आकर बोले—'प्रिये! देखो, इन राजाओं को, वे इसी बल पर मुझसे युद्ध कर तुमको छीनना चाहते थे। इस समय ये ऐसे निश्चेष्ट हो गये हैं कि छोटे-छोटे बच्चे भी इनके अस्त्र छीन सकते हैं।

पति की वीरता एवं विजय से इन्दुमती को बड़ी प्रसन्नता हुई, किन्तु लज्जवश स्वयं कुछ न कहकर अपनी दासी के द्वारा उनका अभिनन्दन किया। इस प्रकार उन पूर्व विरोधी राजाओं को परास्त कर मूर्तिमती विजय-लक्ष्मी के समान इन्दुमती को लेकर अज अपनी राजधानी अयोध्या लौट आये। राजा रघु ने वह वृत्तान्त पहले ही सुन लिया था। अतः विजयी और प्रशंसनीय भार्या के साथ लौटे हुए अपने पुत्र अज का स्वागत करने के बाद कुटुम्बपालन करने का कार्य एवं राज्य-भार सौंप दिया और स्वयं शान्ति मार्ग का आश्रय लिया। ठीक ही है, सूर्यवंशी राजे, कुल का भार सँभालने योग्य पुत्र के हो जाने पर गृहस्थाश्रम में नहीं रहते, अपितु चतुर्थाश्रमी हो जाते हैं।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्रीः ॥

रघुवंशमहाकाव्यम्

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

षष्ठः सर्गः

स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेषान् सिंहासनस्थानुपचारवत्सु ।
वैमानिकानां मरुतामपश्यदाकृष्टलीलान्नरलोकपालान् ॥ १ ॥

अन्वयः—सः उपचारवत्सु मञ्चेषु सिंहासनस्थान् मनोज्ञवेषान् वैमानिकानाम् मरुताम् आकृष्टलीलान् नरलोकपालान् अपश्यत् ।

व्याख्या—सः=अजः, तत्र=स्वयम्वरस्थाने, उपचारवत्सु=उपकरणयुक्तेषु; मञ्चेषु=पर्यङ्केषु, सिंहासनस्थान्=सिंहप्रकृतिकपीठोपविष्टान्, मनोज्ञवेषान्=मनोहरनेपथ्यान्, वैमानिकानां=विमानैश्चरतां, मरुतां=अमराणां देवानाम् ('मरुतःपवनामरौ' इत्यमरसिंहः), आकृष्टलीलान्=गृहीतसौभाग्यान्, नरलोकपालान्=भूपालान्, अपश्यत्=अवलोकयामास ।

समासः—सिंहवत् आसनं सिंहासनं सिंहासने तिष्ठन्तीति सिंहासनस्थाः तान् सिंहासनस्थान् । मनोज्ञः वेषो येषां ते मनोज्ञवेषाः तान् मनोज्ञवेषान् । आकृष्टा लीला यैः ते आकृष्टलीलाः तान् आकृष्टलीलान् । नराणां लोकं नरलोकं नरलोकं पालयन्तीति नरलोकपालाः तान् नरलोकपालान् । उपचाराः सन्ति येषु ते उपचारवन्तः तेषु उपचारवत्सु ।

भावार्थः—अजो हि इन्दुमतीस्वयम्वरार्थं सुसज्जितेषु मञ्चेषु उपविष्टान् मनोहरवेषधारिणो विभिन्नान् नरलोकपालान् नृपान् व्योम्नि विमानोपविष्टान् देवानिवावलोकयामासेति भावः ।

जाह्नवी मूर्ध्नि पादे वा कालः कण्ठे वपुष्यथ ।
कामारिं कामतातं वा कञ्चिद्देवं भजामहे ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—सोऽजस्तत्र स्थाने उपचारवत्सु राजोपचारवत्सु मञ्चेषु पर्यंङ्केषु सिंहासनस्थान्मनोज्ञवेषान् मनोहरनेपथ्यान् वैमानिकानां विमानैश्चरताम्। 'चरति' इति ठक्प्रत्ययः। मरुताममराणाम् 'मरुतो पवनामरौ' इत्यमरः। आकृष्टलीलान् गृहीतसौभाग्यान् आकृष्टमरुल्लीलानित्यर्थः। सापेक्षत्वेपि गमकत्वात्समासः। नरलोकं पालयन्तीति नरलोकपालाः। कर्मण्यण्प्रत्ययः। तान् भूपालानपश्यत्। सर्गेऽस्मिन्नुपजातिश्छन्दः।

मंगलाचरण

जिस परात्पर ब्रह्म का संसार लेता नाम है।
जिसने रचा यह विश्व अद्भुत ललित लीला धाम है॥
रघुवंश का आदर्श जो मानवशिरोमणि राम है।
उस ईश को श्रीकृष्णमणि का बार-बार प्रणाम है॥

भावार्थ—स्वयम्बर में जाकर अज ने देखा कि राजकीय साधनों से सजाये गये मंचों पर वेष बना-बना कर बैठे हुए प्रजापालक राजा लोग ऐसे सुन्दर लग रहे हैं, मानो विमानों पर देवता लोग बैठे हुए हों ॥ १ ॥

रतेर्गृहीतानुनयेन कामं प्रत्यर्पितस्वाङ्गमिवेश्वरेण।
काकुत्स्थमालोकयतां नृपाणां मनो बभूवेन्दुमतीनिराशम् ॥ २ ॥

अन्वयः—रतेः गृहीतानुनयेन ईश्वरेण प्रत्यर्पितस्वाङ्गं कामम् इव (स्थितं) काकुत्स्थं आलोकयताम् नृपाणां मनः इन्दुमतीनिराशं बभूव।

व्याख्या—रतेः=कामपत्न्याः। गृहीतानुनयेन=स्वीकृतरतिप्रार्थनेन। ईश्वरेण=भगवता शिवेन। प्रत्यर्पितस्वाङ्गं=प्रदत्तस्वशरीरम्, कामं=मन्मथं, इव=यथा स्थितं उपस्थितमागतम्। काकुत्स्थं=ककुत्स्थकुलप्रसूतम्, अजम्, आलोकयतां=पश्यताम्। नृपाणां=नृपतीनाम्। मनः=हृदयम्। इन्दुमतीनिराशं=वैदर्भीनिरभिलाषम्। बभूव=अजायत।

समासः—गृहीतः अनुनयः येन स गृहीतानुनयः तेन गृहीतानुनयेन। स्वस्याङ्गं स्वाङ्गं प्रत्यर्पितं स्वाङ्गं यस्य स प्रत्यर्पितस्वाङ्गः तं प्रत्यर्पितस्वाङ्गम्। निर्गता आशा यस्मात् तत् निराशम् इन्दुमत्यां निराशमिन्दुमतीनिराशम्। ककुदि तिष्ठतीति ककुत्स्थः ककुत्स्थस्य गोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थः तं काकुत्स्थम्। नॄन् पान्तीति नृपाः तेषां नृपाणाम्। आलोकयन्तीति आलोकयन्तः तेषाम् आलोकयताम्। इष्टे इतीश्वरः तेन ईश्वरेण।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—कामदहनानन्तरं रतिप्रार्थनया भगवता शिवेन प्रदत्तशरीरं कामदेवमिवातिसुन्दरावयवमुपस्थितं कुमारमजमवलोकयतां भूपालानां मनः इन्दुमतीवरणाद् निराशं जातं,यतो हि तमेवातिमनोहरवेषमजं वरिष्यति,नास्मानिति भावः।

सञ्जीविनी—'रतिः स्मरप्रियायां च रागे च सुरते स्मृता' इति विश्वः। रतेः कामप्रियाया गृहीतानुनयेन स्वीकृतप्रार्थनेन गृहीतरत्यनुनयेनेत्यर्थः। सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः। ईश्वरेण हरेण प्रत्यर्पितस्वाङ्गं काममिव स्थितं काकुत्स्थमजमालोकयतां नृपाणां मन इन्दुमतीनिराशं वैदर्भीनिःस्पृहं वभूव। इन्दुमती सत्पतिमेनं विहाय नास्मान्वरिष्यतीति निश्चिक्युरित्यर्थः,सर्वातिशयसौन्दर्यमस्येति भावः।

भाषार्थ—अपनी (शिवजी की) क्रोधाग्नि से दग्ध कामदेव की पत्नी रति की प्रार्थना को स्वीकार करके भगवान् शंकर से पुनः अपने शरीर को प्राप्त किये हुए कामदेव के समान सुन्दर अजकुमार को देखकर राजाओं का मन इन्दुमती के प्रति निराश हो गया ॥ २ ॥

वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम्।
शिलाविभङ्गैर्मृगराजशावस्तुङ्गं नगोत्सङ्गमिवारुरोह ॥ ३ ॥

अन्वयः—असौ कुमारः वैदर्भनिर्दिष्टं मञ्चं क्लृप्तेन सोपानपथेन मृगराजशावः शिलाविभङ्गैः तुङ्गं नगोत्सङ्गं इव आरुरोह।

व्याख्या—असौ=एषः। कुमारः=रघुपुत्रः, अजः। वैदर्भनिर्दिष्टम्=विदर्भराजसङ्केतितम्। मञ्चं=पर्यङ्कम्। क्लृप्तेन=निर्मितेन। सोपानपथेन=आरोहणमार्गेण। मृगराजशावः=सिंहशिशुः। शिलाविभङ्गैः=पाषाणभङ्गीभिः। तुङ्गम्=उन्नतम्। नगोत्सङ्गं=शैलाग्रभागमिव। आरुरोह=आरूढवान्।

समासः—विदर्भस्य राजा वैदर्भः वैदर्भेण निर्दिष्टः वैदर्भनिर्दिष्टः तं वैदर्भनिर्दिष्टम्। सोपानस्य पन्थाः सोपानपथः तेन सोपानपथेन। शिलानां विभङ्गाः शिलाविभङ्गाः तैः शिलाविभङ्गैः। मृगाणां राजा मृगराजः मृगराजस्य शावः मृगराजशावः। कुत्सितो मारो येन स कुमारः। नगस्योत्सङ्गः नगोत्सङ्गः तं नगोत्सङ्गम्।

भावार्थः—यथा सिंहशिशुः शनैः शनैः उन्नतं पर्वताग्रमधिरोहति तथैवाजकुमारः विदर्भराजसङ्केतितेन सोपानमार्गेण समुन्नतमञ्चमारूढवानिति भावः।

सञ्जीविनी—असौ कुमारो वैदर्भेण भोजेन निर्दिष्टं प्रदर्शितं मंचं पर्यङ्कं क्लृप्तेन सुविहितेन सोपानपथेन मृगराजशावः सिंहपोतः। 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः इत्यमरः। शिलानां विभङ्गैर्भङ्गीभिस्तुङ्गमुन्नतं नगोत्सङ्गं शैलाग्रमिव आरुरोह।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—वे राजकुमार अज, विदर्भनरेश भोज के द्वारा बताये गये मञ्च पर सुन्दर ढंग से बनाई गयी सीढ़ियों से धीरे-धीरे इस प्रकार चढ़ गये, जिस प्रकार सिंह का बच्चा एक-एक चट्टानों पर पैर रखता हुआ ऊँचे पहाड़ के ऊपर चढ़ जाता हो ।। ३ ।।

परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवान् रत्नवदासनं सः ।
भूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिर्मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन ।। ४ ।।

अन्वयः—परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नं रत्नवद् आसनं आसेदिवान् स मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन भूयिष्ठं उपमेयकान्तिः आसीत् ।

व्याख्या—परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नं=उत्कृष्टविविधवर्णमाच्छादनवस्त्राच्छादितम् । रत्नवत्=हीरकादिमणिखचितम् । आसनं=सिंहासनम् । आसेदिवान्=अधिष्ठितवान् । सः=अजः । मयूरपृष्ठाश्रयिणा=बर्हिणपृष्ठाधिष्ठितेन । गुहेन=कार्तिकेयेन । भूयिष्ठम्=अत्यधिकम्, अत्यर्थम्, उपमेयकान्तिः=उपमेयशोभः । आसीत्=अभूत् ।

समासः—परार्ध्या वर्णाः यस्य तत् परार्ध्यवर्णं परार्ध्यवर्णं च तत् आस्तरणमिति परार्ध्यवर्णास्तरणं तेन परार्ध्यवर्णास्तरणेन उपपन्नं परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नं तत् परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नम् । रत्नानि सन्ति अस्मिन्निति रत्नवत् । उपमेया कान्तिर्यस्य स उपमेयकान्तिः । मयूरस्य पृष्ठं मयूरपृष्ठं मयूरपृष्ठमाश्रयतीति मयूरपृष्ठाश्रयी तेन मयूरपृष्ठाश्रयिणा । आससाद इति आसेदिवान् ।

भावार्थः—सुन्दररङ्गविरङ्गवस्त्राच्छादिते मणिमये आसने समुपविष्टः सोऽजः विविधचित्राङ्किते मयूरपृष्ठे समुपविष्टेन स्वामिना कार्तिकेयेन समः शुशुभे इति भावः ।

सञ्जीविनी—परार्ध्याः श्रेष्ठा वर्णा नीलपीतादयो यस्य तेनास्तरणेन कम्बलादिनोपपन्नं संगतं रत्नवद्रत्नखचितमासनं सिंहासनमासेदिवानधिष्ठितवान् सोऽजः मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन सेनान्या सह । 'सेनानीरग्निभूर्गुहः' इत्यमरः । भूयिष्ठमत्यर्थमुपमेयकान्तिरासीत् । मयूरस्य विचित्ररूपत्वात्तत्साम्यं रत्नासनस्य; तद्द्वारा च तदारूढयोरपीति भावः ।

भाषार्थ—राजकुमार अज का वह सिंहासन सोने का बना हुआ था, उसमें अनेक प्रकार के रत्न जड़े हुए थे एवं उसपर रंग-विरंग के बहुमूल्य मखमली वस्त्र बिछे हुए थे । उस पर बैठे हुए अज इस प्रकार सुन्दर लग रहे थे, मानों भगवान् शिव के पुत्र कार्तिकेयजी अपने वाहन मोर की पीठ पर बैठे हों ।।४

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तासु श्रिया राजपरम्परासु प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः ।
सहस्रधात्मा व्यरुचद्विभक्तः पयोमुचां पंक्तिषु विद्युतेव ॥ ५ ॥

अन्वयः—तासु राजपरम्परासु श्रिया पयोमुचां पङ्क्तिषु विद्युता इव सहस्रधा विभक्तः प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः आत्मा व्यरुचत् ।

व्याख्या—तासु=पूर्वोक्तासु । राजपरम्परासु=भूपालपङ्क्तिषु । श्रिया=लक्ष्म्या, शोभया । पयोमुचां=जलधराणाम् । पङ्क्तिषु=श्रेणीषु । विद्युता=चपलया, इव=यथा । सहस्रधा=सहस्रप्रकारेण विभक्तः । तरङ्गेषु तरणिरिव स्वयमेक एव प्रत्येकं संक्रामितः । प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः=कान्त्याविर्भावदुर्दर्शनः । आत्मा=श्रियः स्वरूपम् । व्यरुचत्=व्यद्योतिष्ठ ।

समासः—राज्ञां परम्परा राजपरम्परा तासु राजपरम्परासु । श्रयति हरिमिति श्रीः तया श्रिया । पयांसि मुञ्चन्तीति पयोमुचः तेषां पयोमुचाम् । सहस्रं प्रकाराः सहस्रधा । दुःखेन निरीक्षितुं शक्यः दुर्निरीक्ष्यः, प्रभाया विशेषः प्रभाविशेषः प्रभाविशेषस्य उदयः प्रभाविशेषोदयः प्रभाविशेषोदये दुर्निरीक्ष्यः प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः ।

भावार्थः—मेघपङ्क्तिषु विद्युता तरणिरिव स्वयम्वरमञ्चेषूपविष्टेषु प्रत्येकं राजसु प्रतिबिम्बितलक्ष्मीकत्वेनाजकुमारोऽत्यधिकं दुर्निरीक्ष्यो जात इति भावः ।

सञ्जीविनी—तासु राजपरम्परासु श्रिया लक्ष्म्या कर्त्र्या पयोमुचां मेघानां पङ्क्तिषु विद्युतेव सहस्रधा विभक्तः तरङ्गेषु तारिणीव स्वयमेव प्रत्येकं संक्रामित इत्यर्थः । प्रभाविशेषस्योदयेनाविर्भावेन दुर्निरीक्ष्यो दुर्दर्शन आत्मा श्रियः स्वरूपं व्यरुचद्व्यद्योतिष्ट । "द्युद्भ्यो लुङि" इति परस्मैपदम् । द्युतादित्वादङ्प्रत्ययः । तस्मिन्समये प्रत्येकं संक्रान्तलक्ष्मीकतया तेषां किमपि दुरासदं तेजः प्रादुरासीदित्यर्थः ।

भाषार्थ—वहाँ बैठे हुए राजाओं के वेषभूषा के चाक्यचिक्य से आँखें चौंधिया जाती थीं और ऐसा मालूम पड़ता था कि सौन्दर्य-लक्ष्मी ने अपनी शोभा उन राजाओं में इस प्रकार बाँट दी है जिस प्रकार बिजली अपनी चमक को बादलों में बाँट देती है ॥ ५ ॥

तेषां महार्हासनसंस्थितानामुदारनेपथ्यभृतां स मध्ये ।
रराज धाम्ना रघुसूनुरेव कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः ॥ ६ ॥

अन्वयः—महार्हासनसंस्थितानां उदारनेपथ्यभृतां तेषां मध्ये कल्पद्रुमाणां मध्ये पारिजात इव स रघुसूनुः एव धाम्ना रराज ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या—महार्हासनसंस्थितानां = बहुमूल्यसिंहासनोपविष्टानाम् । उदारनेपथ्यभृतां = उत्कृष्टवेषभूषाधारिणाम् । तेषां = भूपालानाम् । मध्ये = अन्तराले । कल्पद्रुमाणां = सुरवृक्षाणां मध्ये । पारिजात इव = देवद्रुमविशेष इव । सः = पूर्वोक्तः । रघुसूनुः = रघुपुत्रः अज एव । धाम्ना = तेजसा । रराज = शुशुभे ।

समासः—महच्च तत् अर्हं महार्हं महार्हं च तत् आसनमिति महार्हासनं महार्हासने संस्थिता महार्हासनसंस्थिताः तेषां महार्हासनसंस्थितानाम् । उदारं च तत् नेपथ्यम् उदारनेपथ्यं उदारनेपथ्यं बिभ्रतीति उदारनेपथ्यभृतः तेषाम् उदारनेपथ्यभृताम् । कल्पा इति द्रुमाः कल्पद्रुमाः तेषां कल्पद्रुमाणाम् । रघोः सूनुः रघुसूनुः ।

भावार्थः—बहुमूल्यसिंहासनासीनानां मनोहरवेषधारिणां तेषां महीपतीनां मध्ये देववृक्षाणां मध्ये वर्तमानः पारिजात इव रघुनन्दनः अज एव तेजसा अत्यधिकं शुशुभे इति भावः ।

सञ्जीविनी—महार्हासनसंस्थितानां श्रेष्ठसिंहासनस्थानाम् उदारनेपथ्यभृतामुज्ज्वलवेषधारिणां तेषां राज्ञां मध्ये कल्पद्रुमाणां मध्ये पारिजात इव सुरद्रुमविशेष इव । 'पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः । सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ।' इत्यमरः । स रघुसूनुरेव धाम्ना तेजसा । 'भूम्ना' इति पाठेऽतिशयेनेत्यर्थः । रराज । अत्र कल्पद्रुमशब्दः पञ्चान्यतमविशेषवचनः उपकल्पयन्ति मनोरथानिति व्युत्पत्त्या सुरद्रुममात्रोपलक्षकतया प्रयुक्त इत्यनुसन्धेयम् । कल्पा इव द्रुमा कल्पद्रुमा इति विग्रहः ।

भाषार्थ—सुन्दर वेश बनाकर बहुमूल्य सिंहासनों पर बैठे हुए उन राजाओं के बीच में विराजमान केवल एक रघुकुमार अज ही नन्दनवन के वृक्षों में पारिजात के समान अपने तेज से अधिक सुशोभित हो रहे थे ॥ ६ ॥

नेत्रव्रजाः पौरजनस्य तस्मिन्विहाय सर्वान्नृपतीन्निपेतुः ।
मदोत्कटे रेचितपुष्पवृक्षा गन्धद्विपे वन्य इव द्विरेफाः ॥ ७ ॥

अन्वयः—पौरजनस्य नेत्रव्रजाः सर्वान् नृपतीन् विहाय रेचितपुष्पवृक्षाः द्विरेफा मदोत्कटे वन्ये गन्धद्विपे इव तस्मिन् निपेतुः ।

व्याख्या—पौरजनस्य = नागरिकजनसमूहस्य । नेत्रव्रजाः = लोचनानि । सर्वान् = सकलान् । नृपतीन् = भूपालान् । विहाय = परित्यज्य । रेचितपुष्पवृक्षाः = परित्यक्तकुसुमद्रुमाः । द्विरेफाः = भ्रमराः । मदोत्कटे = मदोद्भिन्नगण्ड-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थले । वन्ये=आरण्यके । गन्धद्विपे=गन्धप्रधाने गजे । इव=यथा । तस्मिन्=अजे रघुपुत्रे । निपेतुः=निपतिताः ।

समासः—पुरे भवाः पौराः तेषां पौराणां जनः पौरजनः तस्य पौरजनस्य । नेत्राणां व्रजाः नेत्रव्रजाः । मदेन उत्कटः मदोत्कटः तस्मिन् मदोत्कटे । वने भवः वन्यः तस्मिन् वन्ये । गन्धप्रधानो द्विपः गन्धद्विपः तस्मिन् गन्धद्विपे । पुष्पाणां वृक्षाः पुष्पवृक्षा रेचिताः पुष्पवृक्षाः यैस्ते रेचितपुष्पवृक्षाः । द्वौ रेफौ येषां ते द्विरेफाः । नॄन् पान्तीति नृपतयः तान् नृपतीन् ।

भावार्थः—यथा कुसुमितान् तरून् विहाय गन्धप्रधाने मदस्राविणि गजे तद्गन्धलुब्धा भ्रमरा आकृष्टा भवन्ति तथैव नागरिकाणां नयनानि सर्वान् भूपतीन् परिहाय रघुनन्दने अजे एव समाकृष्टानीति भावः ।

सञ्जीविनी—पौरजनस्य नेत्रव्रजाः सर्वान् नृपतीन् विहाय तस्मिन्नजे निपेतुः । स एव सर्वोत्कर्षेण ददृश इत्यर्थः । कथमिव मदोत्कटे मदेनोद्भिन्नगण्डनिर्भरमदे । वा वन्ये गन्धद्विपे गन्धप्रधाने द्विपे गजे । रेचिता रिक्तीकृताः पुष्पाणां वृक्षा यैस्ते त्यक्तपुष्पवृक्षा इत्यर्थः, द्विरेफा भृङ्गा इव । द्विपस्य वन्यविशेषणं द्विरेफाणां पुष्पवृक्षत्यागसंभावनार्थं कृतम् ।

भाषार्थ—दर्शक नागरिकों की दृष्टियाँ सभी राजाओं से हटकर उस कुमार अज पर इस प्रकार आ लगीं जिस प्रकार भ्रमर विकसित वृक्षों को छोड़कर उत्कट गन्धवाले जंगली हाथी पर झुक पड़ते हैं ॥ ७ ॥

त्रिभिर्विशेषकमाह—

अथ स्तुते बन्दिभिरन्वयज्ञैः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके ।
संचारिते चागुरुसारयोनौ धूपे समुत्सर्पति वैजयन्तीः ॥ ८ ॥

अन्वयः—अथ अन्वयज्ञैः बन्दिभिः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके स्तुते सञ्चारिते अगुरुसारयोनौ धूपे च वैजयन्तीः समुत्सर्पति च सति पतिंवरा कन्या विवेश ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् । अन्वयज्ञैः=राजवंशाभिज्ञैः । बन्दिभिः=स्तुतिपाठकैः । सोमार्कवंश्ये=चन्द्रसूर्यकुलसम्भवे । नरदेवलोके=राजसमूहे । स्तुते=प्रशंसिते । सञ्चारिते=समन्तात् प्रचारिते । अगुरुसारयोनौ धूपे=सुरभिद्रव्यमिश्रितधूपे च वैजयन्तीः=पताकाः । समुत्सर्पति=अतिक्रम्य गच्छति सति, इन्दुमती मञ्चान्तरराजमार्गं विवेशेत्यग्रेण श्लोकेन सम्बन्धः ।

समासः—अन्वयं जानन्तीति अन्वयज्ञाः तैः अन्वयज्ञैः । सोमश्चार्कश्चेति सोमार्कौ सोमार्कयोः वंशः सोमार्कवंशः तस्मिन् भवः सोमार्कवंश्यः तस्मिन्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोमार्कवंश्ये । नराणां देवा नरदेवाः तेषां लोकः नरदेवलोकः तस्मिन् नरदेवलोके अगुरोः सारः योनिः यस्य स अगुरुसारयोनिः तस्मिन् अगुरुसारयोनौ ।

भावार्थः---राजवंशपरम्पराभिज्ञैः बन्दिभिः चन्द्र-सूर्ययोः वंशे समुत्पन्नानां क्षत्रियाणां परिचये दत्ते सुगन्धिद्रव्यमिश्रिते धूपे पताका अतिक्रम्योपरि उड्डीयमाने सति पतिम्वरा कन्या इन्दुमती मञ्चान्तरराजमार्गमाविवेशेति भावः ।

सञ्जीविनी---अथान्वयज्ञै राजवंशाभिज्ञैर्वन्दिभिः स्तुतिपाठकैः 'बन्दिनः स्तुतिपाठकाः' इत्यमरः । सोमार्कवंश्ये सोमसूर्यवंशभवे नरदेवलोके राजसमूहे स्तुते सति विवेशेत्युत्तरेण संबन्धः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् । संचारिते समन्तात् प्रचारिते अगुरुसारो योनिः कारणं यस्य तस्मिन् धूपे च वैजयन्तीः पताकाः समुत्सर्पति सति अतिक्रम्य गच्छति सति ।

भाषार्थ---इसके बाद राजवंश की परम्परा को जाननेवाले बन्दियों ने सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं की प्रशंसा की, और अगर के सार से निर्मित जलाई गई धूपबत्तियों का धूआँ उड़ कर फहराती हुई पताकाओं के ऊपर तक फैल गया ।। ८ ।।

पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां कलापिनामुद्धतनृत्यहेतौ ।
प्रध्मातशङ्खे परितो दिगन्तांस्तूर्यस्वने मूर्च्छति मङ्गलार्थे ।। ९ ।।

अन्वयः---पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां कलापिनां उद्धतनृत्यहेतौ प्रध्मातशङ्खे मङ्गलार्थे तूर्यस्वने परितः दिगन्तान् मूर्च्छति सति कन्या विवेशेति परेणान्वयः ।

व्याख्या---पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां=नगरसमीपारामवर्तिनाम् । कलापिनां=मयूराणाम् । उद्धतनृत्यहेतौ=मेघध्वनिसादृश्यान्नृत्यकारणे । प्रध्मातशङ्खे=वादितशङ्खे । मङ्गलार्थे=मङ्गलप्रयोजनके । तूर्यस्वने=वाद्यघोषे । परितः=सर्वतः । दिगन्तान्=आशावसानान् । मूर्च्छति=प्राप्नुवति सति कन्या मञ्चान्तरराजमार्गमाविवेशेत्यग्रिमेण सम्बन्धः ।

समासः--पुरस्योपकण्ठं पुरोपकण्ठं पुरोपकण्ठे उपवनानि पुरोपकण्ठोपवनानि पुरोपकण्ठोपवनानि आश्रयो येषां ते पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाः तेषां पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणाम् । उद्धतं च तत् नृत्यमुद्धतनृत्यम् उद्धतनृत्यस्य हेतुः उद्धतनृत्यहेतुः तस्मिन् उद्धतनृत्यहेतौ । प्रध्माताः शङ्खाः यस्मिन् तत् प्रध्मातशङ्खं तस्मिन् प्रध्मातशङ्खे । मङ्गलमेव अर्थः यस्य स मङ्गलार्थः तस्मिन् मङ्गलार्थे । तूर्याणां स्वनः तूर्यस्वनः तस्मिन् तूर्यस्वने । दिशामन्ता दिगन्तास्तान् दिगन्तान् । मूर्च्छतीति मूर्च्छन् तस्मिन् मूर्च्छति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—नगरसमीपस्थारामवर्तिनां मयूराणां नृत्यकारणे शङ्खे वादिते मङ्गलवाद्यध्वनौ सर्वत्र व्याप्ते सति इन्दुमतीस्वयम्वरस्थानमाविवेशेति भावः।

सञ्जीविनी—किं च पुरस्योपकण्ठे समीप उपवनान्याश्रयो येषां कलापिनां बर्हिणामुद्धतनृत्यहेतौ मेघध्वनिसादृश्यात्ताण्डवकारणे प्रध्माताः पूरिताः शङ्खा यत्र तस्मिन् मङ्गलार्थे मङ्गलप्रयोजनके तूर्यस्वने वाद्यघोषे परितः सर्वतो दिगन्तान्मूर्च्छति व्याप्नुवति सति।

भाषार्थ—नगर के आस-पास के उपवनों में रहनेवाले मोरों के प्रसन्नतापूर्वक नाचने के कारणभूत मांगलिक बाजों की ध्वनियाँ दशों दिशाओं में गूँज उठीं और शंख बजने लगे ॥ ९॥

मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि।
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा ॥ १० ॥

अन्वयः—पतिम्वरा क्लृप्तविवाहवेषा कन्या मनुष्यवाह्यं परिवारशोभि चतुरस्रयानं अध्यास्य मञ्चान्तरराजमार्गं विवेश।

व्याख्या—पतिम्वरा=स्वयंवरा। क्लृप्तविवाहवेषा=विहितपरिणयनेपथ्या। कन्या=कुमारी इन्दुमती। मनुष्यवाह्यं=नरवाह्यम्। परिजनशोभि=सखीजनविराजमानम्। चतुरस्रयानं=चतुःकोणां शिविकाम्। अध्यास्य=आरुह्य। मञ्चान्तरराजमार्गम्=मञ्चमध्यमार्गम्। विवेश=प्रविष्टा।

समासः—पतिं वृणोतीति पतिम्वरा। विवाहस्य वेषः विवाहवेषः क्लृप्तः विवाहवेषो यया सा क्लृप्तविवाहवेषा। वोढुं शक्यं वाह्यं मनुष्यैः वाह्यं मनुष्यवाह्यम् तत् मनुष्यवाह्यम्। परिवारेण शोभते इति परिवारशोभि तत् परिवारशोभि। चत्वारः अस्रा यस्मिन् तत् चतुरस्रं, चतुरस्रं यानमिति चतुरस्रयानम् तत् चतुरस्रयानम्। मञ्चानामन्तरं मञ्चान्तरं मञ्चान्तरे मार्गः मञ्चान्तरमार्गः तं मञ्चान्तरमार्गम्।

भावार्थः—स्वयम्वरा इन्दुमती विवाहयोग्यं वेषं विधाय सखीजनैः सह नरवाह्यं यानमारुह्य मञ्चमध्ये निर्मितं मार्गमाविशदित्यर्थः।

सञ्जीविनी—पतिं वृणोतीति पतिंवरा स्वयंवरा। 'अथ स्वयंवरा पतिंवरा च वर्याऽथ' इत्यमरः। "संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः" इत्यनेन खच्प्रत्ययः। क्लृप्तविवाहवेषा कन्येन्दुमती मनुष्यवाह्यं परिवारेण परिजनेन शोभि चतुरस्रयानं चतुरस्रवाहनं शिविकामध्यास्यारुह्य मञ्चान्तरे मञ्चमध्ये यो राजमार्गस्तं विवेश।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषार्थ--इसी बीच पति को स्वयं वरण करनेवाली विवाह के समय का वेष धारण किए हुए कुमारी इन्दुमती सखियों से सुशोभित मनुष्यों के द्वारा ढोयी जाने वाली पालकी पर चढ़कर मंचों के बीच बने हुए राजमार्ग पर आ गई ।।१०।।

तस्मिन्विधानातिशये विधातुः कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये ।
निपेतुरन्तःकरणैर्नरेन्द्रा देहैः स्थिताः केवलमासनेषु ।। ११ ।।

अन्वयः—नेत्रशतैकलक्ष्ये कन्यामये तस्मिन् विधातुः विधानातिशये नरेन्द्राः अन्तःकरणैः निपेतुः, केवलं आसनेषु देहैः स्थिताः आसन् ।

व्याख्या—नेत्रशतैकलक्ष्ये = अनेकलोचनैकदृश्ये । कन्यामये = कन्यारूपे । तस्मिन्=पूर्वोक्ते । विधातुः = ब्रह्मणः । विधानातिशये = सृष्टिविशेषे । नरेन्द्राः =राजानः । अन्तःकरणैः = चित्तैः । निपेतुः = संलग्नाः । आसनेषु = स्वेषु स्वेषु सिंहासनेषु । देहैः = शरीरैः । केवलं = केवलमेव । स्थिताः = उपविष्टाः ।

समासः--एकश्चासौ लक्ष्यः एकलक्ष्यः नेत्राणां शतानि नेत्रशतानि नेत्रशतानाम् एकलक्ष्यः नेत्रशतैकलक्ष्यः तस्मिन् नेत्रशतैकलक्ष्ये । कन्या एव कन्यामयः तस्मिन् कन्यामये । विदधातीति विधाता तस्य विधातुः विधानस्य अतिशयः विधानातिशयः तस्मिन् विधानातिशये । नराणामिन्द्राः नरेन्द्राः ।

भावार्थः--अनेकेषां लोचनानां गोचरं कन्यास्वरूपमवलोक्य राजानः तन्मया भूत्वा इन्दुमतीं ददृशुः । तेषां शरीरमात्राण्येव स्वासनेषु स्थितानि, किन्तु ते मनोभिस्तदासक्ता अभूवन्निति भावः ।

सञ्जीविनी--नेत्रशतानामेकलक्ष्ये एकदृश्ये कन्यामये कन्यारूपे तस्मिन् विधातुर्विधानातिशये सृष्टिविशेषे नरेन्द्राः अन्तःकरणैर्निपेतुः आसनेषु देहैः केवलं देहैरेव स्थिताः देहानपि विस्मृत्य तत्रैव दत्तचित्ता बभूवुरित्यर्थः । अन्तःकरणकर्तृके निपतने नरेन्द्राणां कर्तृत्वव्यपदेश आदरातिशयार्थः ।

भावार्थ—सैकड़ों नेत्रों का एकमात्र लक्ष्य कन्यारूप ब्रह्मा की सर्वोत्तम रचना उस इन्दुमती पर राजवर्ग अन्तःकरण से मग्न हो गया, केवल उनके शरीर मंचों पर रह गये थे । अर्थात् इन्दुमती के प्रति सभी राजाओं का हृदय आकृष्ट हो गया, वे एकटक होकर उसे देखने लगे ।। ११ ।।

तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः ।
प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः ।। १२ ।।

अन्वयः—तां प्रति अभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः विविधाः शृङ्गारचेष्टाः पादपानां प्रवालशोभा इव बभूवुः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या—तां=इन्दुमतीम् प्रति उद्दिश्य । अभिव्यक्तमनोरथानां= प्ररूढाभिलाषाणाम् । महीपतीनां=भूपतीनाम् । प्रणयाग्रदूत्यः=प्रेमप्रथम-दूतिकाः । विविधाः=बहुविधाः शृङ्गारचेष्टाः=भ्रूविक्षेपस्मितादयः पादपानां =वृक्षाणाम् । प्रवालशोभाः=पल्लवसम्पदः । इव=यथा । बभूवुः=अजायन्त ।

समासः—अभिव्यक्तः मनोरथो येषां ते अभिव्यक्तमनोरथाः तेषाम् अभि-व्यक्तमनोरथानाम् । मह्यां पतयः महीपतयः तेषां महीपतीनाम् । प्रणयेषु अग्र-दूत्यः प्रणयाग्रदूत्यः । शृङ्गारस्य चेष्टाः शृङ्गारचेष्टाः । पादैः पिबन्तीति पादपाः तेषां पादपानाम् । प्रवालानां शोभाः प्रवालशोभाः ।

भावार्थः—तामिन्दुमतीं प्रति प्रेम प्रकटयतां नृपतीनां वृक्षाणां पल्लवा इव विविधा भ्रूविक्षेपस्मितादयः शृङ्गारचेष्टा प्रेमाग्रदूत्य इव अजायन्तेति भावः ।

सञ्जीविनी—तामिन्दुमतीं प्रति अभिव्यक्तमनोरथानां प्ररूढाभिलाषाणां महीपतीनां राज्ञां प्रणयाग्रदूत्यः । प्रणयः प्रार्थना प्रेम वा 'प्रणयास्त्वमी । विस्रम्भयाच्ञाप्रेमाणः' इत्यमरः । प्रणयेऽग्रदूत्यः प्रथमदूतिकाः प्रणयप्रकाशकत्व-साम्याद्दूतीत्वव्यपदेशः । विविधाः शृङ्गारचेष्टा शृङ्गारविकाराः पादपानां प्रवालशोभाः पल्लवसंपद इव बभूवुरुत्पन्नाः । अत्र शृङ्गारलक्षणं रससुधाकरे— 'विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः । नीता सदस्यरस्यत्वं रतिः शृङ्गार उच्यते ॥' रतिरिच्छाविशेषः । तच्चोक्तं तत्रैव—'यूनोरन्योन्यविषयस्थायि-नीच्छा रति स्मृताः ।' इति । चेष्टाशब्देन तदनुभावविशेषा उच्यन्ते । तेऽपि तत्रै-वोक्ताः—'भावं मनोगतं साक्षात् स्वहेतुं व्यञ्जयन्ति ये । तेऽनुभावा इति ख्याता भ्रूविक्षेपस्मितादयः ॥ ते चतुर्धा चित्तगात्रवाग्बुद्ध्यारम्भसम्भवाः ।' इति । तत्र गात्रारम्भसंभवाश्चेष्टाशब्दोक्ताननुभावान् 'कश्चित्'—इत्यादिभिः श्लोकैर्वक्ष्यति शृङ्गाराभासश्चायमेकत्रैव प्रतिपादनात् । तदुक्तम्—'एकत्रैवानुरागश्चेत्ति-र्यक्शब्दगतोऽपि वा । योषितां बहुशक्तिश्चेद्रसाभासस्त्रिधा मतः ॥'

भावार्थ—उस इन्दुमती के प्रति स्पष्ट अभिलाषा वाले राजाओं ने वृक्षों के पल्लवों की शोभा के समान अनेक प्रकार की शृङ्गारचेष्टायें कीं, वे चेष्टायें मानों उनके प्रेम को इन्दुमती तक पहुँचानेवाली दूतियाँ थीं ॥ १२ ॥

'शृङ्गारचेष्टा बभूवुः' इत्युक्तम्, ता एव दर्शयति—

कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम् ।
रजोभिरन्तःपरिवेषबन्धि लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार ॥ १३ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः—कश्चित् कराभ्यां उपगूढनालं आलोलपत्राभिहितद्विरेफम् रजोभिरन्तःपरिवेषबन्धि लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार।

व्याख्या—कश्चित् = कोऽपि राजा। कराभ्यां = हस्ताभ्याम्। उपगूढनालम् = गृहीतकमलदण्डम्। आलोलपत्राभिहतद्विरेफम् = ईषच्चञ्चलदलताडितभ्रमरम्। रजोभिः = पुष्परेणुभिः। अन्तः = मध्ये। परिवेषबन्धि = मण्डलाकारम्। लीलारविन्दं = क्रीडाकमलम्। भ्रमयाञ्चकार = भ्रमयामास। करस्थक्रीडाकमलवत्त्वयाऽहं भ्रमयितव्य इति राज्ञोऽभिप्रायः। हस्तघूर्णकोऽयमपलक्षण इतीन्दुमत्यभिप्रायः—इति मल्लिनाथः।

समासः—उपगूढं नालं यस्य तत् उपगूढनालम्। आलोलानि च तानि पत्राणि अलोलपत्राणि आलोलपत्रैः अभिहताः द्विरेफा येन तत् आलोलपत्राभिहतद्विरेफम्, तत् आलोलपत्राभिहतद्विरेफम्। परिवेषं बध्नातीति परिवेषबन्धि तत् परिवेशबन्धि। लीलाया अरविन्दं लीलारविन्दम्, तत् लीलारविन्दम्।

भावार्थः—कश्चिद् राजा स्वकरे कमलं गृहीत्वा तद् मण्डलाकारं शनैः शनैः भ्रामयति स्म, तेन भ्रमरा अपसृताः परन्तु रजोमण्डलाकारं जातमिति भावः।

सञ्जीविनी—कश्चिद्राजा कराभ्यां पाणिभ्यामुपगूढनालं गृहीतनालम् आलोलैश्चञ्चलैः पत्रैरभिहता ताडिता द्विरेफा भ्रमरा येन तत्तथोक्तं रजोभिः परागैरन्तः—परिवेषमण्डलं बध्नातीत्यन्तःपरिवेषबन्धि। लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार। करस्थलीलारविन्दवत्त्वयाहं भ्रमयितव्य इति नृपाभिप्रायः। हस्तघूर्णकोऽयमपलक्षणक इतीन्दुमत्यभिप्रायः।

भाषार्थ—कोई राजा अपने हाथ में लिए नालदण्ड वाले लीलाकमल को घुमाने लगा। उसके घुमाने से भौंरे तो इधर-उधर भाग गये, किन्तु उसके ऊपर भरे हुए पराग के चारों ओर फैल जाने से एक मण्डल-सा बँध गया॥ १३॥

विस्रस्तमंसादपरो विलासी रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम्।
प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाशं निनाय साचीकृतचारुवक्त्रः॥ १४॥

अन्वयः—साचीकृतचारुवक्त्रः अपरः विलासी अंसात् विलग्नं रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नं प्रालम्बं उत्कृष्य यथावकाशं निनाय।

व्याख्या—अपरः = अन्यः। विलासी = विलसनशीलः राजा। अंसात् = स्कन्धात्। विस्रस्तं = गलितम्। रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम् = हीरकादिमणिखचितकेयूरकोणश्लिष्टम्। प्रालम्बं = ऋजुलम्बिनीं स्रजम्। उत्कृष्य = उद्धृत्य। साचीकृतचारुवक्त्रः = तिर्यक्कृतसुन्दरमुखः। सन्। यथावकाशं = यथास्थानम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निनाय = नीतवान् । प्रावारोत्क्षेपणव्याजेनाहं त्वामेव परिरप्स्ये इति नृपाभिप्रायः। गोपनीयं किञ्चिदङ्गेऽस्ति ततोऽयं प्रावृणुते इतीन्दुमत्यभिप्राय इति मल्लिनाथस्य तात्पर्यम् ।

समासः—विलसति तच्छीलो विलासी । रत्नैः अनुविद्धं यत् अङ्गदमिति रत्नानुविद्धाङ्गदं रत्नानुविद्धाङ्गदस्य कोटिः रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिः रत्नानुविद्धाङ्गदकोटौ लग्नमिति रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नं तत् रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम्। अवकाशमनतिक्रम्य यथावकाशम्। न साचि असाचि असाचि साचि सम्पद्यमानमिति साचीकृतम्, साचीकृतं चारु वक्त्रं येन सः साचीकृतचारुवक्त्रः।

भावार्थः—अन्यो विलासी स्कन्धात् विगलितां हीरकादिरत्नजटितस्याङ्गदस्य कोणे संलग्नां मालां प्रावारे वा मुखं तिर्यक् कृत्वा यथास्थाने स्थापयन् तामिन्दुमतीं ददर्शेति भावः ।

सञ्जीविनी—विलसनशीलो विलासी । "वौ कषलसकत्थस्रम्भः" इति घिनुण्प्रत्ययः। अपरो राजांसाद्विस्रस्तं रत्नानुविद्धं रत्नखचितं यदङ्गदं केयूरं तस्य कोटिलग्नं प्रालम्बमृजुलम्बिनीं स्रजम् । 'प्रालम्बमृजुलम्बि स्यात्कण्ठात्' इत्यमरः, 'प्रावारम्' इति पाठे तूत्तरीयं वस्त्रम् । 'उत्कृष्योद्धृत्य साचीकृतं तिर्यक्कृतं चारु वक्त्रं यस्य स तथोक्तः सन् यथावकाशं स्वस्थानं निनाय। प्रावारोत्क्षेपणच्छलेनाहं न त्वामेवं परिरप्स्ये इति नृपाभिप्रायः। गोपनीयं किञ्चिदङ्गेऽस्ति ततोऽयं प्रावृणुते इतीन्दुमत्यभिप्रायः ।

भाषार्थ—दूसरा विलासी राजा कन्धे से नीचे सरके हुए रत्नों से जटित भुजबन्ध के किनारे में उलझे हुए दुपट्टे को थोड़ा मुख घुमाकर फिर से गले में रखने लगा ॥ १४ ॥

आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना ततोऽन्यः किञ्चित्समावर्जितनेत्रशोभः ।
तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण पादेन हैमं विलिलेख पीठम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—ततः अन्यः किञ्चित्समावर्जितनेत्रशोभः सन् आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण पादेन हैमं पीठं विलिलेख ।

व्याख्या—ततः = तस्मात् पूर्वोक्तात् । अन्यः=अपरो विलासी। किञ्चित्समावर्जितनेत्रशोभः = ईषदावर्जितनेत्रकान्तिः सन् । आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना = ईषद्भुग्नाङ्गुल्यग्रभागेन । तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण = साचिविसर्पणशीलपुनर्भवकान्तिना। पादेन=चरणेन । हैमं=सौवर्णम् । पीठम्=पादासनम् । विलिलेख=लिखितवान् । अत्र मल्लिनाथः = पादाङ्गुलीनामाकुञ्चनेन त्वं मत्समी-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पमागच्छेति नृपाभिप्रायः । भूमिलेखकोऽयमपलक्षणक इतीन्दुमत्याशयः, यतो हि भूमिविलेखनं लक्ष्मीविनाशहेतुरिति उत्प्रेक्षितवान् ।

समासः—किञ्चित्समावर्जिता नेत्राणां शोभा येन स किञ्चित्समावर्जितनेत्रशोभः । ईषत्कुञ्चिता आकुञ्चिता आकुञ्चिता अग्राङ्गुलयो यस्य स आकुञ्चिताग्राङ्गुलिः तेन आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना । तिर्यग्विसंसर्पिण्यः नखानां प्रभा यस्य स तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभः तेन तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण । हेम्न इदं हैमं तत् हैमम् ।

भावार्थः—अन्यो विलासी नेत्रं तिर्यक् कृत्वा पादनखाग्रेण स्वर्णपादपीठं समाकुञ्चन्निन्दुमतीं समावर्जयितुं चेष्टवानिति भावः ।

सञ्जीविनी—ततः पूर्वोक्तादन्योऽपरो राजा किंचित्समावर्जितनेत्रशोभ ईषदर्वाक्पतितनेत्रशोभः सन् आकुञ्चिता आभुग्ना अग्राङ्गुलयो यस्य तेन तिर्यग्विसंसर्पिण्यो नखप्रभा यस्य तेन च पादेन हैमं हिरण्मयं पीठं पादपीठं विलिलेख लिखितवान् । पादाङ्गुलीनामाकुञ्चनेन त्वं मत्समीपमागच्छेति नृपाभिप्रायः । भूमिविलेखकोऽयमपलक्षणक इतीन्दुमत्याशयः। भूमिविलेखनं तु लक्ष्मीविनाशहेतुः।

भाषार्थ—तीसरा राजा नेत्र को थोड़ा नीचे करके कटाक्षविक्षेप करता हुआ चारों तरफ फैलती हुई नखों की चमक वाली और कुछ मोड़ी हुई पैर की अंगुलियों से सुवर्ण निर्मित पावदान पर कुछ लिखने लगा ।। १५ ।।

निवेश्य वामं भुजमासनार्धे तत्संनिवेशादधिकोन्नतांसः ।
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत् ।। १६ ।।

अन्वयः—कश्चित् आसनार्धे वामं भुजं निवेश्य तत्सन्निवेशात् अधिकोन्नतांसः विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सन् सुहृत्समाभाषणतत्परः अभूत् ।

व्याख्या—कश्चित्=कोऽपि राजा । वामं=दक्षिणेतरम् । भुजं=बाहुम् । आसनार्द्धे=सिंहासनस्यैकभागे । निवेश्य=संस्थाप्य । यस्य=वामभुजस्य । तत्सन्निवेशात्=वामभुजस्थापनात् । अधिकोन्नतांसः=विशेषोत्थितदक्षिणांसभागः सन् । विवृत्तत्रिकभिन्नहारः=परावृतपृष्ठवंशचरलुण्ठितहारः । सुहृत्समाभाषणतत्परः=मित्रालापसंलग्नः । अभूत्=अभवत् ।

समासः—तस्य सन्निवेशः तत्सन्निवेशः तस्मात् तत्सन्निवेशात् । अधिकः उन्नतः अंसो यस्य स अधिकोन्नतांसः । विवृत्तं त्रिकं विवृत्तत्रिकं विवृत्तत्रिके भिन्नःहारो यस्य स विवृतत्रिकभिन्नहारः । सुहृदा समाभाषणं सुहृत्समाभाषणं सुहृत्समाभाषणे तत्परः सुहृत्समाभाषणतत्परः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—कश्चिद् विलासी राजा वामभागं सिंहासनस्यैकभागे वामभागे स्थितेन मित्रेण वार्तालापं चकारेति भावः। त्वां वामभागे स्थापयित्वैवं वार्तालापं करिष्यामीति राज्ञोऽभिप्रायः, किन्तु इन्दुमती तं परपराङ्मुखं मत्वोपेक्षितवतीति भावः।

सञ्जीविनी—कश्चिद्राजा वामं भुजमासनार्धे सिंहासनैकदेशे निवेश्य संस्थाप्य तत्संनिवेशात्तस्य वामभुजस्य संनिवेशात्संस्थापनादधिकोन्नतोंऽसो वामांस एव यस्य स तथोक्तः सन् विवृत्ते परावृत्ते त्रिके त्रिकप्रदेशे भिन्नहारो लुण्ठितहारः सन् 'पृष्ठवंशाधरे त्रिकम्' इत्यमरः। सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत्। वामपार्श्ववर्तिनैव मित्रेण संभाषितुं प्रवृत्त इत्यर्थः। अत एव विवृत्तत्रिकत्वं घटते। त्वया वामाङ्गे निवेशितया सहैवं वार्तां करिष्ये इति नृपाभिप्रायः। परं दृष्ट्वा पराङ्मुखोऽयं न कार्यकर्ता इतीन्दुमत्यभिप्रायः।

भाषार्थ—कोई राजा सिंहासन के आधे भाग में बाईं भुजा को रखकर अपने पास बैठे हुए मित्र से बातचीत करने लगा जिससे उसका दायाँ कन्धा कुछ ऊँचा हो गया और गले का हार पृष्ठ अंश पर लटक गया ॥ १६ ॥

विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकबर्हमन्यः।
प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैर्विपाटयामास युवा नखाग्रैः ॥ १७ ॥

अन्वयः—अन्यः युवा प्रियानितम्बोचितसन्निवेशैः नखाग्रैः विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रम् आपाण्डुरं केतकबर्हं विपाटयामास।

व्याख्या—अन्यः=अपरः। युवा=तरुणः। विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रं=प्रियाविलासप्रयोजनकर्णभूषणभूतम्। आपाण्डुरं=ईषद्धवलम्। केतकबर्हं=केतकीदलम्। प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैः=स्वभार्याकटिसमभ्यस्तनिक्षेपणैः। नखाग्रैः=करसरोरुहाग्रभागैः। विपाटयामास=विदारयामास। अहं तव नितम्बे एवं नखव्रणादीन् दास्यामीति नृपाभिप्रायः। तृणच्छेदवत् पत्रत्रोटकोऽपलक्षणकोऽयमितीन्दुमत्याशयः इति मल्लिनाथ उत्प्रेक्षितवान्।

समासः—विलासिन्या विभ्रमार्थं दन्तपत्रमिति विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रं तत् विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रम्। आसमन्तात् पाण्डुरमिति आपाण्डुरं तत् आपाण्डुरम्। केतकस्य बर्हमिति केतकबर्हं तत् केतकबर्हम्। नितरां तम्यते इति नितम्बः प्रियायाः नितम्बः प्रियानितम्बः प्रियानितम्बे उचितः सन्निवेशः येषां तानि प्रियानितम्बोचितसन्निवेशानि तैः प्रियानितम्बोचितसन्निवेशैः। नखानामग्राणि नखाग्राणि तैः नखाग्रैः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—कश्चन युवा विलासी राजा स्वभार्याया नितम्बे चिह्ननिर्माणदक्षेण नखेन किञ्चित् पाण्डुवर्णं केतकीपत्रं विदारयामास यद्धि कस्याश्चिद् विलासिन्या शृङ्गारार्थमाभूषणं निर्मितमासीदिति भावः।

सञ्जीविनी—अन्यो युवा विलासिन्याः प्रियाया विभ्रमार्थं दन्तपत्रं दन्तपत्रभूतमापाण्डुरं केतकबर्हं केतकदलम्। 'दलेऽपि बर्हम्' इत्यमरः। प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैरम्यस्तनिक्षेपणैर्नखाग्रैर्विपाटयामास (विदारयामास) अहं तव नितम्ब एवं नखव्रणादीन्दास्यामीति नृपाशयः। तृणच्छेदकवत्पत्रपाटकोऽयमपलक्षणकः इतीन्दुमत्याशयः।

भाषार्थ—एक दूसरा युवक राजा किसी विलासिनी स्त्री के शृङ्गार के लिए कान के आभूषण के रूप में बने हुए श्वेत वर्ण के केतकीपुष्प के पत्तों को प्रिया के नितम्बों पर रखने के योग्य नखाग्रों से नोच रहा था॥ १७॥

कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित् करेण रेखाध्वजलाञ्छनेन।
रत्नाङ्गुलीयप्रभयानुविद्धानुदीरयामास सलीलमक्षान्॥ १८॥

अन्वयः—कश्चित् कुशेशयाताम्रतलेन रेखाध्वजलाञ्छनेन करेण रत्नाङ्गुलीयप्रभया अनुविद्धान् अक्षान् सलीलं उदीरयामास।

व्याख्या—कश्चित्=अन्यो राजा। कुशेशयाताम्रतलेन=रक्तोत्पलारक्तपाणितलेन। रेखाध्वजलाञ्छनेन=सौभाग्यसूचकपाणिरेखारूपचिह्नेन। करेण=पाणिना। रत्नाङ्गुलीयप्रभया=हीरकादिमणिमुद्रिकाकान्त्या। अनुविद्धान्=व्याप्तान्। अक्षान्=पाशान्। सलीलं=सक्रीडम्। उदीरयामास=उच्चिक्षेप। अत्र मल्लिनाथः—अहं त्वया सहैवं रंस्ये—इति नृपाभिप्रायः। अक्षचातुर्येण कापुरुषोऽयमिति—इन्दुमत्यभिप्रायः। अक्षैर्मा दिव्येति श्रुतिनिषेधात्।

समासः—कुशेशयानिव आताम्रं तलं यस्य स कुशेशयाताम्रतलः तेन कुशेशयाताम्रतलेन। रेखारूपो ध्वजो लाञ्छनं यस्य स रेखाध्वजलाञ्छनः तेन रेखाध्वजलाञ्छनेन। अङ्गुलिषु भवानि अङ्गुलीयानि रत्नानाम् अङ्गुलीयानि रत्नाङ्गुलीयानि रत्नाङ्गुलीयानां प्रभा रत्नाङ्गुलीयप्रभा तया रत्नाङ्गुलीयप्रभया। लीलया सहितं सलीलम्।

भावार्थः—कश्चिदन्यो विलासी रक्तोत्पलताम्ररेखाध्वजचिह्नवता हस्तेन रत्नजटिताङ्गुलीयकप्रभाव्याप्तान् पाशानुच्चिक्षेपेति भावः।

सञ्जीविनी—कश्चिद्राजा कुशेशयं शतपत्रमिवाताम्रं तलं यस्य तेन। 'शतपत्रं कुशेशयम्' इत्यमरः। रेखारूपी ध्वजो लाञ्छनं यस्य तेन करेण अङ्गुलीषु

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भवान्यङ्गुलीयान्यूर्मिकाः। 'अङ्गुलीयकमूर्मिका' इत्यमरः। 'जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः' इति छप्रत्ययः। रत्नानामङ्गुलीयानि तेषां प्रभयानुविद्धान् व्याप्तानक्षान् पाशान् 'अक्षास्तु देवनाः पाशकाश्च ते' इत्यमरः। सलीलमुदीरयामासोच्चिक्षेप। अहं त्वया सहैवं रंस्ये—इति नृपाभिप्रायः। अक्षचातुर्ये कापुरुषोऽयमितीन्दुमत्यभिप्रायः। 'अक्षैर्मा दीव्येत्' इति श्रुतिनिषेधात्।

भाषार्थ—कोई राजा जिसकी हथेली कमल के समान लाल थी और उस पर ध्वजा की रेखायें बनी हुई थीं, वह अपने हाथ से रत्नजटित अँगूठी की कान्ति से झलकते हुए पाशों को धीरे-धीरे उछाल रहा था॥ १८॥

कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसंनिवेशाद्व्यतिलङ्घिनीव।
वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे॥ १९॥

अन्वयः—कश्चित् यथाभागम् अवस्थिते अपि स्वसन्निवेशात् व्यतिलङ्घिनि इव किरीटे वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्र एकं करं व्यापारयामास।

व्याख्या—कश्चित्=कश्चन राजा। यथाभागं=यथास्थानम्। अवस्थिते अपि=वर्तमाने अपि। स्वसन्निवेशात्=निजस्थानात्। व्यतिलङ्घिनि=चलिते इव यथा किरीटे=मुकुटे। वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रं=मुकुटजटितहीरकादिरत्नकिरणमध्यम्। एकं=द्वयोरन्यतरम्। करं=हस्तम्। व्यापारयामास। अत्रापि मल्लिनाथः—किरीटवन्मम शिरसि स्थितामपि त्वां भारं न मन्ये, इति नृपाभिप्रायः। शिरसि न्यस्तहस्तोऽयमपलक्षणक इतीन्दुमत्यभिप्रायः।

समासः—भागमनतिक्रम्य यथाभागम्। स्वस्य सन्निवेशः स्वसन्निवेशः तस्मात् स्वसन्निवेशात्। अङ्गुलीनां रन्ध्राणि अङ्गुलिरन्ध्राणि, वज्राणामंशवः गर्भे येषां तानि वज्रांशुगर्भाणि, वज्रांशुगर्भाणि अङ्गुलिरन्ध्राणि, यस्य स वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रः तं वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रम्।

भावार्थः—कश्चिद्राजा यथास्थानं स्थितमपि किरीटं स्वस्थानात् भ्रंसितं मत्वा तत् भूयो भूय एकेन हस्तेन पस्पर्श, यस्य हस्तस्याङ्गुलीनां मध्यं मुकुटजटितहीरकादिरत्नांशुभिः विद्योतते स्मेति भावः।

सञ्जीविनी—कश्चिद्यथाभागं यथास्थानमवस्थितेऽपि स्वसन्निवेशाद्व्यतिलङ्घिनीव स्वस्थानाच्चलित इव किरीटे वज्राणां किरीटगतानामंशवो गर्भे येषां तान्यङ्गुलिरन्ध्राणि यस्य तमेकं करं व्यापारयामास। 'किरीटवन्मम शिरसि स्थितामपि त्वां भारं न मन्ये' इति नृपाभिप्रायः। 'शिरसि न्यस्तहस्तोऽयमपलक्षणः' इतीन्दुमत्यभिप्रायः।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—कोई राजा अपने स्थान पर स्थित रहने पर भी मुकुट को अपने स्थान से सरका हुआ समझकर उसपर अपना एक हाथ रखता था, ऐसा करने में उसके हाथ की अंगुलियों के बीच का भाग मुकुट के रत्नों की किरणों से चमक उठता था ॥ १९ ॥

ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा पुंवत्प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी ।
प्राक्सन्निकर्षं मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीमवदत्सुनन्दा ॥ २० ॥

अन्वयः—ततः नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा पुंवत्प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी सुनन्दा प्राक् कुमारीं मगधेश्वरस्य सन्निकर्षं नीत्वा पुंवत् अवदत् ।

व्याख्या—ततः=अनन्तरम् । नृपाणां=नृपतीनाम् । श्रुतवृत्तवंशा=आकर्णितनृपवृत्तवंशा । पुंवत्प्रगल्भा=पुरुषवद्वाग्मिनी । सुनन्दा=सुनन्दाख्या । प्रतिहाररक्षी=द्वारपालिका । प्राक्=प्रथमम् । कुमारीं=इन्दुमतीम् । मगधेश्वरस्य=मगधनरेशस्य । सन्निकर्षं=समीपम् । नीत्वा=उपस्थाय । अवदत्=उक्तवती ।

समासः—नॄन् पान्तीति नृपाः, तेषां नृपाणाम् । वृत्तानि च वंशाश्च वृत्तवंशाः श्रुता वृत्तवंशा यया सा श्रुतवृत्तवंशा । पुंसा तुल्यं पुंवत् प्रकर्षेण प्रगल्भते इति प्रगल्भा पुंवत् प्रगल्भा इति पुंवत्प्रगल्भा । प्रतिहारं रक्षतीति प्रतिहाररक्षी । मगधानामीश्वरः मगधेश्वरः तस्य मगधेश्वरस्य ।

भावार्थः—इन्दुमत्याः स्वयम्वरस्थानोपस्थानानन्तरं राजवंशवृत्तज्ञा पुरुषवत्प्रभाषिणी द्वारपालिका सुनन्दा कुमारीं इन्दुमतीं प्रथमं मगधेश्वरस्य पार्श्वे समुपस्थाय अवोचदित्यर्थः ।

सञ्जीविनी—ततोऽनन्तरं नृपाणां श्रुतनृपवंशा श्रुतवृत्तवंशेत्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । प्रगल्भा वाग्मिनी सुनन्दा सुनन्दाख्या प्रतिहारं रक्षतीति प्रतिहाररक्षी द्वारपालिका । कर्मण्यण्प्रत्ययः । 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' इत्यनेन ङीप् । प्राक्प्रथमं कुमारीमिन्दुमतीं मगधेश्वरस्य सन्निकर्षं समीपं नीत्वा पुंवत्पुंसा तुल्यम् । "तेन तुल्यम् क्रिया चेद्वतिः" इति वतिप्रत्ययः । अवदत् ।

भावार्थ—इसके बाद राजाओं के आचरण, विचार एवं वंशपरम्परा को जानने वाली और पुरुषों के समान ढीठ बोलने वाली द्वारपालिका सुनन्दा राजकुमारी इन्दुमती को सर्वप्रथम मगधनरेश के पास ले जाकर बोली ॥ २० ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असौ शरण्यः शरणोन्मुखानामगाधसत्त्वो मगधप्रतिष्ठः ।
राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः परन्तपो नाम यथार्थनामा ॥ २१ ॥

अन्वयः—असौ शरणोन्मुखानां शरण्यः अगाधसत्त्वः प्रजारञ्जनलब्धवर्णः मगधप्रतिष्ठः यथार्थनामा परन्तपः नाम राजा अस्ति ।

व्याख्या—असौ = पुरोवर्ती । राजा = नृपः । शरणोन्मुखानां=शरणागतानाम् । शरण्यः = रक्षकः । अगाधसत्त्वः = गम्भीरस्वभावः । मगधप्रतिष्ठः = मगधजनपदास्पदः । प्रजारञ्जनलब्धवर्णः=जनानुरञ्जनविचक्षणः । परन्तपः =परन्तपाख्यः । नाम = प्रसिद्धम् । यथार्थनामा = अन्वर्थाभिधेयः । अस्ति ।

समासः—शरणार्थमुन्मुखाः शरणोन्मुखाः तेषां शरणोन्मुखानाम् । शरणे साधुः शरण्यः । अगाधं सत्त्वं यस्य सः अगाधसत्त्वः । मगधेषु प्रतिष्ठा यस्य सः मगधप्रतिष्ठः । प्रजानां रञ्जनं प्रजारजञ्जनं प्रजारञ्जने लब्धवर्णः प्रजारञ्जनलब्धवर्णः यद्वा प्रजारञ्जनेन लब्धवर्ण इति प्रजारञ्जनलब्धवर्णः । परान् तापयतीति परंतपः । यथार्थं नाम यस्य स यथार्थनामा ।

भावार्थः—अयं पुरोवर्ती भूपालः शरणागतानां रक्षको महान् बलिष्ठः मगधजनपदप्रतिष्ठश्च वर्तते । अस्य परन्तप इति नाम यथार्थं विद्यते; एष प्रजाजनानां रञ्जनेन महतः प्रतिष्ठामवाप्तवानस्तीति भावः ।

सञ्जीविनी—असौ राजा असाविति पुरोवर्तिनो निर्देशः । एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम् । शरणोन्मुखानां शरणार्थिनां शरण्यः । शरणे रक्षणे साधुः । "तत्र साधुः" इति यत्प्रत्ययः, शरणं भवितुमर्हः शरण्य इति नाथनिरुक्तिर्निर्मूलैव । अगाधसत्त्वो गम्भीरस्वभावः 'सत्वं गुणे पिशाचादौ बले द्रव्यस्वभावयोः' इति विश्वः। मगधाः जनपदाः तेषु प्रतिष्ठास्पदं यस्य स मगधप्रतिष्ठः । 'प्रतिष्ठाकृत्यमास्पदम्' इत्यमरः । प्रजारञ्जने लब्धवर्णो विचक्षणः यद्वा प्रजारञ्जनेन लब्धोत्कर्षः पराञ्शत्रूंस्तापयतीति परंतपः परंतपाख्यः । "द्विषत्परयोस्तापे" इति खच्प्रत्ययः । "खचि ह्रस्वः" इति ह्रस्वः । "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इति मुमागमः । नामेति प्रसिद्धौ । यथार्थनामा शत्रुसन्तापनादिति भावः ।

भावार्थ—ये राजा शरण में आने वालों की रक्षा करते हैं और बड़े पराक्रमी हैं । ये मगधदेश के निवासी हैं और इन्होंने अपनी प्रजाओं को सुख देकर बड़ा नाम कमाया है । इनका नाम परन्तप है, जो यथार्थ है, क्योंकि ये शत्रुओं को सन्ताप देने वाले हैं ॥ २१ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥ २२ ॥

अन्वयः—अन्ये सहस्रशः नृपाः कामं सन्तु जना अनेन भूमिं राजन्वतीं आहुः नक्षत्रताराग्रहसंकुला अपि रात्रिः चन्द्रमसा एव ज्योतिष्मती भवति ।

व्याख्या—अन्ये=अपरे । नृपाः=राजानः । सहस्रशः=अनेकशः, असंख्याताः । सन्तु=भवन्तु । किन्तु भूमिं=पृथिवीम् । अनेन=परन्तपेन राज्ञा । राजन्वतीं=राजवतीम् । आहुः=कथयन्ति जनाः । नक्षत्रताराग्रहसंकुला= अश्विन्यादिनक्षत्र-साधारणतारका भौमादिग्रहव्याप्ता अपि रात्रिः=रजनी । चन्द्रमसा=चन्द्रेणैव । ज्योतिष्मती=प्रकाशवती, नान्येन, केनापि ।

समासः—सुराजानः सन्ति अस्या इति राजन्वती तां राजन्वतीम् । नक्षत्राणि च ताराश्च ग्रहाश्चेति नक्षताराग्रहाः नक्षत्रताराग्रहैः संकुलाः इति नक्षत्रताराग्रहसंकुला । ज्योतिरस्य अस्तीति ज्योतिष्मती ।

भावार्थः—यथा नक्षत्रताराग्रहादिभिः युक्तापि रात्रिः चन्द्रमसैव प्रकाशवती कथ्यते तथैव भूमण्डलेऽनेकेषां राज्ञां विद्यमानत्वेऽपि अनेन राज्ञा यथार्थनाम्ना परन्तपेनैव राजवन्ती प्रोच्यते इति भावः ।

सञ्जीविनी—अन्ये नृपाः कामं सहस्रशः सन्तु भूमिमनेन राजवन्तीं शोभनराजवतीमाहुः । नैतादृक्कश्चिदस्तीत्यर्थः । सुराज्ञि देशे राजन्वान्स्यात्ततोऽन्यत्र राजवान्' इत्यमरः । "राजन्वान्सौराज्ये" इति निपातनात्साधुः । तथा हि नक्षत्रैरश्विन्यादिभिस्ताराभिः साधारणैर्ज्योतिर्भिर्ग्रहैर्भौमादिभिश्च संकुलापि रात्रिश्चन्द्रमसैव ज्योतिरस्या अस्तीति ज्योतिष्मती नान्येन ज्योतिषेत्यर्थः ।

भाषार्थ—यद्यपि संसार में हजारों राजा हैं, किन्तु इन्हीं से पृथ्वी उस प्रकार श्रेष्ठ राजा वाली कहलाती है जिस प्रकार, ग्रह और नक्षत्रों से भरी रहने पर भी रात्रि चन्द्रमा से ही चाँदनी वाली कहलाती है ॥ २२ ॥

क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः ।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकांश्चकार ॥ २३ ॥

अन्वयः—अयं अध्वराणां क्रियाप्रबन्धात् अजस्रं आहूतसहस्रनेत्रः सन् चिरं शच्याः अलकान् पाण्डुकपोललम्बान् मन्दारशून्यान् चकार ।

व्याख्या—अय=एषः परन्तपनामा राजा । अध्वराणां=यज्ञानाम् । क्रियाप्रबन्धात्=अनुष्ठाननैरन्तर्यात् । अजस्रम्=निरन्तरम् । आहूतसहस्रनेत्रः =आकारितसहस्राक्षः सन् । शच्याः=इन्द्राण्याः । अलकान्=केशान् । पाण्डु-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कपोललम्बान्=पीतगण्डस्थलस्रस्तान्। मन्दारशून्यान्=कल्पवृक्षपुष्परहितान् चकार=कृतवान्।

समासः—क्रियायाः प्रवन्धः क्रियाप्रवन्धः तस्मात् क्रियाप्रबन्धात्। सहस्राणि नेत्राणि यस्य स सहस्रनेत्रः आहूतः सहस्रनेत्रः येन स आहूतसहस्रनेत्रः। पाण्डू कपोलौ इति पाण्डुकपोलौ पाण्डुकपोलयोः लम्बाः पाण्डुकपोललम्बास्तान् पाण्डुकपोललम्बान्। मन्दारैः शून्याः मन्दारशून्याः तान् मन्दारशून्यान्।

भावार्थः—अनेन परन्तपेन राज्ञा निरन्तरमनुष्ठानं विधाय भूयो भूयः पुरुहूतं स्वयज्ञे आहूय इन्द्राण्याः केशपाशः पीतकपोलसंलग्नकल्पवृक्षपुष्परहितः विहितः। अर्थात् महेन्द्रस्य निरन्तरं राज्ञः परन्तपस्य यज्ञानुष्ठाने उपस्थानात् शची प्रोषितभर्तृका इव केशादिसंस्कारं न कृतवतीति भावः।

सञ्जीविनी—अयं परंतपोऽध्वराणां क्रतूनां क्रियाप्रबन्धादनुष्ठानसातत्यात् अविच्छिन्नादनुष्ठानादित्यर्थः। अजस्रं नित्यमाहूतसहस्रनेत्रः सन् चिरं शच्या अलकान् पाण्डुकपोलयोर्लम्बान्स्रस्तान्। पचाद्यच्। मन्दारैः कल्पद्रुमकुसुमैः शून्यांश्चकार प्रोषितभर्तृका हि केशसंस्कारं न कुर्वन्ति। 'प्रोषिते मलिना कृशा' इति। 'क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका॥' इति च स्मरणात्।

भाषार्थ—सर्वदा यज्ञ करके इन्होंने इन्द्र को अपने यहाँ बार बार बुलाया है जिसका परिणाम यह हुआ है कि इन्द्राणी के पीले कपोलों पर लटकने वाले केश शृङ्गार न होने के कारण कल्पवृक्षों के फूलों से शून्य हो गये हैं। अर्थात् इन्द्र को इनके यज्ञ में निरन्तर आते जाते रहने के कारण अपने पति इन्द्र के पास न रहने से इन्द्राणी ने शृङ्गार करना छोड़ दिया है क्योंकि प्रोषित भर्तृकायें शृङ्गार नहीं करतीं॥ २३॥

अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणिं वरेण्येन कुरु प्रवेशे।
प्रासादवातायनसंश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गनानाम्॥ २४॥

अन्वयः—वरेण्येन अनेन गृह्यमाणं पाणिं इच्छसि चेत् तदा प्रवेशे प्रसादवातायनसंश्रितानां पुष्पपुराङ्गनानां नेत्रोत्सवं त्वं कुरु।

व्याख्या—वरेण्येन=वरणीयेन विवाहयोग्येन। अनेन=राज्ञा परन्तपेन। गृह्यमाणं=क्रियमाणम्। पाणिं=हस्तमिच्छसि=वाञ्छसि। चेत्=यदि विवाहं कर्तुमिच्छसि। प्रवेशे=पुरप्रवेशसमये। प्रासादवातायनसंश्रितानां=

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजभवनगवाक्षोपविष्टानाम्। पुष्पपुराङ्गनानां=पाटलिपुत्रस्त्रीणाम्। नेत्रोत्सवं लोचनसुखम्। कुरु=विधेहि।

समासः—वरितुं योग्यः वरेण्यः तेन वरेण्येन गृह्यतेऽसौ गृह्यमाणः तं गृह्यमाणम्। प्रासादानां वातायनानि प्रासादवातायनानि प्रासादवातायनेषु संश्रिताः प्रासादवातायनसंश्रिताः, तासां प्रासादवातायनसंश्रितानाम्। पुष्पपुरस्य अङ्गनाः पुष्पपुराङ्गनाः तासां पुष्पपुराङ्गनानाम्। नेत्राणामुत्सवः नेत्रोत्सवः तं नेत्रोत्सवम्।

भावार्थः—देवि! विवाहयोग्येनानेन परन्तपेन साकं यदि विवाहं कर्तुमिच्छसि तर्हि नगरप्रवेशसमये पुष्पपुराट्टालिकासु प्रविश्य गवाक्षमार्गेणावलोकयन्तीनां तन्नगरनिवासिनीनां वनितानां लोचनोत्सवं विधेहीति भावः। अर्थात्त्वां दृष्ट्वा ताः परमानन्दमवाप्स्यन्तीति भावः।

सञ्जीविनी—वरेण्येन वरणीयेन वृणोतेरौणादिक एण्यप्रत्ययः। अनेन राज्ञा गृह्यमाणं पाणिमिच्छसि चेत् पाणिग्रहणमिच्छसि चेदित्यर्थः। प्रवेशे प्रवेशकाले प्रासादवातायनसंश्रितानां राजभवनगवाक्षस्थितानां पुष्पपुराङ्गनानां पाटलिपुत्राङ्गनानां नेत्रोत्सवं कुरु। सर्वोत्तमानांतासामपि दर्शनीया भविष्यसीति भावः।

भाषार्थ—यदि तुम इस श्रेष्ठ राजा के साथ अपना विवाह करना चाहती हो तो, इनकी राजधानी पाटलिपुत्र में प्रवेश करते समय महलों के झरोखों में बैठी हुई पाटलिपुत्र की महिलाओं को अपना दर्शन देकर प्रसन्न करो ॥२४॥

एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किञ्चिद्विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला।
ऋजुप्रणामक्रिययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा ॥ २५ ॥

अन्वयः—तया एवम् उक्ते सति किञ्चिद्विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला तन्वी तं अवेक्ष्य एनं अभाषमाणा ऋजुप्रणामक्रियया एव प्रत्यादिदेश।

व्याख्या—एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण। तया=सुनन्दया। उक्ते=कथिते सति। तं=परन्तपम्। अवेक्ष्य=अवलोक्य। किञ्चिद्-विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला=ईषत्स्रस्तदूर्वाचिह्नगुडपुष्पस्रक्। तन्वी=कृशाङ्गी इन्दुमती। एनं=राजानं परन्तपम्। अभाषमाणा=अब्रुवाणा। ऋजुप्रणामक्रियया=सामान्यनमस्कारकरणेन प्रत्यादिदेश=प्रत्याख्यातवती।

समासः—दूर्वाणामङ्कः यस्यां सा दूर्वाङ्का किञ्चिद् विस्रंसिनी दूर्वाङ्का मधूकमाला यस्याः सा किञ्चिद्विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला। प्रणामस्य क्रिया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रणामक्रिया । ऋजुः प्रणामक्रिया इति ऋजुप्रणामक्रिया तया ऋजुप्रणामक्रियया । भाषते इति भाषमाणा न भाषमाणा अभाषमाणा ।

भावार्थः——ततः सुनन्दया एवमुक्ते सति परन्तपमवेक्ष्य कृशाङ्गी इन्दुमती ईषत्स्रस्तमङ्गलमाला सती तं प्रणम्यास्वीकृतवतीति भावः ।

सञ्जीविनी—एवं तया सुनन्दयोक्ते सति तं परन्तपमवेक्ष्य किञ्चिद्विस्रंसिनी दूर्वाङ्का दूर्वाचिह्ना मधूकमाला गुडपुष्पमाला यस्याः सा । 'मधूके तु गुडपुष्पमधुद्रुमौ' इत्यमरः । वरणे शिथिलप्रयत्नेति भावः । तन्वीन्दुमती । एनं नृपमभाषमाणा ऋज्व्या भावशून्यया प्रणामक्रिययैव प्रत्यादिदेश परिजहार ।

भाषार्थ——उस सुनन्दा के ऐसा कहने पर इन्दुमती ने थोड़ी आँख उठाकर उस राजा को देखा, उसके हाथ से दूर्वायुक्त महुए की माला कुछ सरक सी गई और बिना कुछ कहे ही साधारण रुप से प्रणाम करके उसे अस्वीकार करती हुई आगे बढ़ गयी ।। २५ ।।

तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय ।
समीरणोत्थेव तरङ्गलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसीम् ।। २६ ।।

अन्वयः—वेत्रग्रहणे नियुक्ता सा एव तां राजसुतां समीरणोत्था तरंगलेखा मानसराजहंसीं पद्मान्तरं इव राजान्तरं निनाय ।

व्याख्या—सा = पूर्वोक्ता । एव = नान्या । वेत्रग्रहणे नियुक्ता = नियोजिता द्वारपालिका सुनन्दा । तां = पूर्वोक्ताम् । राजसुतां = राजपुत्रीम् । समीरणोत्था = पवनोत्पन्ना । तरङ्गलेखा=ऊर्मिपङ्क्तिः । मानसे या राजहंसी मानसराजहंसी तां मानसराजहंसीम्=मानसरोवरस्थितमरालीम् । पद्मान्तरं=कमलान्तरम् इव = यथा । निनाय = नीतवती ।

समासः—वेत्रस्य ग्रहणं वेत्रग्रहणम् तस्मिन् वेत्रग्रहणे । राज्ञः सुता राजसुता तां राजसुताम् । समीरणेन उत्था समीरणोत्था । तरङ्गाणां लेखा तरङ्गलेखा । हंसीनां राज्ञी राजहंसी मानसे राजहंसी मानसराजहंसी तां मानसराजहंसीम् । अन्यत् पद्मं पद्मान्तरम् तत् पद्मान्तरम् ।

भावार्थः—सा द्वारपालिका सुनन्दा पवनप्रेरिता ऊर्मिमाला मानसरोवरस्थितां मरालबालिकां कमलात्—कमलान्तरमिव तां राजतनयामिन्दुमतीम् अन्यस्य राज्ञः समीपे निनायेति भावः ।

सञ्जीविनी—सैव नान्या । चित्तज्ञत्वादिति भावः । वेत्रग्रहणे नियुक्ता दौवारिकी सुनन्दा तां राजसुतां राजान्तरमन्यराजानं निनाय । नयतिर्द्विकर्मकः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथमिव समीरणोत्था वातोत्पन्ना तरङ्गलेखोर्मिपंक्तिर्मानसे सरसि या राजहंसी तां पद्मान्तरमिव।

भाषार्थ—जिस प्रकार हवा के झकोरों से उठी हुई लहर मानसरोवर की राजहंसिनी को एक कमल से दूसरे कमल तक पहुँचा देती है उसी प्रकार द्वारपालिका सुनन्दा ने भी राजकुमारी इन्दुमती को उस मगध नरेश के पास से दूसरे राजा के पास पहुँचा दिया॥ २६॥

जगाद चैनामयमङ्गनाथः सुराङ्गनाप्रार्थितयौवनश्रीः।
विनीतनागः किल सूत्रकारैरैन्द्रं पदं भूमिगतोऽपि भुङ्क्ते॥ २७॥

अन्वयः—सुनन्दा एनाम् जगाद सुरांगनाप्रार्थितयौवनश्रीः सूत्रकारैः विनीतनागः च अयं अङ्गनाथः भूमिगतः अपि ऐन्द्रं पदं भुङ्क्ते किल।

व्याख्या—सुनन्दा एनाम्=इन्दुमतीम्। जगाद=उवाच च। अयं=परवर्ती राजा। अङ्गनाथः=अङ्गदेशराजा। सुराङ्गनाप्रार्थितयौवनश्रीः=देवाङ्गनाभिलषिततारुण्यसौन्दर्यः। सूत्रकारैः=गजशास्त्रकारैः। विनीतनागः=शिक्षितगजः। किल=खलु। अत एव भूमिगतः=भूतलस्थः अपि। ऐन्द्रं=इन्द्रसम्बन्धि। पदम्=ऐश्वर्यम्। भुङ्क्ते=अनुभवति।

समासः—अङ्गानां नाथः अङ्गनाथः। यूनो भावो यौवनं यौवनस्य श्रीः यौवनश्रीः सुराणामङ्गनाः सुराङ्गनाः सुराङ्गनाभिः प्रार्थिता यौवनश्रीः यस्य स सुराङ्गनाप्रार्थितयौवनश्रीः। विनीताः नागा यस्य स विनीतनागः। सूत्राणि कुर्वन्तीति सूत्रकाराः तैः सूत्रकारैः। इन्द्रस्येदम् ऐन्द्रम्। भूमौ गतः भूमिगतः।

भावार्थ—तदनन्तरं तामिन्दुमतीं सुनन्दा प्रावोचत् यत् अयमङ्गदेशस्य राजाऽस्ति एतस्य तारुण्यमैश्वर्यञ्चावेक्ष्य अप्सरसोऽपि मुग्धा भवन्ति। गजसूत्रकारा अमुष्य हस्तिनः शिक्षयन्ति। एष राजा भूमण्डलस्थोऽपि स्वर्गीयं सुखमनुभवतीति भावः।

सञ्जीविनी—एनामिन्दुमतीं जगाद। किमिति? अयमङ्गनाथोऽङ्गदेशाधीश्वरः सुरांगनाभिः प्रार्थिता कामिता यौवनश्रीर्यस्य स तथोक्तः। पुरा किलैनमिन्द्रसाहाय्यार्थमिन्द्रपुरगामिनमकामयन्ताप्सरस इति प्रसिद्धिः किंच सूत्रकारैर्गजशास्त्रकृद्भिः पालकाप्यादिभिर्महर्षिभिर्विनीतनागः शिक्षितगजः। किलेत्यैतिह्ये। अत एव भूमिगतोऽप्यैन्द्रं पदमैश्वर्यं भुङ्क्ते। भूर्लोक एव स्वर्गसुखमनुभवतीत्यर्थः। गजाप्सरोदेवर्षिसेव्यत्वमैन्द्रपदशब्दार्थः। पुरा किल कुतश्चिच्छापकार-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

णाद्भुवमवतीर्णं दिग्गजवर्गमालोक्य स्वयमशक्तैरिन्द्राभ्यनुज्ञयाऽऽनीतैर्देवर्षिभिः प्रणीतेन शास्त्रेण गजान्वशीकृते भुवि सम्प्रदायं प्रावर्तयदिति कथा गीयते ।

भाषार्थ—और सुनन्दा इन्दुमती से बोली—ये अंग देश के राजा हैं इनके यौवनसौन्दर्य और ऐश्वर्य को देवताओं की स्त्रियाँ चाहा करती हैं और गज-शास्त्र-विशारद विद्वान् भी इनके हाथियों को शिक्षा दिया करते हैं। ये पृथ्वी पर रहते हुए भी स्वर्गीय सुखों को भोगते हैं ॥ २७ ॥

अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून् मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु ।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामुन्मुच्य सूत्रेण विनैव हाराः ॥ २८ ॥

अन्वयः—शत्रुविलासिनीनां स्तनेषु मुक्ताफलस्थूलतमान् अश्रुबिन्दून् पर्यासयता अनेन उन्मुच्य सूत्रेण विना हाराः एव अर्पिताः ।

व्याख्या—शत्रुविलासिनीनाम्=अरिकामिनीनाम् । स्तनेषु=कुचकमलेषु । मुक्ताफलस्थूलतमान्=मौक्तिकसमातिपीवरान् । अश्रुबिन्दून्=नेत्रजलकणान् । पर्यासयता=प्रसारयता । अनेन=अङ्गनाथेन । उन्मुच्य=आक्षिप्य । सूत्रेण= आधारसूत्रेण । विना=रहितम् । हाराः=मुक्तावल्यः एव प्रत्यर्पिताः= प्रतिदत्ताः । भर्तृवधात् अजस्रमश्रुबिन्दुपातात् सूत्ररहितहारार्पणमिव कृतम् ।

समासः—शत्रूणां विलासिन्यः शत्रुविलासिन्यः तासां शत्रुविलासिनीनाम् । मुक्ताफलमिव स्थूलतमा मुक्ताफलस्थूलतमा तान् मुक्ताफलस्थूलतमान् । अश्रूणां बिन्दवः अश्रुबिन्दवः तान् अश्रुबिन्दून् ।

भावार्थः—शत्रुवधादजस्रं रुदन्तीनां शत्रुस्त्रीणां स्तनेषु मुक्ताफलसदृशान् अश्रुबिन्दून् प्रसारयता अनेनाङ्गनाथेन सूत्रं विना हाराः प्रत्यर्पिताः । अर्थात् एतद्द्वारा निजनाथानां वधानन्तरं निरन्तरं रुदन्ति अस्य शत्रूणां नार्यः तेन तासां स्तनेषु पतन्तोऽश्रुबिन्दवो मुक्ताफलहारा इव प्रतीयन्ते इति भावः ।

सञ्जीविनी—शत्रुविलासिनीनां स्तनेषु मुक्ताफलस्थूलतमानश्रुबिन्दून् 'अस्रमश्रुणि शोणिते' इति विश्वः । पर्यासयता प्रस्तारयता । भर्तृवधादिति भावः । अनेनाङ्गनाथेनोन्मुच्याक्षिप्य सूत्रेण विना हारा एव प्रत्यर्पिताः । अविच्छिन्नाश्रुबिन्दुप्रवर्तनादुत्सूत्रहारार्पणमेव कृतमिवेत्युत्प्रेक्षा गम्यते ।

भाषार्थ—इन्होंने जिन राजाओं को युद्ध में मारा था, उनकी स्त्रियों ने पतिवियोग के शोक में अपने गलों से मोतियों का हार उतार फेंका, किन्तु उनके स्तनों पर गिरती हुई आँसुओं की बूंदे बड़े-बड़े मोतियों के समान मालूम पड़ती थीं। उन्हें देखकर अनुमान होता था कि इन्होंने शत्रुओं की

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्त्रियों के गले से मोतियों के हार उतार कर बिना डोरे के आँसुओं का हार पहना दिया हैं ।। २८ ।।

निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च ।
कान्त्या गिरा सूनृतया च योग्या त्वमेव कल्याणि तयोस्तृतीया ।। २९ ।।

अन्वयः—निसर्गभिन्नास्पदं श्रीः च सरस्वती च इति द्वयं अस्मिन् एकसंस्थं अस्ति, हे कल्याणि ! कान्त्या सुन्दरतया गिरा च योग्या त्वं एव तयोः तृतीया भव ।

व्याख्या—निसर्गभिन्नास्पदम् = स्वभावादन्यदाश्रया । श्रीः = लक्ष्मीः च, सरस्वती = वाग्देवी च । इति द्वयं = द्वितयम् । अस्मिन् = अङ्गनाथे । एकसंस्थम् = एकत्रोभयं संगतम् । हे कल्याणि ! = हे भद्रे ! कान्त्या = शोभया । सूनृतया = सत्यप्रियया । गिरा = वाण्या । योग्या = अनुरूपा सम्बन्धार्हा, त्वं = इन्दुमती एव । तयोः = श्रीसरस्वत्योः । तृतीया = त्रिसंख्यापूरिका तयोः सदृशी असीति शेषः ।

समासः—निसर्गात् भिन्नम् आस्पदं यस्य तत् निसर्गभिन्नास्पदम् । एकस्मिन् संस्था यस्य तत् एकसंस्थम् ।

भावार्थः—स्वभावात् भिन्नाश्रये लक्ष्मीसरस्वत्यौ अस्मिन्नेकस्मिन् अङ्गनाथे विराजेते । अतः हे इन्दुमति ! शरीरशोभया, प्रियमधुरया सत्यात्मकया च वाण्या च त्वं तयोः लक्ष्मीसरस्वत्योः मध्ये तृतीया भवितुं योग्याऽसीति भावः ।

सञ्जीविनी—निसर्गतः स्वभावतो भिन्नास्पदं भिन्नाश्रयम् सहावस्थानविरोधीत्यर्थः । श्रीश्च सरस्वती चेति द्वयमस्मिन्नङ्गनाथ एकत्र संस्था स्थितिर्यस्य तदेकसंस्थम् । उभयमिह संगतमित्यर्थः । हे कल्याणि ! "बाह्वादिभ्यश्च" इति ङीष् । कान्त्या सूनृतया सत्यप्रियया गिरा च योग्या संसर्गार्हा त्वमेव तयोः श्रीसरस्वत्योस्तृतीया समानगुणयोर्युवयोर्दाम्पत्यं युज्यत एवेति भावः । दक्षिणनायकत्वं चास्य ध्वन्यते । तदुक्तम्—'तुल्योऽनेकत्र दक्षिणः' इति ।

भाषार्थ—स्वभाव से ही भिन्न-भिन्न स्थानों में रहनेवाली लक्ष्मी और सरस्वती दोनों इस राजा के पास एक साथ रहती हैं । अर्थात् राजा विद्वान् एवं धनवान् दोनों ही हैं । हे कल्याणि ! तुम सुन्दर भी हो और मधुरभाषिणी भी हो, इसलिए तुम इन दोनों के साथ तीसरी बनकर रहो अर्थात् इस राजा को वरण कर लो ।। २९ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथाङ्गराजादवतार्य चक्षुर्याहीति जन्यामवदत् कुमारी।
नासौ न काम्यो न च वेद सम्यग्द्रष्टुं न सा भिन्नरुचिर्हि लोकः ।। ३० ।।

अन्वयः—अथ कुमारी अङ्गराजात् चक्षुः अवतार्य जन्यां याहि इति अवदत्, असौ न काम्यः (इति) न सा सम्यक् द्रष्टुं न वेद (इति) न, हि लोकः भिन्नरुचिः ।

व्याख्या—अथ = सुनन्दावचनश्रवणानन्तरम् । कुमारी = इन्दुमती । अङ्गराजात् = अङ्गदेशाधिपात् । चक्षुः = लोचनम् । अवतार्य=अपनीय । जन्यां = मातृसखीं भृत्यपत्नीं वा सुनन्दाम् । याहि = गच्छ, त्वमेनं परित्यज्य अग्रे गच्छ । इति = एवम् । अवदत् = अवोचत् । असौ = अङ्गराजः । काम्यः=कमनीयः, मनोहरः । न हि = न इति न, किन्तु काम्य एव । सा = इन्दुमती च सम्यक् द्रष्टुं = सम्यग् आलोकयितुं विवेक्तुम् न वेद = न जानाति, इति न, किन्तु जानात्येव । परं हि = यतः । लोकः = जनः । भिन्नरुचिः = पृथग्दृष्टिः । भवतीति शेषः ।

समासः—अङ्गस्य अङ्गानां वा राजा अङ्गराजः तस्मात् अङ्गराजात् । भिन्ना रुचिर्यस्य स भिन्नरुचिः । लोक्यते असौ इति लोकः । जनीं वधू वहतीति जन्या तां जन्याम् ।

भावार्थः—सुनन्दावचनश्रवणानन्तरं राजकुमारी इन्दुमती अङ्गराजात् स्वकीयं लोचनमपनीय अग्रे गच्छेत्यब्रवीत् । किमयं राजा सुन्दरो नासीदथवा इन्दुमती सम्यग् विवेक्तुं न जानातिस्मेति चेदत्रोच्यते जनानां रुचिर्भिन्ना भिन्ना भवति, यद्वस्तु एकस्मै रोचते तदन्यस्मै न रोचते इति भावः ।

सञ्जीविनी—अथ कुमार्यङ्गराजाच्चक्षुरवतार्य अपनीयेत्यर्थः । जन्यां मातृसखीम् 'जन्या मातृसखीमुदोः' इति विश्वः । सुनन्दां याहि गच्छेत्यवदत् । 'यातेति जन्यानवदत्' इति पाठे जनीं वधूं वहन्तीति जन्या वधूबन्धवः । तान् यात गच्छतेत्यवदत् । 'जन्यो वरवधूज्ञातिप्रियतुल्याहितेऽपि च' इति विश्वः । अथवा जन्या वधूभृत्याः । 'भृत्याश्चापि नवोढायाः' इति केशवः । 'संज्ञायां जन्या' इति यत्प्रत्ययान्तो निपातः । यदत्राह वृत्तिकारः—'जनीं वधूं वहन्तीति जन्या जामातुर्वयस्याः' इति । यच्चामरः—'जन्याः स्निग्धा वरस्य ये' इति तत्सर्वमुपलक्षणार्थमित्यविरोधः । न चायमङ्गराजनिषेधो दृश्यदोषान्नापि द्रष्टृदोषादित्याह—नेत्यादिना । असावङ्गराजः काम्यः कमनीयो नेति न, किन्तु काम्य एवेत्यर्थः । सा कुमारी च सम्यग्द्रष्टुं विवेक्तुं न वेदेति न वेदेत्यर्थः । लोको जनो भिन्नरुचिर्हि रुचिरमपि किंचित्कस्मैचिन्न रोचते । किं कुर्मो न हीच्छा नियन्तुं शक्यत इति भावः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषार्थ—इसके बाद राजकुमारी इन्दुमती ने उस अंगराज से अपनी दृष्टि हटाकर सुनन्दा से कहा—आगे चलो। यह बात नहीं थी कि वह राजा सुन्दर न था और न यही बात थी कि इन्दुमती ने उसे ठीक से देखा ही न हो; किन्तु लोग भिन्न-भिन्न रुचिवाले होते हैं, कोई किसी को चाहता है कोई किसी को ॥ ३० ॥

ततः परं दुष्प्रसहं द्विषद्भिर्नृपं नियुक्ता प्रतिहारभूमौ।
निदर्शयामास विशेषदृश्यमिन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै ॥ ३१ ॥

अन्वयः—ततः प्रतिहारभूमौ नियुक्ता द्विषद्भिः दुष्प्रसहं परं विशेषदृश्यं नृपं नवोत्थानं इन्दुमत्यै निदर्शयामास।

व्याख्या—ततः=तदन्तरम्। प्रतिहारभूमौ=द्वारदेशे। नियुक्ता=निरूपिता द्वारपालिका। द्विषद्भिः=शत्रुभिः। दुष्प्रसहं=दुःसहं, शूरम्। विशेषदृश्यं=विशेषदर्शनीयं रूपवन्तम्। परं=अपरम्। नृपं=राजानम्। नवोत्थितं=नवोदयम्। इन्दुं=चन्द्रम्। इव=यथा। इन्दुमत्यै=कुमार्य्यै। निदर्शयामास=प्रादर्शयत्।

समासः—दुःखेन प्रसह्यते दुष्प्रसहम् तं दुष्प्रसहम्। प्रतिहारस्य भूमिः प्रतिहारभूमिः तस्यां प्रतिहारभूमौ। विशेषेण दृश्यः विशेषदृश्यः तं विशेषदृश्यम्। नवम् उत्थानं यस्य सः नवोत्थानः तं नवोत्थानम्।

भावार्थः—तदनन्तरं द्वारदेशरक्षिका शत्रुञ्जयं दर्शनीयस्वरूपं नवावरणं राजान्तरं नवोदयं चन्द्रमिव कुमार्यै इन्दुमत्यै दर्शयामासेति भावः।

सञ्जीविनी—ततोऽनन्तरं प्रतिहारभूमौ द्वारदेशे नियुक्ता दौवारिकी। 'स्त्री द्वार्द्वारं प्रतीहारः' इत्यमरः। द्विषद्भिः शत्रुभिर्दुष्प्रसहं दुःसहं शूरमित्यर्थः। विशेषेण दृश्यं दर्शनीयम्। रूपवन्तमित्यर्थः। परमन्यं नृपं नवोत्थानं नवोदयमिन्दुमिव इन्दुमत्यै निदर्शयामास।

भाषार्थ—इसके बाद द्वारपालिका सुनन्दा ने एक दूसरे राजा के पास इन्दुमती को ले जाकर उसे दिखाया, जो शत्रुओं से असह्य, विशेष दर्शनीय, नई अवस्थावाला और नवोदित चन्द्रमा के समान सुन्दर था ॥ ३१ ॥

अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुर्विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्यः।
आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति ॥ ३२ ॥

अन्वयः—उदग्रबाहुः विशालवक्षाः तनुवृत्तमध्यः अयं अवन्तिनाथः त्वष्ट्रा चक्रभ्रमं आरोप्य यत्नोल्लिखितः उष्णतेजा इव विभाति।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या—उदग्रबाहुः=दीर्घभुजः। विशालवक्षाः=विपुलोरस्कः। तनुवृत्तमध्यः=कृशवर्तुलमध्यमः। अयम्=एषःपुरोवर्ती राजा। अवन्तिनाथः=उज्जयिनीस्वामी। त्वष्ट्रा=विश्वकर्मणा। चक्रभ्रमं=चक्राकारं शस्त्रोत्तेजनयन्त्रम्। आरोप्य=आरुह्य। यत्नोल्लिखितः=प्रयत्नशातितः। उष्णतेजाः=तीक्ष्णरश्मिः,सूर्य इव यथा विभाति=शोभते।

समासः—उदग्रौ बाहू यस्य सः उदग्रबाहुः। विशालं वक्षः यस्य स विशालवक्षाः। तनुः वृत्तः मध्यो यस्य स तनुवृत्तमध्यः। अवन्त्या नाथः अवन्तिनाथः। चक्रश्चासौ भ्रमश्च चक्रभ्रमः तं चक्रभ्रमम्। उष्णः तेजो यस्य स उष्णतेजाः। यत्नेन उल्लिखितः यत्नोल्लिखितः।

भावार्थः—दीर्घबाहुः विशालवक्षाः कृशवर्तुलमध्यमः एषः पुरोवर्ती राजा उज्जयिन्या भूपतिरस्ति। अयम् अतितेजस्वितया विश्वकर्मणा चक्रभ्रमयन्त्रे समारोप्य शातितः सूर्य इव विभासते इति भावः। सूर्यस्य चक्रभ्रमयन्त्रेण शातितत्वे पुराणेषु लिखितमस्ति यत् सूर्यः पूर्वं महान् तेजस्वी आसीत् तस्यासह्यं तेजोऽसहमाना विश्वकर्मणः पुत्री सूर्यस्य धर्मपत्नी संज्ञा महासमुद्विग्ना आसीत्। तत् ज्ञात्वा पश्चात् विश्वकर्मणा भ्रमियन्त्रे सूर्यस्य प्रखरं तेजः शातयित्वा साधारणप्रकाशवान् कृतः सूर्यः तथाहि मार्कण्डेयपुराणे—

विश्वकर्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वता।
भ्रममारोप्य तत्तेजः शातनायोपचक्रमे॥

सञ्जीविनी—उदग्रबाहुर्दीर्घबाहुर्विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्यः कृशवर्तुलमध्योऽयं राजाऽवन्तिनाथोऽवन्तिदेशाधीश्वरः त्वष्ट्रा विश्वकर्मणा भर्तुस्तेजोवेगमसहमानया, दुहित्रा संज्ञादेव्या प्रार्थितेनेति शेषः। चक्रभ्रमं चक्राकारं शस्त्रोत्तेजनयन्त्रम्। 'भ्रमोऽम्बुनिर्गमे भ्रान्तौ कुण्डाख्ये शिल्पियन्त्रके' इति विश्वः। आरोप्य यत्नेनोल्लिखितः उष्णतेजाः सूर्य इव विभाति। अत्र मार्कण्डेयः—'विश्वकर्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वता। भ्रममारोप्य तत्तेजः शातनायोपचक्रमे। इति।

भाषार्थ—लम्बी भुजा, चौड़ी छाती और पतली गोलाकार कमर वाले ये राजा जो सूर्य के समान चमक रहे हैं। ये अवन्ती देश के राजा हैं। मालूम पड़ता है कि विश्वकर्मा ने शान चढ़ाने वाले अपने चक्र पर चढ़ाकर इन्हें बड़े यत्न से सूर्य के समान खराद दिया है॥ ३२॥

अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्तेरग्रेसरैर्वाजिभिरुत्थितानि।
कुर्वन्ति सामन्तशिखामणीनां प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि॥ ३३॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः—समग्रशक्तेः अस्य प्रयाणेषु अग्रेसरैः वाजिभिः उत्थितानि रजांसि सामन्तशिखामणीनां प्रभाप्ररोहास्तमयं कुर्वन्ति ।

व्याख्या—समग्राः=सकलाः, शक्तयः=प्रभावोत्साहमन्त्रजाः यस्य । अस्य=अवन्तिनाथस्य । प्रयाणेषु=विजययात्रासु । अग्रेसरैः=अग्रगामिभिः । वाजिभिः=तुरङ्गमैः । उत्थितानि=उद्भूतानि । रजांसि=रेणवः । सामन्तशिखामणीनां=सामन्तोद्भवराजप्रवराणाम् । प्रभाप्ररोहास्तमयम्=कान्त्यङ्कुरनाशं । कुर्वन्ति=विदधति ।

समासः—समग्राः शक्तयो यस्य स समग्रशक्तिः तस्य समग्रशक्तेः । अग्रे सरन्तीति अग्रेसराः तैः अग्रेसरैः सामन्तानां शिखाः सामन्तशिखाः सामन्तशिखासु मणयः सामन्तशिखामणयः तेषां सामन्तशिखामणीनाम् । प्रभायाः प्ररोहाः प्रभाप्ररोहाः तेषाम् अस्तमयः प्रभाप्ररोहास्तमयः तं प्रभाप्ररोहास्तमयम् ।

भावार्थः—सर्वशक्तिसम्पन्नस्यास्य राज्ञः विजययात्रासु अग्रगामिनां घोटकानां खुरतः उद्भूतानि रजांसि सामन्तानां राज्ञां शिखामणीनां प्रभां मलिनां कुर्वन्ति। अर्थात् विजययात्रायामस्य शत्रवः नूनं पराजीयन्त इति भावः ।

सञ्जीविनी—समग्रशक्तेः शक्तित्रयसम्पन्नस्यावन्तिनाथस्य प्रयाणेषु जैत्रयात्रास्वग्रेसरैर्वाजिभिरश्वैरुत्थितानि रजांसि सामन्तानां समन्ताद्भवानां राज्ञां ये शिखामणयश्चूडामणयस्तेषां प्रभाप्ररोहास्तमयं तेजोऽङ्कुरनाशं कुर्वन्ति। नासीरैरेवास्य शत्रवः पराजीयन्त इति भावः ।

भाषार्थ—समस्त शक्तियों से सम्पन्न इस राजा की दिग्विजय यात्रा में आगे चलने वाले घोड़ों के टापों से उड़ी हुई धूलियाँ, सामन्त राजाओं के मुकुट मणियों की प्रभा को मलिन कर देती हैं ॥ ३३ ॥

असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः ।
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—असौ महाकालनिकेतनस्य चन्द्रमौलेः अदूरे वसन् सन् प्रियाभिः सह तमिस्रपक्षे अपि ज्योत्स्नावतः प्रदोषान् निर्विशति किल ।

व्याख्या—असौ=एषः अवन्तिनाथः । महाकालनिकेतनस्य=महाकालमुकुटस्थानस्य चन्द्रमौलेः=भगवतः शिवस्य । अदूरे=समीपे । वसन्=निवसन् । तमिस्रपक्षे=कृष्णपक्षे । अपि । प्रियाभिः=स्वपत्नीभिः । सह=सार्द्धम् । ज्योत्स्नावतः=कौमुदीवतः । प्रदोषान्=रात्रीः । निर्विशति=अनुभवति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समासः—महाकालमेव निकेतनं यस्य स महाकालनिकेतनः तस्य महाकालनिकेतनस्य। चन्द्रः मौलौ यस्य स चन्द्रमौलिः तस्य चन्द्रमौलेः। तमिस्रस्य पक्षः तमिस्रपक्षः तस्मिन् तमिस्रपक्षे। ज्योत्स्ना विद्यते येषु ते ज्योत्स्नावन्तः तान् ज्योत्स्नावतः।

भावार्थः—अयमुज्जयिन्या नृपः महाकालमन्दिरे वर्तमानस्य भगवतश्चन्द्रमौलेर्महेश्वरस्य समीपे तिष्ठति। अत एव कृष्णपक्षेऽपि स्वकीयाभिः प्रियाभिः राजमहिषीभिः साकमानन्दमनुभवति। अर्थात् भगवतः शिवस्य मस्तके वर्तमानस्य मणेः चन्द्रिकया अस्य प्रासादो निरन्तरं देदीप्यते इति भावः।

सञ्जीविनी—असाववन्तिनाथः महाकालं नाम स्थानविशेषः। तदेव निकेतनं स्थानं यस्य तस्य चन्द्रमौलेरीश्वरस्यादूरे समीपे वसन् अत एव हेतोस्तमिस्रपक्षे कृष्णपक्षेऽपि प्रियाभिः सह ज्योत्स्नावतः प्रदोषान् रात्रीर्निर्विशत्यनुभवति किल। नित्यज्योत्स्नाविहारत्वमेतस्यैव नान्यस्येति भावः।

भाषार्थ—सिर पर चन्द्रमा को धारण करनेवाले महाकाल के मन्दिर के पास में ही इनका राजमहल है। इसलिए ये कृष्णपक्ष की रात्रियों में भी शिवजी के सिर पर स्थित चन्द्रमा की चाँदनी से अपनी स्त्रियों के साथ चाँदनी वाली रातों का ही आनन्द अनुभव करते रहते हैं॥ ३४॥

अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु ! कच्चिन्मनसो रुचिस्ते।
सिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु॥ ३५॥

अन्वयः—हे रम्भोरु ! यूना अनेन पार्थिवेन सह सिप्रातरंगानिलकम्पितासु उद्यानपरम्परासु विहर्तुं ते मनसः रुचिः अस्ति कच्चित् ?

व्याख्या—हे रम्भोरु !=हे कदलीदलजघने ! यूना=तरुणेन। अनेन=पुरोवर्तिना पार्थिवेन=पृथिव्या ईश्वरेण अवन्तिनाथेन। सिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु=सिप्रानामनदीवीचिप्रवाहवायुचलितासु। उद्यानपरम्परासु=उपवनपङ्क्तिषु विहर्तुं=विहारं कर्तुम्। ते=तव। मनसः=चित्तस्य। रुचिः=अभिलाषः। कच्चित् किम् ?=स्पृहास्ति किम् ?

समासः—रम्भे इव ऊरू यस्याः सा रम्भोरुः तत्सम्बुद्धौ हे रम्भोरु ! पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः तेन पार्थिवेन। सिप्रायाः तरङ्गाः सिप्रातरङ्गाः सिप्रातरङ्गाणामनिलः सिप्रातरङ्गानिलः तेन सिप्रातरङ्गानिलेन कम्पिताः सिप्रातरङ्गानिलकम्पिताः तासु सिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः--हे रम्भोरु ! एतेन तरुणेन राज्ञा अवन्तिनाथेन सह सिप्रा-नदीवीचिवायुप्रवाहप्रचलितासु उपवनलतासु विहर्तुं ते रुचिरस्ति किम् ? इति भावः ।

सञ्जीविनी--रम्भे कदलीस्तम्भाविवोरू यस्याः सा रम्भोरुस्तस्याः सम्बोधनम् हे रम्भोरु ! "ऊरूत्तरपदादौपम्ये" इत्यूङ्प्रत्ययः । नदीत्वाद्ध्रस्वः । यूनानेन पार्थिवेन सह सिप्रा नाम तत्रत्या नदी तस्यास्तरङ्गाणामनिलेन कम्पिताः सूद्यानानां परम्परासु पंक्तिषु विहर्तुं ते तव मनसो रुचिः कच्चित् ? स्पृहास्ति किमित्यर्थः । 'अभिष्वङ्गे स्पृहायां च गभस्तौ च रुचिः स्त्रियाम्' इत्यमरः ।

भाषार्थ--हे केले के स्तम्भ के समान चिकनी और ढालू जंघावाली इन्दुमती ! क्या तुम इस युवक राजा के साथ उज्जयिनी के उन उद्यानों में विहार करना चाहती हो जिनमें सिप्रानदी के तरंगों से शीतल वायु हर-हर करता हुआ बराबर बहता रहता है ? ।। ३५ ।।

तस्मिन्नभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के ।
बबन्ध सा नोत्तमसौकुमार्या कुमुद्वती भानुमतीव भावम् ।। ३६ ।।

अन्वयः---उत्तमसौकुमार्या सा अभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के तस्मिन् कुमुद्वती भानुमती इव भावं न बबन्ध ।

व्याख्या---उत्तमसौकुमार्या=उत्कृष्टाङ्गमार्दवा सा=इन्दुमती । अभिद्योतितबन्धुपद्मे=उल्लसितबन्धुपद्मे । प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के=तेजसा शुष्कतां नीते शत्रुकंदमे तस्मिन्=अवन्तिनाथे । कुमुद्वती=कुमुदिनी । भानुमति=अंशुमति । इव=यथा । भावं=चित्तम् । न बबन्ध=नहि तस्मिन्ननुरागं कृतवती ।

समासः---सुकुमारस्य भावः सौकुमार्यम्, उत्तमं सौकुमार्यं यस्याः सा उत्तमसौकुमार्या । बन्धव एव पद्मानि बन्धुपद्मानि अभिद्योतितानि बन्धुपद्मानि येन स अभिद्योतितबन्धुपद्मः तस्मिन् अभिद्योतितबन्धुपद्मे । शत्रवः एव पङ्काः शत्रुपङ्काः प्रतापेन संशोषिता शत्रुपङ्का येन स प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्कः तस्मिन् प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के ।

भावार्थः---उत्कृष्टशरीरसौन्दर्यायाः तस्या इन्दुमत्या मनः बन्धुजनप्रसादके शत्रुनाशके तस्मिन्नवन्तिनाथे तथैव न संलग्नं यथा निशायां विकसनशीलायाः कुमुदिन्या दिवा कमलविकासकं पङ्कशोषकं सूर्यं प्रति स्पृहा न जायते इति भावः ।

सञ्जीविनी--उत्तमसौकुमार्योत्कृष्टाङ्गमार्दवा सेन्दुमती अभिद्योतितान्युल्लसितानि बन्धव एव पद्मानि येन तस्मिन् । प्रतापेन तेजसा संशोषिताः शत्रव एव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पङ्काः कर्दमा येन तस्मिन् । तस्मिन्नवन्तिनाथे कुमुद्वती । "कुमुदनड्वेतसेभ्यो ड्मतुप्" इति ड्मतुप्प्रत्ययः । भानुमत्यंशुमतीव । भावं चित्तं न बबन्ध । न तत्रानुरागमकरोदित्यर्थः । बन्धूनां पद्मत्वेन शत्रूणां पङ्कत्वेन चानिरूपणं राज्ञः सूर्यसाम्यार्थम् ।

भाषार्थ--अत्यन्त सुकुमारी उस कुमारी इन्दुमती को मित्रों को प्रसन्न करने वाला और शत्रुओं का संहारक वह प्रतापी राजा उसी प्रकार अच्छा नहीं लगा जिस प्रकार कुमुदिनी को वह सूर्य अच्छा नहीं लगता, जो कमलों को खिलाता है और कीचड़ को सुखा देता है ॥ ३६ ॥

तामग्रतस्तामरसान्तराभामनूपराजस्य गुणैरनूनाम् ।
विधाय सृष्टिं ललितां विधातुर्जगाद भूयः सुदतीं सुनन्दा ॥ ३७ ॥

अन्वयः—सुनन्दा तामरसान्तराभां गुणैः अनूनां विधातुः ललितां सृष्टिं सुदतीं तां अनूपराजस्य अग्रतः विधाय भूयः जगाद ।

व्याख्या--सुनन्दा=दौवारिकी । तामरसान्तराभां=पद्मोदरतुल्यकान्ति कनकगौरीम्, गुणैः=दयादाक्षिण्यसौन्दर्यादिभिः । अनूनां=अधिकाम् । सुदतीं =शोभनदशनाम् । तां=प्रसिद्धाम्, इन्दुमतीम् । विधातुः=ब्रह्मणः । ललितां मनोहराम् । सृष्टिं=मधुरनिर्माणं, स्त्रीरूपाम् । अनूपराजस्य=अनूपदेश-स्वामिनः । अग्रतः=सम्मुखे, विधाय=अग्रेकृत्वा । भूयः=पुनः । जगाद= उवाच ।

समासः—तामरसानामन्तरं तामरसान्तरं तामरसान्तरवत् आभा यस्याः सा तामरसान्तराभा, तां तामरसान्तराभाम् । शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती तां सुदतीम् । अनुगता आपः येषु ते अनूपा अनूपानां राजा अनूपराजः तस्य अनूपराजस्य । विदधाति लोकमिति विधाता तस्य विधातुः ।

भावार्थः—द्वारपालिका सुनन्दा कनकगौरीं दयादाक्षिण्यसौन्दर्यमाधुर्यौ-दार्यादिभिर्गुणैरधिकं शोभमानां ब्रह्मणो मनोहरसृष्टिनिर्माणातिशयां सुदतीमिन्दु-मतीं अनूपदेशस्य स्वामिनोऽग्रे कृत्वाऽब्रवीदिति भावः ।

सञ्जीविनी—सुनन्दा तामरसान्तराभां पद्मोदरतुल्यकान्तिम् । कनकगौरी-मित्यर्थः । गुणैरनूनाम् अधिकामित्यर्थः । शोभना दन्ताः यस्या सा सुदती । "वयसि दन्तस्य दतृ" इति दत्रादेशः । "उगितश्च" इति ङीप् । तां प्रकृतां प्रसिद्धां वा विधातुर्ललितां सृष्टिं । मधुरनिर्माणां स्त्रियमित्यर्थः । अनुगता आपो येषु तेऽनूपा नाम देशाः । "ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे" इत्यप्रत्ययः समासान्तः।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"ऊदनोर्देशे" इत्यूदादेशः। तेषां राज्ञोऽनूपराजस्याग्रतो विघाय व्यवस्थाप्य भूयः पुनर्जगाद ।

भावार्थ--कमल के समान कान्तिवाली, गुणों से परिपूर्ण, ब्रह्मा की मनोहर रचना और सुन्दर दाँतों वाली उस इन्दुमती को वहाँ से अनूपदेश के राजा के सामने ले जाकर सुनन्दा फिर बोली ।। ३७ ।।

संग्रामनिर्विष्टसहस्रवाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः ।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः ।। ३८ ।।

अन्वयः---संग्रामनिर्विष्टसहस्रवाहुः अष्टादशद्वीपनिखातयूपः अनन्यसाधारणराजशब्दः योगी कार्तवीर्यः बभूव किल ।

व्याख्या---संग्रामनिर्विष्टसहस्रवाहुः=युद्धानुभूतसहस्रभुजः । अष्टादशद्वीपनिखातयूपः=अष्टदशान्तरीपस्थापितविजयस्तम्भः सर्वक्रतुयाजी, सार्वभौमश्च । अनन्यसाधारणराजशब्दः=जरायुजादिसर्वभूतरञ्जनादनन्यसाधारणराजशब्दः । योगी=ब्रह्मविद्वरिष्ठः, दत्तात्रेयाल्लब्धयोगः । कार्तवीर्यः=कृतवीर्यस्यापत्यं कार्तवीर्यो नाम राजा बभूव=अभूत्, किल=खलु ।

समासः–संग्रामे निर्विष्टा सहस्राणि बाहवो यस्य सः संग्रामनिर्विष्टसहस्रवाहुः। अष्टौ च दश च अष्टादश अष्टादश द्वीपा इत्याष्टादशद्वीपा अष्टादशद्वीपेषु निखाता यूपा येन सः अष्टादशद्वीपनिखातयूपः। अन्येषां साधारणः अन्यसाधारणः न अन्यसाधारणः अनन्यसाधारणः अनन्यसाधारणः राजेति शब्दः यस्य सः अनन्यसाधारणराजशब्दः । योगः अस्यास्तीति योगी । कृतवीर्यस्यापत्यं पुमान् कीर्तवीर्यः ।

भावार्थः–युद्धक्षेत्रे सहस्रभुजानुभववान् अष्टादशसु द्वीपेषु विजयस्तम्भारोपयिता अनन्यसाधारणसार्वभौमो राजा दत्तात्रेयाल्लब्धयोगविद्यो ब्रह्मविद्वरिष्ठः कार्तवीर्यो बभूवेति भावः।

सञ्जीविनी---संग्रामेषु युद्धेषु निर्विष्टा अनुभूताः सहस्रं बाहवो यस्य स तथोक्तः । युद्धादन्यत्र द्विभुज एव दृश्यत इत्यर्थः। अष्टादशसु द्वीपेषु निखाताः स्थापिता यूपा येन स तथोक्तः। सर्वक्रतुयाजी सार्वभौमश्चेति भावः। जरायुजादिसर्वभूतरञ्जनादनन्यसाधारणो राजशब्दो यस्य स तथोक्तः, योगी ब्रह्मविद्वानित्यर्थः । स किल भगवतो दत्तात्रेयाल्लब्धयोग इति प्रसिद्धिः। कृतवीर्यस्यापत्यं पुमान्कार्तवीर्यो नाम राजा बभूव किलेति। अयं चास्य महिमा सर्वोऽपि दत्तात्रेयवरप्रसादलब्ध इति भारते दृश्यते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषार्थ—पहले कार्तवीर्य नामक एक योगाभ्यासी राजा हो गये हैं, उनमें यह विशेषता थी कि जब वे युद्ध में लड़ने जाते थे तब उनके हजारों हाथ निकल आते थे। उन्होंने अठारहों द्वीपों में जाकर यज्ञस्तम्भों को गाड़ दिया था। वे ऐसे प्रतापी थे कि उनके सामने कोई अपने को राजा नहीं कह सकता था ॥ ३८ ॥

अकार्यचिन्तासमकालमेव प्रादुर्भवंश्चापधरः पुरस्तात्।
अन्तःशरीरेष्वपि यः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता ॥ ३९ ॥

अन्वयः—विनेता यः अकार्यचिन्तासमकालम् एव पुरस्ताच्चापधरः प्रादुर्भवन् सन् प्रजानां अन्तःशरीरेषु अपि अविनयं प्रत्यादिदेश।

व्याख्या—विनेता=शिक्षकः। यः=कार्तवीर्यः। अकार्यचिन्तासमकालम्=असत्कार्यविचारसमकालम्। एव। पुरस्तात्=अग्रे। चापधरः=धनुर्धरः। प्रादुर्भवन्=स्वात्मानं प्रकटयन्। प्रजानां=जनानाम्। अन्तःशरीरेषु=शरीरान्तःकरणेषु इन्द्रियेषु अपि। अविनयं=असद्विचारम्। प्रत्यादिदेश=निवारयामास, निराचकार।

समासः—न कार्यम् अकार्यं अकार्यस्य चिन्ता अकार्यचिन्ता अकार्यचिन्तया समकालमिति अकार्यचिन्तासमकालम्। धरतीति धरः चापस्य धरः चापधरः। अन्तःशरीराणीति अन्तःशरीराणि तेषु अन्तःशरीरेषु।

भावार्थः—विनयशिक्षकः कार्तवीर्यः तस्य पुरुषस्य समक्षे धनुर्धरः सन् उपतिष्ठतेस्म, यः मनस्यपि चौर्याद्यसत्कार्यं कर्तुं विचारयतिस्म। अर्थात् तत्समये तेन प्रजाजनानां मनसः कुकार्यविचारो दूरीकृतः, न केवलं विनयमात्रमेव अपि तु मानसापराधोऽपि निवारित इति भावः।

सञ्जीविनी—विनेता शिक्षको यः कार्तवीर्यः। अकार्यस्यासत्कार्यस्य चिन्तया च अहं चौर्यादिकं करिष्यामीति बुद्धया। समकालमेककालमेव यथा तथा पुरस्तादग्रे चापधरः प्रादुर्भवन्सन्। प्रजानां जनानाम् 'प्रजा स्यात्सन्ततौ जने' इत्यमरः। अन्तःशरीरेष्वन्तःकरणेषु शरीरशब्देनेन्द्रियं लक्ष्यते। अविनयमपि प्रत्यादिदेश। मानसापराधमपि निवारयामासेत्यर्थः। अन्ये तु वाक्कायापराधमात्रप्रतिकर्तार इति भावः।

भाषार्थ—इनकी प्रजाओं में से जो कोई व्यक्ति ज्यों ही किसी बुरे कार्य को करने का अपने मन में विचार करता था, त्योंही उसे ऐसा मालूम पड़ता था कि धनुष-बाण हाथ में लिए हुए राजा कार्तवीर्यार्जुन हमें दण्ड देने के लिये

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामने उपस्थित हैं। इसलिए इनकी प्रजायें किसी अकार्य को करने का विचार तक भी नहीं करती थीं ।। ३९ ।।

ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण ।
कारागृहे निर्जितवासवेन लङ्केश्वरेणोषितमाप्रसादात् ।। ४० ।।

अन्वयः--ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण निर्जितवासवेन लङ्केश्वरेण यस्य कारागृहे आप्रसादात् उषितम् ।

व्याख्या--ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन=धनुर्गुणबन्धननिश्चेष्टबाहुना । विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण = निःश्वसद्दशमुखिना । निर्जितवासवेन = इन्द्रविजयिना, लङ्केश्वरेण=लङ्काधिपतिना रावणेन । यस्य=कार्तवीर्यस्य । कारागृहे=बन्धनागारे । आप्रसादात्=अनुग्रहपर्यन्तम् । उषितं=स्थितम् ।

समासः--ज्याया: बन्धः ज्याबन्धः ज्याबन्धेन निष्पन्दाः भुजा यस्य स ज्याबन्धनिष्पन्दभुजः तेन ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन । विनिःश्वसन्ती वक्त्राणां परम्परा यस्य सः विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परः तेन विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण । निर्जितः वासवो येन स निर्जितवासवः तेन निर्जितवासवेन । लङ्काया ईश्वरः लङ्केश्वरः तेन लङ्केश्वरेण । कारायाः गृहं कारागृहम् तस्मिन् कारागृहे ।

भावार्थः--धनुर्गुणबन्धनेन यस्य बाहुः निश्चेष्टो जातः दीर्घनिःश्वासैर्यस्य दशमुखानि पूर्यन्तेस्म स इन्द्रविजयी रावणः यस्य कारागारे अनुग्रहपर्यन्तं बद्धः आसीत् तस्य वंशे प्रतीपो जात इत्यग्रिमेण सम्बन्ध इति भावः ।

सञ्जीविनी--ज्याया मौर्व्या बन्धेन बन्धनेन निष्पन्दा निश्चेष्टा भुजा यस्य तेन विनिःश्वसती ज्याबन्धोपरोधाद्दीर्घं निःश्वसती वक्त्रपरम्परा दशमुखी यस्य तेन निर्जितवासवेनेन्द्रविजयिना अत्रेन्द्रादयोऽप्यनेन जितप्राया एवेति भावः । लङ्केश्वरेण दशास्येन यस्य कार्तवीर्यस्य कारागृहे बन्धनागारे । 'कारा स्याद् बन्धनालये' इत्यमरः । आप्रसादादनुग्रहपर्यन्तमुषितं स्थितम् । 'नपुंसके भावे क्तः' एतत्प्रसाद एव तस्य मोक्षोपायो न तु क्षात्रमिति भावः ।

भाषार्थ--जिस रावण ने देवराज इन्द्र को भी जीत लिया था, उसे भी उन्होंने अपने कारागार में बन्दी बनाकर उसकी भुजाओं को धनुष की डोरी से इस प्रकार कसकर बाँध दिया था कि वह बेचारा तब तक उसी में उसाँस भरता रहा जब तक प्रसन्न होकर इन्होंने उसे नहीं छोड़ा ।। ४० ।।

तस्यान्वये भूपतिरेष जातः प्रतीप इत्यागमवृद्धसेवी ।
येन श्रियः संश्रयदोषरूढं स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम् ।। ४१ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः—आगमवृद्धसेवी प्रतीपः इति एष भूपतिः तस्य अन्वये जातः येन संश्रयदोषरूढं श्रियः स्वभावलीला इति अयशः प्रमृष्टम् ।

व्याख्या——आगमवृद्धसेवी=श्रुतवृद्धानुरागी । प्रतीप इति=प्रतीपनाम्ना प्रसिद्धः एष पुरोवर्ती भूपतिः=पृथ्वीपतिः । तस्य=कार्यवीर्यस्य । अन्वये= वंशे । जातः=उत्पन्नः । येन=प्रतीपेन राज्ञा । संश्रयदोषरूढम्=आश्रयव्यसन-समुत्पन्नम् । श्रियः=लक्ष्म्याः । स्वभावलीला=प्रकृतिचञ्चला । इति=इत्येवं रूपम् । अयशः=दुष्कीर्तिः । प्रमृष्टं=निरस्तम्, क्षालितम् ।

समासः——आगमेषु वृद्धा आगमवृद्धा आगमवृद्धान् सेवते इत्यागमवृद्धसेवी यद्वा आगमाश्च वृद्धाश्चेति आगमवृद्धाः तान् सेवते इति आगमवृद्धसेवी । संश्रयस्य दोषा संश्रयदोषाः संश्रयदोषैः रूढमिति संश्रयदोषरूढम् । स्वभावेन लीला स्वभावलीला । न यशः अशयः । भुवः पतिः भूपतिः ।

भावार्थः–श्रुतवृद्धानुरागी प्रतीप इति नाम्ना प्रसिद्ध एष पुरोवर्ती राजा तस्य कार्त्तवीर्यस्य वंशे समुत्पन्नः । अनेन लक्ष्म्याः स्वभावचञ्चलत्वदोषो दूरीकृतः अतोऽयं दोषराहित्यान्नकदाचिदपि श्रिया परित्यज्यते इति भावः ।

सञ्जीविनी——आगमवृद्धसेवी श्रुतवृद्धसेवी प्रतीप इति ख्यात इति शेषः । एष भूपतिस्तस्य कार्यवीर्यस्यान्वये वंशे जातः । येन प्रतीपेन संश्रयस्याश्रयस्य पुंसो दोषैर्व्यसनादिभिः रुढमुत्पन्नं श्रियः सम्वन्धि स्वभावलीला प्रकृतिचञ्चले-त्येवंरूपमयशो दुष्कीर्तिःप्रमृष्टं निरस्तम् । दुष्टाश्रयत्यागशीलायाः श्रियःप्रकृति-चापलप्रवादो मूढजनपरिकल्पित इत्यर्थः । अयं तु दोषराहित्यान्न कदाचिदपि श्रिया त्यज्यत इति भावः ।

भाषार्थ——उन्हीं प्रसिद्ध राजा कार्तवीर्य के वंश में ये उत्पन्न हुए हैं । ये वेदों और वृद्धों की बड़ी सेवा करते हैं, इनका नाम प्रतीप है । इन्होंने आश्रय दोष से दूषित लक्ष्मी के स्वभावचंचला इस अपयश को धो दिया हैं अर्थात् इनके पास लक्ष्मी सदा निवास करती हैं । वास्तविक बात यह है कि लक्ष्मी तो उसी व्यक्ति को छोड़कर अन्यत्र चली जाती हैं, जो दुर्व्यसनी हो, पर इनमें कोई व्यसन नहीं है तो वह इन्हें क्यों छोड़े ।। ४१ ।।

आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य यः क्षत्रियकालरात्रिम् ।
धारां शितां रामपरश्वधस्य संभावयत्युत्पलपत्रसाराम् ।। ४२ ।।

अन्वयः——यः आयोधने कृष्णगतिं सहायं अवाप्य क्षत्रियकालरात्रिं राम-परश्वधस्य शितां धारां उत्पलपत्रसारां संभावयति ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या—यः = प्रतीपः। आयोधने = संग्रामे। कृष्णगतिं = कृष्णवर्त्मानमग्निम्। सहायं = सहायकम्। अवाप्य = प्राप्य। क्षत्रियकालरात्रिं = क्षत्रियसंहारकारिणीम्। रामपरश्वधस्य = जामदग्न्यपरशोः। शितां = तीक्ष्णाम्। धारां = मुखम्। उत्पलपत्रसारां = कमलदलमुखम्। सम्भावयति = मन्यते।

समासः—आसमन्तात् युध्यन्ते भटा यस्मिन्निति आयोधनं तस्मिन् आयोधने। क्षत्रात् त्रायन्ते इति क्षत्रियाः क्षत्रियाणां कालरात्रिः इति क्षत्रियकालरात्रिः तां क्षत्रियकालरात्रिम्। रामस्य परश्वध इति रामपरश्वधः तस्य रामपरश्वधस्य। उत्पलस्य पत्रमुत्पलपत्रमुत्पलपत्रस्य सारः इव सारो यस्याः सा उत्पलपत्रसारा ताम् उत्पलपत्रसाराम्।

भावार्थः—यः प्रतीपो युद्धे अग्नि सहायमवाप्य क्षत्रियसंहारकारिणीं परशुरामस्य परशुधारां कमलदलमुखमिव मन्यते। एतन्नगरजिगीषया समागतान् शत्रून् धक्ष्यामीति वैश्वानरेण दत्तवरोऽयं राजेति महाभारतीया कथाऽनुसन्धेया इति भावः।

सञ्जीविनी—यः प्रतीप आयोधने युद्धे कृष्णगतिं कृष्णवर्त्मानमग्नि सहायमवाप्य क्षत्रियाणां कालरात्रिं संहाररात्रिमित्यर्थः रामपरश्वधस्य जामदग्न्यपरशोः। 'द्वयोः कुठारः स्वधितिः परशुश्च परश्वधः' इत्यमरः। शितां तीक्ष्णां धारां मुखम्। 'खड्गादीनां च निशितमुखे धारा प्रकीर्तिता' इति विश्वः। उत्पलपत्रस्य सार इव सारो यस्यास्तां तथाभूतां संभावयति मन्यते। एतन्नगरजिगीषयाऽऽगतान् रिपून् स्वयमेव धक्ष्यामीति भगवता वैश्वानरेण दत्तवरोऽयं राजा दह्यन्ते च तथागताः शत्रव इति भारते कथानुसन्धेया।

भाषार्थ—ये राजा इतने बलवान् हैं कि अग्नि से वरदान प्राप्तकरके उन परशुरामजी के फरसे की तेजधारा को कमल के पत्रों के समान निःसार समझते हैं, जिन्होंने युद्ध में २१ बार क्षत्रियों का संहार कर डाला है॥ ४२॥

अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम्।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः॥ ४३॥

अन्वयः—यदि माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीं जलवेणिरम्यां रेवां प्रासादजालैः प्रेक्षितुं कामः अस्ति तर्हि त्वं दीर्घबाहोः अस्य अङ्कलक्ष्मीः भव।

व्याख्या—दीर्घबाहोः = उदग्रभुजस्य। अस्य = एतस्य प्रतीपस्य। अङ्कलक्ष्मीः = क्रोडश्रीः। भव = भूयाः, एनंवृणीष्व। यदि = चेत्। माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम् = माहिष्मतीनगरीप्राकारमध्यभागरशनाम्। जलवेणिरम्याम् =

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तोयप्रवाहमनोहराम् । रेवां = नर्मदाम् । प्रासादजालैः = राजभवनगवाक्षैः । प्रेक्षितुं = अवलोकयितुम् । कामः = इच्छा अस्ति ।

समासः--अङ्कस्य लक्ष्मीः अङ्कलक्ष्मीः । वप्र एव नितम्बः वप्रनितम्बः माहिष्मत्याः वप्रनितम्बः माहिष्मतीवप्रनितम्बः माहिष्मतीवप्रनितम्बस्य काञ्ची माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्ची तां माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम् । प्रासादस्य जालानि प्रासादजालानि तैः प्रासादजालैः । जलस्य वेणिः जलवेणिः जलवेण्या रम्या इति जलवेणिरम्या तां जलवेणिरम्याम् ।

भावार्थः—यदि तां जलप्रवाहमनोरमां नर्मदानदीं राजभवनगवाक्षैर्द्रष्टुमिच्छसि या माहिमत्याः चतुर्दिक्षु काञ्चीव प्रवहति तर्हि दीर्घभुजस्यास्य प्रतीपस्य राज्ञः अङ्कलक्ष्मीर्भव, अर्थादेनं वृणीष्वेति ।

सञ्जीविनी--दीर्घबाहोरस्य प्रतीपस्याङ्कलक्ष्मीर्भव । एनं वृणीष्वेत्यर्थः । अनेनायं विष्णुतुल्य इति ध्वन्यते । माहिष्मती नामास्य नगरी । तस्या वप्रः प्राकार एव नितम्बः । तस्य काञ्चीं रशनाभूतां जलानां वेण्या प्रवाहेण रम्याम् । 'ओघः प्रवाहो वेणी च' इति हलायुधः । रेवां नर्मदां प्रासादजालैर्गवाक्षैः । 'जालं समूह आनायो गवाक्षक्षारकावपि' इत्यमरः । प्रेक्षितुं काम इच्छाऽस्ति यदि ।

भाषार्थ—इनकी राजधानी माहिष्मती नगरी की चहार दिवारी रूप नितम्ब की करधनी के रूप में स्थित और जल रूप वेणी से रमणीय नर्मदा नदी को राजभवनों के झरोखों से यदि देखना चाहती हो, तो इस महाबाहु राजा प्रतीप को वरण कर लो ॥ ४३ ॥

तस्याः प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि न स क्षितीशो रुचये बभूव ।
शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः शशीव पर्याप्तकलो नलिन्याः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—प्रकामं प्रियदर्शनः अपि स क्षितीशः शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः पर्याप्तकलः शशी नलिन्याः इव तस्या रुचये न बभूव ।

व्याख्या—प्रकामं=यथेष्टम् । प्रियदर्शनः=मनोहरावलोकनः, दर्शनीयः । अपि सः = प्रतीपः । क्षितीशः=पृथ्वीपतिः । शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः=शरदृतुनिरस्तमेघावरणः । पर्याप्तकलः = पूर्णांशः । शशी = चन्द्रमाः । नलिन्याः = कमलिन्या इवतस्याः=पतिम्बरायाः । इन्दुमत्याः रुचये = सन्तोषाय न बभूव = न हि जातः ।

समासः—प्रियं दर्शनं यस्य स प्रियदर्शनः । क्षितेरीशः क्षितीशः । धरन्तीति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धराणि अम्बूनां धराणीति अम्बुधराणि तेषामुपरोधः शरदा प्रमृष्टः अम्बुधराणामुपरोधः शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः। पर्याप्ता कला यस्य स पर्याप्तकलः।

भावार्थः--अत्यन्तप्रियदर्शनीयोऽपि सः पृथिवीनाथः प्रतीपः तथैव तस्याः इन्दुमत्याः सन्तोषप्रदो न बभूव यथा शरदर्तोः समागमेन निरस्तमेघावरणः सकलकलोऽपि चन्द्रमाः कमलिन्याः प्रीतये न प्रभवतीति भावः।

सञ्जीविनी--प्रकामं प्रियं प्रीतिकरं दर्शनं यस्य सोऽपि दर्शनीयोऽपीत्यर्थः। स क्षितीशः शरदा प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधो निरस्तमेघावरणः पर्याप्तकलः पूर्णकलः शशी नलिन्या इव तस्या इन्दुमत्या रुचये न बभूव। रुचिं नाजीजनदित्यर्थः। लोको भिन्नरुचिरिति भावः।

भाषार्थ—जिस प्रकार मेघरूप आवरण से रहित निर्मल शरद् ऋतु का मनोहर चन्द्रमा कमलिनी को अच्छा नहीं लगता है उसी प्रकार देखने में अत्यन्त सुन्दर भी वह प्रतापी राजा इन्दुमती के मन में नहीं जंचा॥ ४४॥

सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम्।
आचारशुद्धोभयवंशदीपं शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारी॥ ४५॥

अन्वय--लोकान्तरगीतकीर्तिं आचारशुद्धोभयवंशदीप शूरसेनाधिपतिं सुषेणं उद्दिश्य शुद्धान्तरक्ष्या सा कुमारी जगदे।

व्याख्या--लोकान्तरगीतकीर्तिं=स्वर्गादिकीर्तितयशसम्। आचारशुद्धोभयवंशदीपम्=सदाचारनिर्मलमातृपितृकुलम्। शूरसेनाधिपतिं=मथुराधिपतिम्। सुषेणं=सुषेणनामकं राजानम्। उद्दिश्य=अभिसन्धाय। शुद्धान्तरक्ष्या=अन्तःपुरपालिकया तया सुनन्दया, कुमारी=इन्दुमती। जगदे=ऊचे, कथिता।

समासः--अन्यो लोकः लोकान्तरम् लोकान्तरे गीता कीर्तिः यस्य स लोकान्तरगीतकीर्तिः तं लोकान्तरगीतकीर्तिम्। आचारेण शुद्धौ उभौ वंशौ इति आचारशुद्धोभयवंशौ तयोः आचारशुद्धोभयवंशयोः दीपः आचारशुद्धोभयवंशदीपः तम् आचारशुद्धोभयवंशदीपम्। शूरसेनानामधिपतिः शूरसेनाधिपतिः तं शूरसेनाधिपतिम्। शुद्धान्तं रक्षतीति शुद्धान्तरक्षी तया शुद्धान्तरक्ष्या।

भावार्थः--स्वर्गादिलोकेषु यस्य कीर्तिर्गीयते स्वपवित्राचरणेन येन मातृकुलपितृकुलयोः नैर्मल्यं समासादितम्, एतादृशस्य तस्य मथुराधिपतेः सुषेणस्य पार्श्वे उपनीय अन्तःपुररक्षी सुनन्दा राजकुमारीमिन्दुमतीमवोचदिति भावः।

सञ्जीविनी--लोकान्तरे स्वर्गादावपि गीतकीर्तिमाचारेण शुद्धयोरुभयो-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वंशयोर्मातापितृकुलयोर्दीपं प्रकाशकम् । उभयवंशेत्यत्रोभयपक्षवन्निर्वाहः । शूरसेनानां देशानामधिपतिं सुषेणं नाम नृपतिमुद्दिश्याभिसंधाय शुद्धान्तरक्ष्यान्तःपुरपालिकया । "कर्मण्यण्" "टिड्ढाणञ्०" इति ङीप् । सा कुमारी जगदे ।

भाषार्थ—तव अन्तःपुरपालिका सुनन्दा राज कुमारी इन्दुमती को मथुरा के राजा सुषेण के पास ले गई और उन्हें दिखा कर इन्दुमती कहने लगी कि इनकी कीर्ति स्वर्गादिलोक में भी गाई जाती है और इन्होंने अपने शुद्ध चरित्र से मातृकुल और पितृकुल दोनों को उज्ज्वल किया है ॥ ४५ ॥

नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा गुणैर्यमाश्रित्य परस्परेण ।
सिद्धाश्रमं शान्तमिवैत्य सत्त्वैर्नैसर्गिकोऽप्युत्ससृजे विरोधः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—यज्वा एष पार्थिवः नीपान्वयः अस्ति यं आश्रित्य गुणैः शान्तं सिद्धाश्रमं एत्य सत्त्वैः नैसर्गिकः अपि परस्परेण विरोधः उत्ससृजे ।

व्याख्या—यज्वा=याजकः, विधिनेष्टवान् । एषः=पुरोवर्ती । पार्थिवः=राजा । नीपान्वयः=नृपकुलोत्पन्नः अस्ति । यं=सुषेणम् । आश्रित्य=आलम्ब्य । गुणैः=ज्ञानमौनादिभिः । शान्तं=प्रसन्नम् । सिद्धाश्रमम्=ऋष्याश्रमम् । एत्य=प्राप्य । सत्त्वैः=सिंहादिभिः=हिंसकप्राणिभिः । इव=यथा । नैसर्गिकः=स्वाभाविकः अपि । परस्परेण=अन्योन्यं । विरोधः=वैरम् । उत्ससृजे=परित्यक्तः ।

समासः—यजते स्म इति यज्वा । पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः । नीपः अन्वयो यस्य स नीपान्वयः । सिद्धानामाश्रमः इति सिद्धाश्रमः तं सिद्धाश्रमम् । निसर्गात् जातः नैसर्गिकः ।

भावार्थः—विधिनेष्टवान् एष पुरोवर्ती राजा महाराजस्य नीपस्य वंशेऽस्ति समुत्पन्नः । अस्य समीपे समागत्य ज्ञानमौनादयो गुणा अपि स्वाभाविकं विरोधं तथैव परित्यक्तवन्तो यथा ऋषीणामाश्रमे गत्वा सिंहादयः हिंस्रका जन्तवः स्वाभाविकं पारस्परिकं वैरं परित्यजन्तीति भावः ।

सञ्जीविनी—यज्वा विधिवदिष्टवान् । "सुयजोर्ङ्वनिप्" इति ङ्वनिप्प्रत्ययः एष पार्थिवः । नीपो नामान्वयोऽस्येति नीपान्वयो नीपवंशजः । यं सुषेणमाश्रित्य गुणैर्ज्ञानमौनादिभिः । शान्तं प्रसन्नं सिद्धाश्रममृष्याश्रममेत्य प्राप्य सत्त्वैर्गजसिंहादिभिः प्राणिभिरिव । नैसर्गिकः स्वाभाविकोऽपि परस्परेण विरोध उत्ससृजे त्यक्तः ।

भाषार्थ—ये राजा विधिपूर्वक यज्ञ करने वाले हैं और राजा नीप के वंश में

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पन्न हुए हैं । जिस प्रकार ऋषियों के शान्त आश्रमों में सभी जीव स्वाभाविक विरोध छोड़कर एक साथ रहते हैं, उसी प्रकार परस्पर विरोधी गुण भी अपना-अपना विरोध छोड़कर इनमें एक साथ रहते हैं ।। ४६ ।।

यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा कान्तिर्हिमांशोरिव संनिविष्टा ।
हर्म्याग्रसंरूढतृणांकुरेषु तेजोऽविषह्यं रिपुमन्दिरेषु ।। ४७ ।।

अन्वयः--यस्य नयनाभिरामा कान्तिः हिमांशोः कान्तिः इव आत्मगेहे सन्निविष्टा अस्ति अविषह्यं तेजः तु हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु रिपुमन्दिरेषु सन्निविष्टम् अस्ति ।

व्याख्या—हिमांशोः=शीतरश्मेः चन्द्रमसः । कान्तिः=द्युतिः इव नयनाभिरामा=नेत्रमनोहरा । यस्य=सुषेणस्य । कान्तिः=शोभा । आत्मगेहे=स्वगृहे । सन्निविष्टा=समाक्रान्ता । अविषह्यं=सोढुमशक्यं प्रचण्डम् । तेजः=प्रतापः । हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु=धनिकभवनाग्रभागोत्पन्नघासनूतनप्ररोहेषु । रिपुमन्दिरेषु=शत्रुनगरेषु । संनिविष्टं=व्याप्तम् ।

समासः--हिमा अंशवो यस्य स हिमांशुः तस्य हिमांशोः । नयनयोः अभिरामा नयनाभिरामा । आत्मनो गेहम् आत्मगेहं तस्मिन् आत्मगेहे । हर्म्याणामग्राणि हर्म्याग्राणि तृणानामङ्कुराः तृणाङ्कुराः सम्यग् रूढाः संरूढाः हर्म्याग्रेषु संरूढा तृणाङ्कुरा येषां ते हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुराः तेषु हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु । रिपूणां मन्दिराणि रिपुमन्दिराणि तेषु रिपुमन्दिरेषु ।

भावार्थः--चन्द्रवन्नयनाभिरामस्यास्य सुषेणस्य प्रकाशः स्वगृहे तु तिष्ठत्येव, किन्तु सूर्यवदस्य प्रचण्डं तेजः तेषु नगरेषु व्याप्तं वर्तते येषु विनष्टधनिकभवनाग्रभागेषु घासाङ्कुरा उत्पन्नाः सन्तीति भावः ।

सञ्जीविनी—हिमांशोः कान्तिश्चन्द्रकिरणा इव नयनयोरभिरामा यस्य सुषेणस्य कान्तिः शोभाऽऽत्मगेहे स्वभवने संनिविष्टा संक्रान्ता । अविषह्यं विसोढुमशक्यं तेजः प्रतापस्तु । हर्म्याग्रेषु धनिकमन्दिरप्रान्तेषु । 'हर्म्यादि धनिनां वासः' इत्यमरः । संरूढास्तृणाङ्कुरा येषां तेषु । शून्येष्वित्यर्थः । रिपुमन्दिरेषु शत्रुनगरेषु । 'मन्दिरं नगरे गृहे' इति विश्वः । संनिविष्टम् । स्वजनाह्लादकोऽयं द्विषंतपश्चेति भावः ।

भाषार्थ—चन्द्रमा की चाँदनी के समान नेत्रों को आह्लादित करनेवाला जिसका प्रकाश तो घर में रहता है और सूर्य के समान प्रचण्ड तेज शत्रुओं के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन राज भवनों पर दिखाई देता है, जिनके उजड़ जाने से उसमें घास-पात जम गई हैं ॥ ४७ ॥

यस्यावरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले ।
कलिन्दकन्या मथुरां गतापि गङ्गोर्मिसंसक्तजलेव भाति ॥ ४८ ॥

अन्वयः—यस्य वारिविहारकाले अवरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनात् मथुरां गता अपि कलिन्दकन्या गङ्गोर्मिसंसक्तजला इव भाति ।

व्याख्या—यस्य=सुषेणस्य । वारिविहारकाले=जलक्रीडासमये । अवरोधस्तनचन्दनानां=अन्तःपुरस्त्रीकुचमलयजानाम् । प्रक्षालनात्=क्षालनात् हेतोः कलिन्दकन्या=कलिन्दगिरितनया यमुना । मथुरां=मथुरापुरीम् । सुषेणराजधानीम् गता=प्राप्ता अपि । गङ्गोर्मिसंसक्तजला=भागीरथीतरङ्ग-मिलितनीरा । इव=यथा । भाति=शोभते ।

समासः—वारिषु विहारः वारिविहारः वारिविहारस्य कालः वारिविहार-कालः तस्मिन् वारिविहारकाले । अवरोधानां स्तनाः अवरोधस्तनाः अवरोध-स्तनेषु चन्दनानि अवरोधस्तनचन्दनानि तेषाम् अवरोधस्तनचन्दनानाम् । कलिन्दस्य कन्या कलिन्दकन्या । गङ्गाया ऊर्मयः गङ्गोर्मयः गङ्गोर्मिभिः संसक्तं जलं यस्या सा गङ्गोर्मिसक्तजला ।

भावार्थः—अस्य राज्ञः सुषेणस्य जलक्रीडासमये महिषीणां स्तनेषु संलग्नस्य चन्दनस्य प्रक्षालनेन जले मिश्रणात् मथुरायामपि यमुनाजलं गंगातरङ्गमिलितं यमुनाजलमिव प्रतीयते इति भावः ।

सञ्जीविनी—यस्य सुषेणस्य वारिविहारकाले जलक्रीडासमयेऽवरोधाना-मन्तःपुराङ्गनानां स्तनेषु चन्दनानां मलयजानां प्रक्षालनाद्धेतोः कलिन्दो नाम शैलस्तत्कन्या यमुना । 'कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा' इत्यमरः । मथुरा नामास्य राज्ञो नगरी तां गतापि । गङ्गाया विप्रकृष्टापीत्यर्थः । मथुरायां गङ्गाभावं सूचयत्यपिशब्दः । कालिन्दीतीरे मथुरा लवणासुरवधकाले शत्रुघ्नेन निर्मास्यते इति वक्ष्यति । तत्कथमधुना मथुरासंभव इति चिन्त्यम् मधुरा मथुरा-पुरीति शब्दभेदः । यद्वा साम्येति गङ्गाया भागीरथ्या ऊर्मिभिः संसक्तजलेव भाति । धवलचन्दनसंसर्गात्प्रयागादन्यत्राप्यत्र गङ्गासङ्गतेव भातीत्यर्थः । 'सितासिते हि गङ्गायमुने' इति घण्टापथः ।

भाषार्थ—जलविहार करते समय इनकी रानियों के स्तनों पर लगा हुआ श्वेत चन्दन घुलकर जब यमुना जल में मिल जाता है, तब उस समय मथुरा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में यमुनाजी का रंग ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों वहीं पर उनका गंगाजी की लहरों से संगम हो गया है ॥ ४८ ॥

त्रस्तेन तार्क्ष्यात् किल कालियेन मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः ।
वक्षःस्थलव्यापिरुचं दधानः सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम् ॥ ४९ ॥

अन्वयः--तार्क्ष्यात् त्रस्तेन यमुनौकसा कालियेन विसृष्टं किल वक्षःस्थलव्यापिरुचं मणिं दधानः यः सकौस्तुभं कृष्णं ह्रेपयति इव ।

व्याख्या—तार्क्ष्यात् = गरुडात् । त्रस्तेन = भीतेन । यमुनौकसा = यमुनानिवासिना । कालियेन = कालियनामकेन नागेन । विसृष्टं = अभयदाननिष्क्रयत्वेन दत्तम् । किल = खलु । वक्षःस्थलव्यापिरुचं = उरःस्थलव्यापिकान्तिम् । मणिं = रत्नम् । दधानः = धारयन् । यः = सुषेणः । सकौस्तुभं=कौस्तुभसहितम् । कृष्णम् = भगवन्तं श्रीकृष्णम् । ह्रेपयतीव = व्रीडयतीव ।

समासः—यमुना ओकः यस्य सः यमुनौकाः तेन यमुनौकसा । वक्षःस्थलं व्याप्नोति इति वक्षःस्थलव्यापिनी वक्षःस्थलव्यापिनी रुक् यस्य स वक्षःस्थलव्यापिरुक् तं वक्षःस्थलव्यापिरुचम् । कौस्तुभेन सहितः सकौस्तुभः तं सकौस्तुभम् ।

भावार्थः—गरुडभयेनोद्विग्नः यमुनाजलनिवासी कालियनागोऽभयप्राप्तौसत्यां प्रसन्नो भूत्वाऽस्मै राज्ञे मणिमेकं प्रदत्तवान् । वक्षःस्थलव्यापिनं तं मणिं परिधायासौ सुषेणः कौस्तुभमणिधारिणं भगवन्तं श्रीकृष्णं लज्जयतीव प्रतीयते । अर्थात् एतस्य मणिसमक्षे कौस्तुभमणिशोभा निष्प्रभा भवतीति भावः ।

सञ्जीविनी—तार्क्ष्याद् गरुडात्त्रस्तेन यमुनौकः स्थानं यस्य तेन । कालियेन नाम नागेन विसृष्टं किलाभयदाननिष्क्रियत्वेन दत्तम् । किलेत्यैतिह्ये । वक्षःस्थलव्यापिरुचं मणिं दधानो यः सुषेणः सकौस्तुभं कृष्णं विष्णुं ह्रेपयतीव व्रीडयतीव । 'अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ' इत्यनेन पुगागमः । कौस्तुभमणेरप्युत्कृष्टोऽस्य मणिरिति भावः ।

भाषार्थ--गरुड़ के डर से यमुना के जल में रहनेवाले कालियनाग द्वारा अभयदान देने के उपहार में दिए गये छाती पर फैलती हुई कान्तिवाले मणि को धारण किये हुए इस मथुराधिप राजा सुषेण की शोभा के सामने कौस्तुभ मणि को पहने हुए भगवान् श्रीकृष्ण की शोभा भी फीकी पड़ जाती है ॥४९॥

संभाव्य भर्तारममुं युवानं मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये ।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि ! यौवनश्रीः ॥ ५० ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः—हे सुन्दरि ! अमुं युवानं भर्तारं संभाव्य, मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये, चैत्ररथात् अनूने वृन्दावने, यौवनश्रीः, निर्विश्यताम् ।

व्याख्या—युवानं=तरुणम् । अमुं=एनं सुषेणम् । भर्तारं=पतिम् । संभाव्य=मत्वा । पतित्वेन स्वीकृत्य । मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये=उपरि-प्रसारितकोमलपल्लवपुष्पशय्ये । चैत्ररथात्=कुबेरोद्यानात् । अनूने=समाने । वृन्दावने=वृन्दावननामकोद्याने । हे सुन्दरि !=हे शोभने ! यौवनश्रीः= तारुण्यसौभाग्यं फलम् । निर्विश्यतां=भुज्यताम् ।

समासः—मृदूनि प्रवालानि उत्तराणि यस्यां सा मृदुप्रवालोत्तरा पुष्पाणां शय्या पुष्पशय्या मृदुप्रवालोत्तरा पुष्पशय्या यस्मिन् तत् मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्यम् तस्मिन् मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये । चित्ररथस्येदं चैत्ररथं तस्मात् चैत्ररथात् । न नूनम् अनूनं तस्मिन् अनूने । वृन्दानां वनं वृन्दावनं तस्मिन् वृन्दावने । यूनो भावः यौवनं यौवनस्य श्रीः यौवनश्रीः ।

भावार्थः—हे सुन्दरि ! इन्दुमति ! एनं युवानं सुषेणं पतिं मत्वा उपरि-प्रसारितकोमलपल्लवे पुष्पशय्ये कुबेरोद्यानसमाने वृन्दावने स्वयौवनशोभामुप-भुङ्क्ष्वेति भावः ।

सञ्जीविनी—युवानममुं सुषेणं भर्तारं संभाव्य मत्वा पतित्वेनाङ्गीकृत्ये-त्यर्थः । मृदुप्रवालोत्तरोपरिप्रस्तारितकोमलपल्लवा पुष्पशय्या यस्मिस्तत्तस्मि-श्चैत्ररथात्कुबेरोद्यानादनूने वृन्दावने वृन्दावननामक उद्याने हे सुन्दरि ! यौवन-श्रीर्यौवनफलं निर्विश्यतां भुज्यताम् ।

भाषार्थ—हे सुन्दरी ! इस युवक राजा के साथ विवाह करके चैत्ररथ नामक कुबेर के उद्यान से भी सुन्दर वृन्दावन में कोमल पत्तों और पुष्पों की शय्याओं पर विहार करते हुए अपनी जवानी की शोभा को चरितार्थ करो ॥ ५० ॥

अध्यास्य चाम्भःपृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि ।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु ॥ ५१ ॥

अन्वयः—च प्रावृषि कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु अम्भःपृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि, शिलातलानि, अध्यास्य कलापिनां नृत्यं, पश्य ।

व्याख्या—किञ्च प्रावृषि=वर्षर्तौ । कान्तासु=मनोहरासु । गोवर्धनकन्द-रासु=गोवर्धनगिरिगुहासु । अम्भःपृषतोक्षितानि=जलबिन्दुसिक्तानि । शैलेय-गन्धीनि=शिलाजतुसौरभानि । शिलातलानि=प्रस्तरखण्डानि । अध्यास्य= अधिष्ठाय । कलापिनां=मयूराणाम् । नृत्यं=नर्तनम् । पश्य=अवलोकय ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समासः—प्रकृष्टा वृट् प्रावृट्, तस्यां प्रावृटि । गोवर्धनस्य कन्दरा गोवर्धनकन्दरा तासु गोवर्धनकन्दरासु । अम्भसः पृषता अम्भःपृषता अम्भःपृषतैः उक्षितानि अम्भःपृषतोक्षितानि तानि अम्भःपृषतोक्षितानि । शिलायां भवं शैलेयं शैलेयस्य गन्धः शैलेयगन्धः शैलेयगन्धः अस्ति येषु तानि शैलेयगन्धीनि तानि शैलेयगन्धीनि । शिलानां तलानि शिलातलानि तानि शिलातलानि । कलापाः सन्ति येषां ते कलापिनः तेषां कलापिनाम् ।

भावार्थः—वर्षाकाले गोवर्धनपर्वतस्य मनोहरकन्दरासु जलप्रक्षेपैः शिलातलासु शिलाजतुसुगन्धिनीषु शिलासु उपविश्य रमणीयं मयूराणां नर्तनं विलोकयेति भावः ।

सञ्जीविनी—किं च, प्रावृषि वर्षासु कान्तासु गोवर्धनस्याद्रेः कन्दरासु दरीषु । 'दरी तु कन्दरो वा स्त्री' इत्यमरः । अम्भसः पृषतैर्बिन्दुभिरुक्षितानि सिक्तानि । शिलायां भवं शैलेयम् । 'शिलाजतु च शैलेयम्' इति यादवः, यद्वा, शिलापुष्पाख्य ओषधिविशेषः । 'कालानुसार्यवृद्धाश्मपुष्पशीतशिवानि तु । शैलेयम्' इत्यमरः । 'शिलाया ढः' इत्यत्र शिलाया इति योगविभागादिवार्थे ढप्रत्ययः । तद्गन्धवन्ति शैलेयगन्धीनि शिलातलान्यध्यास्याधिष्ठाय कलापिनां बर्हिणां नृत्यं पश्य ।

भाषार्थ—और वर्षा ऋतु में गोवर्धन पर्वत की सुहावनी गुफाओं में पानी की फुहारों से भींगे हुए एवं शिलाजीत के गन्ध से सुवासित चट्टानों पर बैठकर मोरों का नाच देखो ॥ ५१ ॥

नृपं तमावर्तमनोज्ञनाभिः सा व्यत्यगादन्यवधूर्भवित्री ।
महीधरं मार्गवशादुपेतं स्रोतोवहा सागरगामिनीव ॥ ५२ ॥

अन्वयः—आवर्तमनोज्ञनाभिः अन्यवधूः भवित्री सा सागरगामिनी स्रोतोवहा मार्गवशात् उपेतं, महीधरं इव तं नृपं, व्यत्यगात् ।

व्याख्या—आवर्तमनोज्ञनाभिः=जलभ्रममनोहरनाभिः । अन्यवधूः=अपरपत्नी । भवित्री=भाविनी, सा=इन्दुमती । तं=सुषेणं नृपम् । सागरगामिनी=समुद्रगन्त्री । स्रोतोवहा=नदी । मार्गवशात्=पथिकारणात् । उपेतं=प्राप्तम् । महीधरं=पर्वतम् । इव=यथा । व्यत्यगात्=अतीत्य गता ।

समासः—आवर्त इव मनोज्ञा नाभिः यस्याः सा आवर्तमनोज्ञनाभिः । मार्गस्य वशः मार्गवशः तस्मात् मार्गवशात् । अन्यस्य वधूः अन्यवधूः । महीं धरतीति महीधरः तं महीधरम् । स्रोतोभिः वहति या सा स्रोतोवहा । सागरं गच्छतीति सागरगामिनी ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—जलावर्तवन्मनोहरनाभिः परपत्नीभाविनी सा इन्दुमती तं राजानं सुषेणं परिहाय तथैवाग्रे गतवती यथा समुद्रगमनशीला नदी मार्गे वर्तमानं पर्वतं परित्यज्याग्रे गच्छतीति भावः।

सञ्जीविनी—'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः। आवर्तमनोज्ञा नाभिर्यस्याः साः। इदं च नदीसाम्यार्थमुक्तम्। अन्यवधूरन्यपत्नी भवित्री भाविनी सा कुमारी महीधरं तं नृप सागरगामिनी सागरं गन्त्री स्रोतोवहा नदी मार्गवशादुपेतं प्राप्तं महीधरं पर्वतमिव व्यत्यगादतीत्य गता।

भाषार्थ—पानी के भँवर के समान गहरी नाभि वाली और किसी दूसरे की स्त्री बननेवाली वह इन्दुमती उस राजा सुषेण को छोड़कर उसी प्रकार आगे बढ़ गई जिस प्रकार समुद्र से मिलने वाली नदी मार्ग में पड़े हुए पर्वतों को छोड़कर आगे बढ़ जाती है॥ ५२॥

अथाङ्गदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथम्।
आसेदुषीं सादितशत्रुपक्षं बालामबालेन्दुमुखीं बभाषे॥ ५३॥

अन्वयः—अथ भुजिष्या अङ्गदाश्लिष्टभुजं सादितशत्रुपक्षं हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथं आसेदुषा अबालेन्दुमुखीं बालां बभाषे।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्। भुजिष्या=किङ्करी द्वारपालिका सुनन्दा। अङ्गदाश्लिष्टभुजं=केयूरबद्धबाहुम्। सादितशत्रुपक्षं=नाशितारिवर्गम्। हेमाङ्गदं=हेमाङ्गदनामानम्। कलिङ्गनाथं=कलिङ्गजनपदनृपतिम्। आसेदुषीं=प्राप्तवतीम्। अबालेन्दुमुखीं=पूर्णचन्द्राननाम्। बालां=कुमारीम्, इन्दुमतीम्। बभाषे=उक्तवती।

समासः—अङ्गदेन आश्लिष्टः भुजः यस्य स अङ्गदाश्लिष्टभुजः तम् अङ्गदाश्लिष्टभुजम्। सादितः शत्रूणां पक्षः येन स सादितशत्रुपक्षः तं सादितशत्रुपक्षम्। कलिङ्गानां नाथः कलिङ्गनाथः तं कलिङ्गनाथम्। न बालः अबालः अबालश्चासाविन्दुः अबालेन्दुः अबालेन्दुरिव मुखं यस्याः सा अबालेन्दुमुखी ताम् अबालेन्दुमुखीम्।

भावार्थः—तदनन्तरं द्वारपालिका सुनन्दा बाह्वो अङ्गदं धारयतः शत्रुमर्दनस्य च हेमाङ्गदनामकस्य कलिङ्गजनपदनृपतेः सम्मुखे उपस्थितां पूर्णचन्द्राननां कुमारीमिन्दुमतीमुक्तवतीति भावः।

सञ्जीविनी—अथ भुजिष्या किंकरी सुनन्दा। 'भुजिष्या किंकरी मता' इति हलायुधः। अङ्गदाश्लिष्टभुजं केयूरनद्धबाहुं सादितशत्रुपक्षं विनाशितशत्रुवर्गं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथमासेदुषीमासन्नामबालेन्दुमुखीं पूर्णेन्दुमुखीं बालामिन्दुमतीं बभाषे ।

भावार्थ—इसके बाद दासी सुनन्दा पूर्णचन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली इन्दुमती को उस कलिंग देश के राजा हेमाङ्गद को दिखाकर बोली, जो अपनी बाहु में बिजायठ पहने हुए थे और अपने शत्रुओं को नष्ट कर डालने में दक्ष थे ।। ५३ ।।

असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च ।
यस्य क्षरत्सैन्यगजच्छलेन यात्रासु यातीव पुरो महेन्द्रः ।। ५४ ।।

अन्वयः—महेन्द्राद्रिसमानसारः असौ महेन्द्रस्य महोदधेः च पतिः अस्ति, यस्य यात्रासु महेन्द्रः क्षरत्सैन्यगजच्छलेन पुरः याति इव ।

व्याख्या—महेन्द्राद्रिसमानसारः = महेन्द्राद्रिकुलपर्वततुल्यबलः । असौ = पुरोवर्ती राजा हेमाङ्गदः । महेन्द्रस्य = महेन्द्रकुलपर्वतस्य । महोदधेः = महासागरस्य च । पतिः अस्ति = स्वामी अस्ति । यस्य = हेमाङ्गदस्य । यात्रासु = प्रयाणेषु । महेन्द्रः = महेन्द्रपर्वतः । क्षरत्सैन्यगजच्छलेन = मदस्राविसैनिकद्विपव्याजेन । पुरः = अग्रे । याति = गच्छति ।

समासः—महेन्द्रश्चासौ अद्रिः महेन्द्राद्रिः महेन्द्राद्रेः समानः सारो यस्य स महेन्द्राद्रिसमानसारः । महांश्चासौ उदधिः महोदधिः तस्य महोदधेः । सेनाया समवेताः सैन्याः सैन्यानां गजाः सैन्यगजाः क्षरन्तश्च ते सैन्यगजा इति क्षरत्सैन्यगजाः तेषां क्षरत्सैन्यगजानाम् छलमिति क्षरत्सैन्यगजच्छलं तेन क्षरत्सैन्यगजच्छलेन ।

भावार्थः—महेन्द्रकुलपर्वततुल्यबलः एष हेमाङ्गदः महेन्द्रपर्वतस्य समुद्रस्य च स्वामी अस्ति अर्थादुभयोरस्त्यस्याधिकारः । अयं यदा युद्धाय यात्रां करोति तदा अग्रेसरा अस्य सेनायाः मत्तहस्तिनः एवं प्रतीयन्ते यत् गजव्याजेन महेन्द्रपर्वत एव प्रचलतीति । अस्येदं तात्पर्यमस्ति यदस्य हस्तिनः महेन्द्रपर्वताकारा सन्तीति भावः ।

सञ्जीविनी—महेन्द्राद्रेः समानसारस्तुल्यसत्त्वोऽसौ हेमाङ्गदो महेन्द्रस्य नाम कुलपर्वतस्य महोदधेश्च पतिः स्वामी । महेन्द्रमहोदधी एवास्य गिरिजलदुर्गे इति भावः । यस्य यात्रासु क्षरतां मदस्राविणां सैन्यगजानां छलेन महेन्द्रो महेन्द्रादिः पुरोऽग्रे यातीव । अद्रिकल्पा अस्य गजा इत्यर्थः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—ये महेन्द्रपर्वत के समान शक्तिशाली हैं और इनका अधिकार महेन्द्रपर्वत एवं समुद्र दोनों पर है। जब ये युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं तब इनके आगे-आगे चलनेवाले मस्त हाथी ऐसे मालूम पड़ते हैं, मानो महेन्द्र पर्वत ही स्वयं हाथियों का वेष बनाकर इनके आगे चल रहा है ॥ ५४ ॥

ज्याघातरेखे सुभुजो भुजाभ्यां बिभर्ति यश्चापभृतां पुरोगः।
रिपुश्रियां साञ्जनवाष्पसेके बन्दीकृतानामिव पद्धती द्वे ॥ ५५ ॥

अन्वयः—सुभुजः चापभृतां पुरोगः यः बन्दीकृतानां रिपुश्रियां साञ्जनवाष्पसेके पद्धती इव द्वे ज्याघातरेखे भुजाभ्यां बिभर्ति।

व्याख्या—सुभुजः=शोभनबाहुः। चापभृतां=धनुर्धारिणाम्। पुरोगः=अग्रगामी। यः=हेमाङ्गदः। बन्दीकृतानां=उपगृहीतानाम्। रिपुश्रियां=शत्रुलक्ष्मीनाम्। साञ्जनवाष्पसेके=कज्जलमिश्राश्रुसिक्ते। पद्धती=मार्गौ। इव=यथा। द्वे=द्विसंख्याके। ज्याघातरेखे=मौर्वीकिणराजी। भुजाभ्यां=बाहुभ्याम्। बिभर्ति=धारयति।

समासः—सुष्ठु भुजौ यस्य स सुभुजः। चापं बिभ्रतीति चापभृतः तेषां चापभृताम्। पुरो गच्छतीति पुरोगः। न वन्द्यः अवन्द्यः अवन्द्यः वन्द्यः कृताः सम्पद्यमाना बन्दीकृताः तासां बन्दीकृतानाम्। रिपूणां श्रियः रिपुश्रियः तासां रिपुश्रियाम्। अञ्जनेन सहितः साञ्जनः साञ्जनः वाष्पाणां सेकः ययोस्ते साञ्जनवाष्पसेके। ज्यायाः घाताः ज्याघाताः तेषां रेखे ज्याघातरेखे ते ज्याघातरेखे।

भावार्थः—शोभनबाहुः धनुर्धारिणामग्रेसरःहेमाङ्गदो नामायं राजा स्वयोः द्वयोः भुजयोः धनुः प्रत्यश्चासंघर्षजायमाने द्वे कृष्णे रेखे बिभर्तीति। रेखे एवं प्रतीयेते यद् बन्दीकृतायाः शत्रो राजलक्ष्म्याः साञ्जनाभ्यां कृष्णाभ्यामक्षिभ्यां निःसृतैरश्रुभिः कृष्णीभूतौ द्वौ भागौ स्तः।

सञ्जीविनी—सुभुजश्चापभृतां पुरोगो धनुर्धराग्रेसरो यः। बन्दीकृतानां प्रगृहीतानाम्। 'प्रग्रहोपग्रहौ बन्द्याम्' इत्यमरः। रिपुश्रिया साञ्जनो वाष्पसेको ययोस्ते। कज्जलमिश्राश्रुसिक्ते इत्यर्थः। पद्धती इव। द्वे ज्याघातानां मौर्वीकिणानां रेखे राजी भुजाभ्यां बिभर्ति। द्विवचनात्सव्यसाचित्वं गम्यते। रिपुश्रियां भुजाभ्यामेवाहरणात्तद्गतरेखयोस्तत्पद्धतित्वेनोत्प्रेक्षा। तयोः श्यामत्वात्साञ्जनाश्रुसेकोक्तिः।

भावार्थ—सुन्दर भुजावाले और धनुर्धारियों में श्रेष्ठ इस हेमाङ्गद राजाके

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दोनों भुजाओं में धनुष की डोरी खींचने से जो काली-काली रेखायें बन गई हैं वे ऐसी मालूम पड़ती हैं मानो बन्दिनी बनाई गई शत्रुओं की राजलक्ष्मी के अञ्जनयुक्त आँसुओं से सिक्त उनके आने के लिए दो मार्ग बने हों ॥ ५५ ॥

यमात्मनः सद्मनि संनिकृष्टो मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः ।
प्रासादवातायनदृश्यवीचिः प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम् ॥ ५६ ॥

अन्वयः—आत्मनः सद्मनि सुप्तं यं सन्निकृष्टः मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः प्रासादवातायनदृश्यवीचिः अर्णवः एव प्रबोधयति ।

व्याख्या—आत्मनः=स्वस्य । सद्मनि=वेश्मनि, गेहे । सुप्तं=शयितम् । यं=हेमाङ्गदम् । सन्निकृष्टः=समीपस्थः अत एव प्रासादवातयनदृश्यवीचिः=राजभवनगवाक्षावलोकनीयतरङ्गः । मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः=गभीरशब्दविवर्जितप्रहरवाद्यः । अर्णवः=समुद्रः । एव=केवलम् । प्रबोधयति=जागरयति ।

समासः—प्रासादानां वातायनानि प्रासादवातायनानि, प्रासादवातायनैः दृश्याः वीचयः यस्य स प्रासादवातायनदृश्यवीचिः । मन्द्रश्चासौ ध्वनिरिति मन्द्रध्वनिः, यामस्य तूर्यं यामतूर्यं, मन्द्रध्वनिना त्याजितं यामतूर्यं येन स मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः ।

भावार्थः—स्वकीयराजभवने प्रसुप्तमेनं हेमाङ्गदं राजप्रासादगवाक्षावलोकनीयतरङ्गः स्वगर्जनेन प्रहरसमाप्तिसूचकस्य वाद्यस्य निवारकः समुद्र एव प्रभाते जागरयति । अर्थादस्य नगरे सर्वदा समुद्रस्य गभीरो ध्वनिः भवति । अतः प्रहरावसानसूचकं वाद्यं न वाद्यते इति भावः ।

सञ्जीविनी—आत्मनः सद्मनि सुप्तं यं हेमाङ्गदं संनिकृष्टः समीपस्थोऽत एव प्रासादवातायनैर्दृश्यवीचिर्मन्द्रेण गम्भीरेण । 'मन्द्रस्तु गम्भीरे' इत्यमरः, ध्वनिना त्याजितं विवर्जितं यामस्य तूर्यं प्रहरावसानसूचकं वाद्यं येन स तथोक्तः । 'द्वौ यामप्रहरौ समौ' इत्यमरः । अर्णव एव प्रबोधयति । अर्णवस्यैव तूर्यकार्यकारित्वात्तद्वैयर्थ्यमित्यर्थः समुद्रस्यापि सेव्यः किमन्येषामिति भावः ।

भावार्थ—ठीक, इनके राजभवन के पास ही समुद्र वर्तमान है, जिसकी लहरें राजभवन के झरोखों से स्पष्ट दिखाई देती हैं । जब ये अपने महल में सोते हैं तब अपनी गम्भीर गर्जना से रात्रि के चतुर्थ प्रहर के अन्त में बजनेवाले बाजों को व्यर्थ कर देने वाला वह समुद्र ही इन्हें प्रातःकाल में जगाता है ॥ ५६ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनेन सार्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु ।
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—अनेन सार्द्धं तालीवनमर्मरेषु अम्बुराशेः तीरेषु द्वीपान्तरानीत-लवङ्गपुष्पैः मरुद्भिः अपाकृतस्वेदलवा सती त्वं विहर ।

व्याख्या—अनेन=हेमाङ्गदेन राज्ञा । सार्द्धं=साकम् । तालीवनमर्मरेषु=तालवृक्षकाननमर्मरध्वनिवत्सु । अम्बुराशेः=जलनिधेः, समुद्रस्य । तीरेषु=तटेषु । द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैः=अन्यद्वीपाहृतदेवकुसुमसुमनैः । मरुद्भिः=वायुभिः, अपाकृतस्वेदलवा=अपनीतघर्मविन्दुः सती त्वं विहर=क्रीडाविहारं कुरु इत्यर्थः ।

समासः—तालीनां वनानि तालीवनानि तेषां मर्मराः तालीवनमर्मराः तेषु तालीवनमर्मरेषु । अन्ये द्वीपा द्वीपान्तराणि, लवङ्गस्य पुष्पाणि लवङ्गपुष्पाणि, द्वीपान्तरेभ्यः आनीतानि लवङ्गपुष्पाणि यैः ते द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पाः, तैः द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैः । अम्बूनां राशिः यस्मिन् स अम्बुराशिः, तस्य अम्बुराशेः । स्वेदस्य लवाः स्वेदलवाः, अपाकृताः स्वेदलवा यस्याः सा अपा-कृतस्वेदलवाः ।

भावार्थः—प्रिये ! यदीच्छा स्यात्तर्हि अनेन साकं विवाहं कृत्वा एतेन हेमाङ्गदेन साकं तालीवनध्वनिमत्सु समुद्रतटेषु विहारं कुरु । यतो हि विवाहे जाते द्वीपान्तरेभ्यः लवङ्गपुष्पसौरभमानीय वायवः ते नवस्वेदलवमपनेष्यन्तीति भावः ।

सञ्जीविनी—अनेन राज्ञा सार्धं तालीवनैर्मर्मरेषु मर्मरेति ध्वनत्सु । 'अथ मर्मरः स्वनिते वस्त्र-पर्णानाम्' इत्यमरवचनाद् गुणपरस्यापि मर्मरशब्दस्य गुणिपरत्वं प्रयोगादवसेयम् । अम्बुराशेः समुद्रस्य तीरेषु द्वीपान्तरेभ्य आनीतानि लवङ्गपुष्पाणि देवकुसुमानि यैस्तैः । 'लवङ्गं देवकुसुमम्' इत्यमरः । मरुद्भिर्वा-तैरपाकृताः प्रशमिताः स्वेदस्य लवा विन्दवो यस्याः सा तथाभूता सती त्वं विहर क्रीड ।

भाषार्थ—यदि तुम चाहो तो इनके साथ विवाह करके समुद्र के उन तटों पर विहार करो जहाँ पर रातों दिन ताड़ के वृक्षों की मर्मरध्वनि सुनाई पड़ती रहती हैं और विहार करनेवालों के पसीनों को अन्य द्वीपों से लवंगोंके पुष्पों की गन्ध को लेकर बहने वाली हवा दूर करती रहती है ॥ ५७ ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रलोभिताप्याकृतिलोभनीया विदर्भराजावरजा तयैवम् ।
तस्मादपावर्तत दूरकृष्टा नीत्येव लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात् ॥ ५८ ॥

अन्वयः—आकृतिलोभनीया विदर्भराजावरजा तया एवं प्रलोभिता अपि नीत्या दूरकृष्टा लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात् जनात् इव तस्मात् अपावर्तत ।

व्याख्या—आकृतिलोभनीया = सुरूपाकर्षणीया । विदर्भराजावरजा = भोजानुजा कुमारी इन्दुमती । तया = सुनन्दया । एवं = इत्थम् । प्रलोभिता-ऽपि = प्रेरितापि । नीत्या = नयेन पुरुषकारेण । दूरकृष्टा = दूरमानीता । लक्ष्मीः = श्रीः । प्रतिकूलदैवात् = विरुद्धभाग्यात् पुंसः इव = यथा । तस्मात्—हेमाङ्गदात् । अपावर्तत = अपासरत् ।

समासः—विदर्भाणां राजा विदर्भराजः, अवरं जाता अवरजा, विदर्भ-राजस्य अवरजा विदर्भराजावरजा । आकृत्या लोभनीया आकृतिलोभनीया । दूरं कृष्टा दूरकृष्टा । प्रतिकूलं दैवं यस्य स प्रतिकूलदैवः तस्मात् प्रतिकूलदैवात् ।

भावार्थः—न केवलं वर्णेन, अपितु सुरूपेणापि आकर्षणीया विदर्भराज-भोजानुजा इन्दुमती तया सुनन्दया एवं प्रलोभिताऽपि हेमाङ्गदं विहाय तथैवाग्रे ऽगच्छत् यथा पौरुषेणानीतापि लक्ष्मीः भाग्यप्रातिकूल्यात् पुरुषार्थकारकं पुमांसं विहाय गच्छतीति भावः ।

सञ्जीविनी—आकृत्या रूपेण लोभनीयाऽऽकर्षणीया न तु वर्णनमात्रेणेत्यर्थः । विदर्भराजावरजा भोजानुजेन्दुमती तया सुनन्दयैवं प्रलोभितापि प्रचोदितापि नीत्या पुरुषकारेण दूरकृष्टा दूरमानीता लक्ष्मीः प्रतिकूलं दैवं यस्य तस्मात्पुंस इव तस्माद्धेमाङ्गदादपावर्तत प्रतिनिवृत्ता ।

भाषार्थ—केवल वर्णनमात्र से नहीं, किन्तु सौन्दर्य से भी आकृष्ट होनेवाली विदर्भराज भोज की छोटी वहन वह इन्दुमती सुनन्दा की लुभावनी बातें सुन-कर भी उस राजा को छोड़कर उसीप्रकार आगे बढ़ गई जिसप्रकार पुरुषार्थ से पाई गई लक्ष्मी भाग्यहीन पुरुष को छोड़कर चली जाती है ॥ ५८ ॥

अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूपमेत्य ।
इतश्चकोराक्षि ! विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—अथ दौवारिकी देवसरूपम् उरगाख्यस्य पुरस्य नाथम् एत्य हे चकोराक्षि ! इतः त्वं विलोकय इति पूर्वानुशिष्टां भोज्यां निजगाद ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् । दौवारिकी = द्वारपालिका सुनन्दा । देवसरूपं = देवतासमानाकृतिम् । उरगाख्यस्य पुरस्य = उरगपुरनामकस्य नगरस्य नाग-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरस्य। नाथं=स्वामिनम्। एत्य=प्राप्य। हे चकोराक्षि!=अयि चकोर-नेत्रे! इतो विलोकय=एनमवलोकय। इति=इत्थम्। पूर्वानुशिष्टां=प्रथम-प्रबोधितां भोज्याम्=भोजराजात्मजामिन्दुमतीम्। निजगाद=उवाच। पूर्व-मुक्त्वा पश्चाद् वक्तव्यं निजगादेत्यर्थः।

समासः—द्वारे नियुक्ता दौवारिकी। देवानां समानं रूपं यस्यासौ देव-सरूपः, तं देवसरूपम्। उरग इति आख्या यस्य तत् उरगाख्यं, तस्य उरगाख्य-स्य। चकोरस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा चकोराक्षी तत्सम्बुद्धौ हे चकोराक्षि!।

भावार्थः—द्वारपालिका सुनन्दा देवतासमसुन्दरस्य नागपुरनरेशस्य समीपे उपस्थाय पूर्वानुशिष्टां भोजराजानुजामिन्दुमतीं प्रति हे चकोरसमचञ्चललोचने! इन्दुमति! इतो विलोकय इत्युक्त्वा यद् वक्तव्यं तदवोचत् इति भावः।

सञ्जीविनी—अथ द्वारे नियुक्ता दौवारिकी सुनन्दा। "तत्र नियुक्तः" इति ठक्प्रत्ययः। "द्वारादीनां च" इत्यौ–आगमः। आकारेण देवसरूपं देवतुल्यम् उरगाख्यस्य पुरस्य पाण्डयदेशे कान्यकुब्जतीरवर्तिनागपुरस्य नाथमेत्य प्राप्य हे चकोराक्षि! इतो विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां पूर्वमुक्तां भोजस्य राज्ञो गोत्रापत्यं स्त्रियं भोज्यामिन्दुमतीम्। "क्रौडयादिभ्यश्च" इत्यत्रभोजात्क्षत्रियादित्युपसंख्या-नात् ष्यङ्प्रत्ययः। "यङश्चाप्" इति चाप्। निजगाद। इतो विलोकयेति पूर्व-मुक्त्वा पश्चाद्वक्तव्यं निजगादेत्यर्थः।

भाषार्थः—इसके बाद द्वारपालिका सुनन्दा देवताओं के समान सुन्दर उरग-पुर (नागपुर) के राजा के पास ले जाकर भोजवंश में उत्पन्न उस इन्दुमती से बोली कि हे चकोर के समान नेत्रवाली इन्दुमती! इधर तो देखो॥ ५९॥

पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥ ६०॥

अन्वयः—अंसार्पितलम्बहारः हरिचन्दनेन क्लृप्ताङ्गरागः अयं पाण्ड्यः बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गारः अद्रिराजः इव आभाति।

व्याख्या—अंसार्पितलम्बहारः=स्कन्धस्थापितलम्बमानमुक्तावलिः हरि-चन्दनेन=कपिलवर्णचन्दनेन। क्लृप्ताङ्गरागः=विहितानुलेपनः। अयम्=एष पुरोवर्ती राजा पाण्ड्यः पाण्डुजनपदाधीशः। बालातपरक्तसानुः=प्रातःकालिक-सूर्यालोकारुणप्रस्थः। सनिर्झरोद्गारः=सवारिप्रवाहस्यन्दनः। अद्रिराजः=हिमालयः। इव=यथा। आभाति=शोभते।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समासः—अंसयोः अर्पिताः लम्बाः हारा यस्य स अंसार्पितलम्बहारः। अङ्गस्य रागः अङ्गरागः, क्लृप्तः अङ्गरागो येन स क्लृप्ताङ्गरागः। पाण्डूनां राजा पाण्ड्यः। सनोति ददाति सुखमिति सानुः। बालश्चासौ आतपः बालातपः बालातपेन रक्ताः सानवो यस्य स बालातपरक्तसानुः। निर्झरेण सहितः सनिर्झरः सनिर्झरः उद्गारो यस्य स सनिर्झरोद्गारः। अद्रीणां राजा अद्रिराजः।

भावार्थः—स्कन्धावलम्बितमुक्ताहारः हरिचन्दनचर्चित एष पाण्डुदेशाधिपतिः अस्ति, यो हिमालय इव शोभते। हिमालयो हि प्रातःकालीनातपेनोपरक्तोऽस्ति। यत्र च निरन्तरं वारिप्रवाहः प्रस्रवत इति भावः।

सञ्जीविनी—अंसयोरर्पिता लम्बन्त इति लम्बा हारा यस्य सः। हरिचन्देन गोशीर्षाख्येन चन्दनेन। 'तैलपर्णिकगोशीर्षे हरिचन्दनमस्त्रियाम्' इत्यमरः। क्लृप्ताङ्गरागः सिद्धानुलेपनोऽयं पाण्डूनां जनपदानां राजा पाण्ड्यः। पाण्डोर्जनपदशब्दात्क्षत्रियाड्ड्यण्वक्तव्य इति ड्यण्प्रत्ययः तस्य राजन्यपत्यवदिति वचनात्। बालातपेन रक्ता अरुणाः सानवो यस्य सः सनिर्झरोद्गारःप्रवाहस्यन्दनसहितः। 'वारिप्रवाहो निर्झरोः झरः' इत्यमरः। अद्रिराज इवाभाति।

भाषार्थ—ये पाण्ड्य देश के राजा हैं, इनके कंधों पर बड़ा हार लटक रहा है और शरीर में हरिचन्दन का लेप लगा हुआ है। इस वेश में ये उस हिमालय के समान सुन्दर लग रहे हैं, जिसका शिखर प्रातःकाल की धूप से लाल हो गया हो और जिसपर से पानी के अनेक झरने गिर रहे हों॥ ६०॥

विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेर्निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः।
प्रीत्याश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः॥ ६१॥

अन्वयः—विन्ध्यस्य महाद्रेः संस्तम्भयिता निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः अगस्त्यः अश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः यस्य प्रीत्या सौस्नातिकः भवति।

व्याख्या—विन्ध्यस्य=विन्ध्यनाम्नः। महाद्रेः=महाचलस्य, विन्ध्याचलस्य सूर्यमार्गमवरोद्धुं प्रवृत्तस्य संस्तम्भयिता=निरोद्धा, नियन्ता। निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः=अशेषाचामितत्यक्तसमुद्रः। अगस्त्यः=कुम्भयोनिः। अश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः=अश्वमेधयज्ञान्तस्नातस्य। यस्य=पाण्ड्यस्य। प्रीत्या=प्रेम्णा। सौस्नातिकः=सुस्नातं भवतेति प्रष्टा। भवति=जायते।

समासः—सिन्धूनां राजा सिन्धुराजः। पूर्वं निःशेषं पीतः पश्चात् उज्झितः सिन्धुराजो येन स निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः। महांश्चासौ अद्रिः महाद्रिः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य महाद्रेः। अवभृथे आर्द्रा मूर्तिः यस्य स अवभृथार्द्रमूर्तिः, तस्य अवभृथार्द्रमूर्तेः। सुस्नातं पृच्छतीति सौस्नातिकः। संस्तम्भयतीति संस्तम्भयिता।

भावार्थः—ऊर्ध्वं वर्द्धमानस्य विन्ध्यनामकस्य पर्वतस्यावरोधकः पूर्वं समस्तं समुद्रं पीत्वा पश्चादुज्झयिता महर्षिः अगस्त्यः अश्वमेधयज्ञान्तस्नानेनार्द्रवस्त्रस्यास्य पाण्डुदेशनरेशस्य प्रेम्णा किं भवता सुस्नातमिति कुशलं पृच्छतीति भावः।

सञ्जीविनी—विन्ध्यस्य नाम्नो महाद्रेः तपनमार्गनिरोधाय वर्धमानस्येति शेषः। संस्तम्भयिता निवारयिता निःशेषं पीत उज्झितः पुनस्त्यक्तः सिन्धुराजः समुद्रो येन सोऽगस्त्योऽश्वमेधस्यावभृथे दीक्षान्ते कर्मणि। 'दीक्षान्तोऽवभृथो यज्ञे' इत्यमरः। आर्द्रमूर्तेः स्नातस्येत्यर्थः यस्य पाण्ड्यस्य प्रीत्या स्नेहेन न तु दाक्षिण्येन सुस्नातं पृच्छतीति सौस्नातिकः भवति। 'पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः' इत्युपसंख्यानाट्ठक्।

भाषार्थ—जब ये अश्वमेध यज्ञ के अन्त में अवभृथ स्नान कर लेते हैं, तब वे अगस्त्य ऋषि आकर इनसे कुशल पूछते हैं, जिन अगस्त्य मुनि ने महापर्वत विन्ध्याचल को ऊपर बढ़ने से रोक दिया था और समस्त समुद्र को पीकर पुनः उगल दिया था ॥ ६१ ॥

अस्त्रं हरादाप्तवता दुरापं येनेन्द्रलोकावजयाय दृप्तः।
पुरा जनस्थानविमर्दशङ्की सन्धाय लङ्काधिपतिः प्रतस्थे ॥ ६२ ॥

अन्वयः—पुरा जनस्थानविमर्दशङ्की दृप्तः लंकाधिपतिः दुरापं अस्त्रं हरात् आप्तवता येन सन्धाय इन्द्रलोकावजयाय प्रतस्थे।

व्याख्या—पुरा=पूर्वस्मिन् काले। जनस्थानविमर्दशङ्की=दण्डकारण्यविनाशशङ्की। दृप्तः=उद्धतः। लङ्काधिपतिः=लङ्केश्वरो रावणः। दुरापं=दुर्लभम्। अस्त्रं=ब्रह्मशिरोनामकमायुधम्। हरात्=भगवतः शिवात्। आप्तवता=प्राप्तवता। येन=पाण्ड्येन सह। सन्धाय=सन्धि कृत्वा। इन्द्रलोकावजयाय=स्वर्गलोकं विजेतुम्। प्रतस्थे=प्रययौ।

समासः—जनस्थानस्य विमर्दं शङ्कते इति जनस्थानविमर्दशङ्की। लङ्काया अधिपतिः लङ्काधिपतिः। दुःखेन आप्यते यत्तत् दुरापम्। इन्द्रस्य लोकः इन्द्रलोकः, इन्द्रलोकस्य अवजयः इतीन्द्रलोकावजयः, तस्मै इन्द्रलोकावजयाय।

भावार्थः—पूर्वमिन्द्रलोकविजयाभिगमनसमये रावणः खरदूषणनिवासस्थानस्य दण्डकारण्यस्य विनाशशङ्कया भगवतः शिवात् प्राप्तविश्वमोहननामकदुर्लभास्त्रेणानेन पाण्ड्यनरेशेन सह सन्धि कृत्वैव स्वर्गलोकविजयाय प्रस्थान-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मकार्षीत्। अर्थादस्मात् पाण्डयनरेशात् रावणोऽपि बिभेति तद्धृदये इयमाशङ्कासीद् यदयं पाण्डयाधिपतिः, शिवाद् दुर्लभमस्त्रमवाप्तवानस्ति। मयि प्रस्थिते कदाचिद्दण्डकारण्येऽयमाक्रमणं कुर्यात्। अयमिन्द्रविजयिनो रावणस्यापि विजेतेति भावः।

सञ्जीविनी—पुरा पूर्वं जनस्थानस्य खरालयस्य विमर्दशङ्की दृप्त उद्धतो लङ्काधिपती रावणो दुरापं दुर्लभमस्त्रं ब्रह्मशिरोनामकं हरादाप्तवता येन पाण्डयेन संधाय इन्द्रलोकावजयायेन्द्रलोकं जेतुं प्रतस्थे। इन्द्रविजयिनो रावणस्यापि विजेतेत्यर्थः।

भाषार्थ—जब महाप्रतापी रावण इन्द्रको जीतने के लिए चला तब उसने इनसे इस डरसे सन्धि कर लिया कि कहीं ऐसा न हो कि ये मेरे पीछे खर-दूषण के निवासस्थान दण्डकारण्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दें, क्योंकि इन्होंने भी शिवजी से ब्रह्मशिरा नाम का एक दुर्लभ अस्त्र प्राप्त किया है॥ ६२॥

अनेन पाणौ विधिवद्गृहीते महाकुलीनेन महीव गुर्वी।
रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः॥ ६३॥

अन्वयः—महाकुलीनेन अनेन पाणौ विधिवद् गृहीते सति त्वं गुर्वी मही इव रत्नानुविद्धार्णवमेखलायाः दक्षिणस्याः दिशः सपत्नी भव।

व्याख्या—महाकुलीनेन=आर्यवंशोत्पन्नेन। अनेन=पाण्डयनरेशेन। पाणौ=त्वदीयकरे। विधिवत्=यथाशास्त्रम्। गृहीते=स्वीकृते विवाहे कृते सति। गुर्वी=महती। मही=पृथिवी। इव=यथा। रत्नानुविद्धार्णवमेखलायाः=मण्यादिव्याप्तसागरकाञ्च्याः दक्षिणस्याः=याम्याः दिशः=काष्ठायाः सपत्नी=द्वितीया भार्या। भव=भूयास्त्वमिति।

समासः—महत् कुलं यस्य स महाकुलः, महाकुले जातः महाकुलीनः तेन महाकुलीनेन। विधिना तुल्यं विधिवत्। रत्नैरनुविद्धः रत्नानुविद्धः। रत्नानुविद्धः अर्णव एव मेखला यस्याः सा रत्नानुविद्धार्णवमेखला तस्याः रत्नानुविद्धार्णवमेखलायाः। समानः पतिः यस्याः सा सपत्नी।

भावार्थः—अनेनोच्चकुलोत्पन्नेन पाण्डयदेशाधिपतिना सह यथावद् विवाहे सम्पन्ने त्वं तस्या एव दक्षिणदिशः सपत्नी भविष्यसि, यस्याः रत्नव्याप्तसमुद्र एव काञ्चिरस्ति। अर्थात् त्वमेव दक्षिणदिशः सपत्नी भविष्यसि न तव कापि सपत्नी भविष्यतीति भावः।

सञ्जीविनी—महाकुलीनेन महाकुले जातेन। "महाकुलादञ्खञौ" इति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ख्ञ्प्रत्ययः। अनेन पाण्ड्येन त्वदीये पाणौ विधिवद्यथाशास्त्रं गृहीते सति गुर्वी गुरुः। "वोतो गुणवचनात्" इति ङीष्। महीव रत्नैरनुविद्धो व्याप्तोऽर्णव एव मेखला यस्यास्तस्याः इदं विशेषणं मह्यामिन्दुमत्यां च योज्यम्। दक्षिणस्याः दिशः सपत्नी भव। अनेन सपत्न्यन्तराभावो ध्वन्यते।

भाषार्थ—उच्चकुल में उत्पन्न इस राजा के साथ विधिपूर्वक विवाह कर लेने पर तुम पृथ्वी के समान उस दक्षिण दिशा की सौत बन जाओगी, जिसकी करधनी रत्नों से परिपूर्ण समुद्र ही हैं॥ ६३॥

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु॥ ६४॥

अन्वयः—ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगासु एलालतालिंगितचन्दनासु तमालपत्रास्तरणासु मलयस्थलीषु शश्वत् रन्तुं त्वं प्रसीद।

व्याख्या—ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगासु=ताम्बूललतापरिवेष्टितक्रमुकवृक्षासु। एलालतालिङ्गितचन्दनासु=एलावल्लीवेष्टितमलयासु। तमालपत्रास्तरणासु=तापिच्छपर्णप्रच्छदपटासु। मलयस्थलीषु=मलयपर्वतभूमिषु। शश्वत्=निरन्तरं। रन्तुं=क्रीडितुम्। प्रसीद=प्रसन्ना भव।

समासः—ताम्बूलस्य वल्ल्यः ताम्बूलवल्ल्यः ताभिः परिणद्धाः पूगाः यासु ताः ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगाः तासु ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगासु। एलानां लताः एलालताः एलालताभिः आलिङ्गिताः चन्दनाः यासु ता एलालतालिङ्गितचन्दनाः तासु एलालतालिङ्गितचन्दनासु। तमालस्य पत्राणि तमालपत्राणि तमालपत्राणि एव आस्तरणानि यासु ताः तमालपत्रास्तरणाः तासु तमालपत्रास्तरणासु। मलयस्य स्थल्यः मलयस्थल्यः तासु मलयस्थलीषु।

भावार्थः—इन्दुमति! यदि मलयस्थलीषु सर्वदा विहर्तुमिच्छसि चेत्तर्हि अनेन पाण्ड्येन विधिवद् विवाहं कुरुष्व। यत्र मलयभूमिषु ताम्बूललताभिः परिवेष्टिता पूगवृक्षाः सन्ति, एलालताभिः चन्दनवृक्षा व्याप्ता विद्यन्ते तथा तालपत्राणि आस्तृतानि वर्तन्ते, इति भावः।

सञ्जीविनी—ताम्बूलवल्लीभिर्नागवल्लीभिः परिणद्धाः परिरब्धाः पूगाः क्रमुका यासु तासु। 'ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागवल्ल्यपि' इति, 'घोण्टा तु पूगः क्रमुकः' इति चाऽमरः। एलालताभिरालिङ्गिताश्चन्दना मलयजा यासु तासु। 'गन्धसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। तमालस्य तापिच्छस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पत्राण्येवास्तरणानि यासु तासु। 'कालस्कन्धस्तमालः स्यात्तापिच्छोऽपि' इत्यमरः। मलयस्थलीषु शश्वन्मुहुः सदा वा रन्तुं प्रसीदानुकूला भव।

भाषार्थ—यदि तुम मलय पर्वत की उन घाटियों में सर्वदा विहार करना चाहती हो तो, इनसे विवाह कर लो जहाँपर नागवल्ली लताओं से परिवेष्ठित सुपारी के वृक्ष हैं एवं इलायची की लता से लिपटे हुए चन्दन के वृक्ष हैं और तमाल के पत्ते ही बिछौने हैं ॥ ६४ ॥

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु ॥ ६५ ॥

अन्वयः—असौ नृपः इन्दीवरश्यामतनुः त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः असि तडित्तोयदयोः इव वां योगः अन्योऽन्यशोभापरिवृद्धये अस्तु।

व्याख्या—असौ=पुरोवर्ती। नृपः=पाण्ड्यनरेशः। इन्दीवरश्यामतनुः= नीलाम्बुजश्यामशरीरः वर्तते। त्वं=इन्दुमती। रोचनागौरशरीरयष्टिः= गोरोचनधवलदेहयष्टिः असि। तडित्तोयदयोः=विद्युन्मेघयोः। इव=यथा। वां=युवयोः। योगः=सम्बन्धः समागमः। अन्योऽन्यशोभापरिवृद्धये=परस्परकान्तिप्रवर्द्धनाय। अस्तु=भवतु।

समासः—इन्द्रीवरमिव श्यामा तनुर्यस्य सः इन्दीवरश्यामतनुः। शरीरमेव यष्टिः शरीरयष्टिः रोचना इव गौरी शरीरयष्टिः यस्याः सा रोचनागौरशरीरयष्टिः। तोयं ददातीति तोयदः तडिच्च तोयदश्च तडित्तोयदौ तयोः तडित्तोयदयोः। अन्योन्यस्य शोभा अन्योन्यशोभा अन्योन्यशोभायाः परिवृद्धिः अन्योन्यशोभापरिवृद्धिः तस्यै अन्योऽन्यशोभापरिवृद्धये।

भावार्थः—अयं पुरोवर्ती पाण्ड्यनरेशः नीलकमलसमानश्यामशरीरोऽस्ति त्वञ्च गोरोचनावद्गौरकाया असि। अतो विद्युन्मेघवत् परस्परशोभाभिवृद्धये युवयोः समागमो भवतु। अर्थात् घनश्यामवदयं श्यामः, विद्युदिव च त्वं गौरी। अतः युवयोर्द्वयोः सम्बन्धः स्थायी शोभावर्द्धकश्च स्यादिति भावः।

सञ्जीविनी—असौ नृपः इन्दीवरश्यामतनुः त्वं रोचना गोरोचनेव गौरी शरीरयष्टिर्यस्याः सा ततस्तडित्तोयदयोर्विद्युन्मेघयोरिव वां युवयोर्योगः समागमोऽन्योन्यशोभायाः परिवृद्धयेऽस्तु।

भाषार्थ—ये राजा नीलकमल के समान श्यामवर्ण हैं, तुम गोरोचन जैसी गोरी हो। अतः यदि इनके साथ तुम्हारा विवाह हो जायेगा, तो तुम ऐसी सुन्दरी लगोगी जैसे बादल के साथ बिजली सुन्दर लगती है ॥ ६५ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयो लेभेऽन्तरं चेतसि नोपदेशः ।
दिवाकरादर्शनबद्धकोशे नक्षत्रनाथांशुरिवारविन्दे ।। ६६ ।।

अन्वयः—विदर्भाधिपतेः स्वसुः चेतसि तदीय उपदेशः दिवाकरादर्शनबद्धकोशे अरविन्दे नक्षत्रनाथांशुः इव अन्तरं न लेभे ।

व्याख्या—विदर्भाधिपतेः=भोजराजस्य । स्वसुः=भगिन्या इन्दुमत्याः । चेतसि=चित्ते । तदीयः उपदेशः=सुनन्दायाः कथनम् । दिवाकरादर्शनबद्धकोशे=सूर्याप्रकाशाविकशितकोशे । अरविन्दे=कमले । नक्षत्रनाथांशुः=चन्द्रकिरणः । इव=यथा । अन्तरम्=अवकाशम्, स्थानम् न लेभे=न हि प्राप्तवान् ।

समासः—विदर्भस्याधिपतिः विदर्भाधिपतिः तस्य विदर्भाधिपतेः । तस्या अयं तदीयः । न दर्शनम् अदर्शनम् दिवाकरस्यादर्शनमिति दिवाकरादर्शनं दिवाकरादर्शनेन बद्धः कोशो यस्य तत् दिवाकरादर्शनबद्धकोशः तस्मिन् दिवाकरादर्शनबद्धकोशे । नक्षत्राणां नाथः नक्षत्रनाथः तस्य अंशुः नक्षत्रनाथांशुः ।

भावार्थः—विदर्भराजस्य भोजस्य भगिन्या इन्दुमत्याः मनसि सुनन्दायाः स उपदेशः तथैव न स्थानमवाप्तवान् यथा सूर्यस्याप्रकाशेन बद्धकोशे कमले सुधांशोश्चन्द्रमसः किरणः न स्थानं लभते, इति भावः ।

सञ्जीविनी—विदर्भाधिपतेर्भोजस्य स्वसुरिन्दुमत्याश्चेतसि तदीयः सुनन्दासम्बन्ध्युपदेशो वाक्यम् दिवाकरस्य दर्शनेन बद्धकोशे मुकुलितेऽरविन्दे नक्षत्रनाथांशुश्चन्द्रकिरण इव अन्तरमवकाशं न लेभे ।

भाषार्थ—जिस प्रकार सूर्य के न देखने से बन्द होने वाले कमल में चंद्रमा की किरणों को स्थान नहीं मिलता है उसी प्रकार सुनन्दा का उपदेश विदर्भनरेश भोज की बहन इन्दुमती के हृदय में स्थान नहीं प्राप्त कर सका ।।६६।।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।। ६७ ।।

अन्वयः—पतिम्वरा सा रात्रौ सञ्चारिणी दीपशिखा इव यं यं व्यतीयाय सः सः भूमिपालः नरेन्द्रमार्गाट्टः इव विवर्णभावं प्रपेदे ।

व्याख्या—पतिंवरा=स्वयंवरा । सा=इन्दुमती । रात्रौ=निशायाम् । संचारिणी=संचरणशीला । दीपशिखा=अर्चिःज्वाला । इव=यथा । यं यं=भूमिपालम् । व्यतीयाय=अतिक्रम्य गता । स सः=भूमिपालः । नरेन्द्रमार्गाट्टः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

=राजपथेऽट्टाख्यो गृहविशेषः। इव=यथा। विवर्णभावं=प्रभाहीनत्वं, मालिन्यम् अन्धकारावृतत्वम्, प्रपेदे=प्राप।

समासः—पतिं वृणोतीति पतिंवरा। संचरितुं शीलं यस्याः सा संचारिणी। दीपस्य शिखा दीपशिखा। नराणामिन्द्रः नरेन्द्रः नरेन्द्रस्य मार्गः नरेन्द्रमार्गः तस्मिन् नरेन्द्रमार्गे अट्टः नरेन्द्रमार्गाट्टः। भूमिं पालयतीति भूमिपालः। विवर्णस्य भावः विवर्णभावः तं विवर्णभावम्।

भावार्थः—निशासञ्चारिणी दीपशिखाज्योतिः राजमार्गे वर्तमानं यद्-यद् भवनं विहायाग्रे प्रसरति तत्तद् भवनं यथाऽन्धकाराच्छन्नं जायते तथैव स्वयम्वरा इन्दुमती यं यं राजानं परिहायाऽग्रे गतवती स स राजा प्रभाहीनो जातः अर्थात् निराशीभूतस्य तस्य राज्ञो मुखमालिन्यमजायतेति भावः।

सञ्जीविनी—पतिंवरा सेन्दुमती रात्रौ सञ्चारिणी दीपशिखेव यं यं भूमिपालं व्यतीत्याग्रे गता स स भूमिपालः। स सर्व इत्यर्थः। "नित्यवीप्सयोः" इति वीप्सायां द्विर्वचनम्। नरेन्द्रमार्गे राजपथेऽट्टाख्यो गृहभेद इव। 'स्यादट्टः क्षौममस्त्रियाम्' विवर्णभावं विच्छायत्वम्। अट्टस्तु तमोवृतत्वं प्रपेदे।

भाषार्थ—जिस तरह रात में आगे बढ़नेवाली दीपशिखा राजमार्ग में बने हुए जिस महल को पारकर जब आगे बढ़ जाती है तब वह महल अँधेरे से व्याप्त हो जाने के कारण शोभारहित हो जाता है। उसी तरह पति को स्वयं वरण करने वाली वह इन्दुमती जिस-जिस राजा को छोड़कर आगे बढ़ती जाती थी वह-वह राजा उदासीन होता जाता था॥ ६७॥

तस्यां रघोः सूनुरुपस्थितायां वृणीत मां नेति समाकुलोऽभूत्।
वामेतरः संशयमस्य बाहुः केयूरबन्धोच्छ्वसितैर्नुनोद॥ ६८॥

अन्वयः—तस्यां उपस्थितायां सत्यां रघोः सूनुः मां वृणीत न वा इति समाकुलः अभूत्। अस्य वामेतरः बाहुः केयूरबन्धोच्छ्वसितैः संशयं नुनोद।

व्याख्या—तस्याम्=इन्दुमत्याम्। उपस्थितायां=समीपमागतायाम्। रघोः=राज्ञो दिलीपस्य। सूनुः=पुत्रः अजः। मां=अजम्। वृणीत=वरयेत् न वा, इति=इत्थम्। समाकुलः=संशयाक्रान्तः। अभूत्=जातः। अथ संशयानन्तरम्। अस्य=अजस्य। वामेतरः=दक्षिणः। बाहुः=भुजः। केयूरबन्धोच्छ्वसितैः=अङ्गदबन्धनस्थानस्फुरणैः। संशयं=सन्देहं नुनोद=निवारयामास।

समासः—सम्यगाकुलः समाकुलः। वामात् इतरः वामेतरः। केयूरस्य बन्धः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केयूरबन्धः केयूरबन्धस्य उच्छ्वसितानि केयूरबन्धोच्छ्वसितानि तैः केयूरबन्धोच्छ्वसितैः ।

भावार्थः—यदा इन्दुमती रघुपुत्रस्य अजस्य समीपे आगता तदा स मां वरिष्यति न वेति संशयापन्नो जातः, किन्तु तत्काले तस्य दक्षिणेन हस्तेन भुजबन्धस्य स्थाने स्फुरणात् तस्य सन्देहो दूरीकृतः ।

सञ्जीविनी—तस्यामिन्दुमत्यामुपस्थितायामासन्नायां सत्यां रघोः सूनुरजो मां वृणीत न वेति समाकुलः संशयितोऽभूत् । अथास्याजस्य वामेतरो वामादितरो दक्षिणो बाहुः । केयूरं बध्यतेऽत्रेति केयूरबन्धोऽङ्गदस्थानं तस्योच्छ्वसितैः स्फुरणैः संशयं नुनोद ।

भाषार्थ—जब वह इन्दुमती रघु के पुत्र अज के पास आकर खड़ी हो गई तब उनका मन इसलिये व्याकुल हो उठा कि यह मुझे वरण करेगी या नहीं ? किन्तु उसी समय दक्षिण भुजा ने बिजायठ बाँधने की जगह को फड़का कर उनके सन्देह को दूर कर दिया । क्योंकि शकुनशास्त्र के अनुसार दाहिनी भुजा फड़कने से स्त्री की प्राप्ति होती है । अतः अब अज को इन्दुमती की प्राप्ति में सन्देह नहीं रहा ॥ ६८ ॥

तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं व्यावर्तताऽन्योपगमात्कुमारी ।
न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली ॥ ६९ ॥

अन्वयः—कुमारी सर्वावयवानवद्यं तं प्राप्य अन्योपगमात् व्यावर्तत हि षट्पदाली प्रफुल्लं सहकारवृक्षम् एत्य वृक्षान्तरं न हि काङ्क्षति ।

व्याख्या—कुमारी = कन्या इन्दुमती । सर्वावयवानवद्यं = सम्पूर्णाङ्गदोषरहितम् । तं = अजम् । प्राप्य = अवाप्य । अन्योपगमात् = अपरसमीपगमनात् । व्यावर्तत = निवृत्ता । हि = यतः । षट्पदभ्रमरावलिः । प्रफुल्लं = विकसितम् । सहकारं = आम्रवृक्षम् । एत्य = प्राप्य । वृक्षान्तरं = अन्यं पादपम् । न = नैव । काङ्क्षति = अभिलषति ।

समासः—न अवद्यः अनवद्यः, सर्वे च ते अवयवा सर्वावयवा सर्वावयवेषु अनवद्यः सर्वावयवानवद्यः तं सर्वावयवानवद्यम् । अन्यस्य उपगमः अन्योपगमः तस्मात् अन्योपगमात् । अन्यः वृक्षः वृक्षान्तरं तत् वृक्षान्तरम् । षट् पदानि येषां ते षट्पदाः षट्पदानामाली षट्पदाली । प्रफुल्लतीति प्रफुल्लः तं प्रफुल्लम् ।

भावार्थः—यथा भ्रमराली प्रफुल्लमाम्रवृक्षं परित्यज्य वृक्षान्तरं न गच्छति तथैव राजकुमारी इन्दुमती सर्वाङ्गसुन्दरं तमजं प्राप्य राजान्तरगमनात् निवृत्ता ।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—कुमारी सर्वेष्ववयवेष्वनवद्यमदोषं तमजं प्राप्य। अन्योपगमाद्राजान्तरोपगमाद्व्यावर्तत निवृत्ता। तथा हि षट्पदाली भृङ्गावलिः। प्रफुल्लतीति प्रफुल्लं विकसितम्। पुष्पितमित्यर्थः। प्रपूर्वात्फुल्लतेः पचाद्यच्। फलतेस्तु प्रफुल्लमिति पठितव्यम्। "अनुपसर्गात् फुल्लक्षीवकृशोल्लाघाः" इति निषेधात्। इत्युभयथापि न कदाचिदनुपपत्तिरित्युक्तं प्राक्। सहकारं चूतविशेषमेत्य 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः। वृक्षान्तरं न काङ्क्षति। न हि सर्वोत्कृष्टवस्तुलाभेऽपि वस्त्वन्तरस्याभिलाषः स्यादित्यर्थः।

भाषार्थ—जिस प्रकार पुष्पित आम के वृक्ष को पाकर भ्रमर की पंक्ति दूसरे वृक्ष की चाह नहीं करती उसी प्रकार सर्वांग सुन्दर उस अज को पाकर वह इन्दुमती दूसरे राजा के पास जाने से रुक गई॥ ६९॥

तस्मिन्समावेशितचित्तवृत्तिमिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य।
प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा सविस्तरं वाक्यमिदं सुनन्दा॥ ७०॥

अन्वयः—अनुक्रमज्ञा सुनन्दा इन्दुप्रभां इन्दुमतीं तस्मिन् समावेशितचित्तवृत्तिं अवेक्ष्य सविस्तरं इदं वाक्यं वक्तुं प्रचक्रमे।

व्याख्या—तस्मिन् = अजे। समावेशितचित्तवृत्तिम् = संक्रामितमनोव्यापाराम्। इन्दुप्रभां = चन्द्रकान्तिम्। इन्दुमतीं = भोजानुजाम्। अवेक्ष्य = अवलोक्य। अनुक्रमज्ञा = पौर्वापर्याभिज्ञा। सुनन्दा = दौवारिकी। इदं = वक्ष्यमाणम्। सविस्तरं = सप्रपञ्चम् विस्तारपूर्वकम्। वाक्यं = वचनम्। वक्तुं = कथयितुम्। प्रचक्रमे = आरेभे।

समासः—सम्यगावेशिता चित्तस्य वृत्तिः यया सा समावेशितचित्तवृत्तिः तां समावेशितचित्तवृत्तिम्। इन्दोः प्रभेव प्रभा यस्याः सा इन्दुप्रभा ताम् इन्दुप्रभाम्। अनुक्रमं जानातीति अनुक्रमज्ञा। विस्तरेण सहितं यथा स्यात्तथा सविस्तरम्।

भावार्थः—तस्मिन्नजेऽनुरक्तां चन्द्रवत्सुन्दरीं तां भोजानुजामिन्दुमतीमालोक्य राजवंशक्रमाभिज्ञा दौवारिकी सुनन्दा वक्ष्यमाणं वचः अवोचदिति भावः।

सञ्जीविनी—तस्मिन्नजे समावेशिता संक्रामिता चित्तवृत्तिर्यया ताम्। इन्दोः प्रभेव प्रभा यस्यास्ताम्। आह्लादकत्वादिन्दुसाम्यम्। इन्दुमतीमवेक्ष्यानुक्रमज्ञा वाक्यपौर्वापर्याभिज्ञा सुनन्देदं वक्ष्यमाणं सविस्तरं सप्रपञ्चम्। "प्रथमे वावशब्दे" इति घञो निषेधात् "ऋदोरप्" इत्यप्प्रत्ययः। 'विस्तारो विग्रहो व्यासः स च शब्दस्य विस्तरः' इत्यमरः। वाक्यं वक्तुं प्रचक्रमे।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषार्थ—बोलने का क्रम जाननेवाली सुनन्दा चन्द्रमा की कान्ति के समान सुन्दर कान्तिवाली इन्दुमती को अज में अनुरक्त जानकर विस्तार पूर्वक बात बनाती हुई बोली ॥ ७० ॥

इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत् ।
काकुत्स्थशब्दं यत उन्नतेच्छाः श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोसलेन्द्राः ॥ ७१ ॥

अन्वयः—इक्ष्वाकुवंश्यः नृपाणां ककुदम् आहितलक्षणः ककुत्स्थः इति राजा अभूत् यतः उन्नतेच्छाः उत्तरकोसलेन्द्राः श्लाघ्यं काकुत्स्थशब्दं दधति ।

व्याख्या—इक्ष्वाकुवंश्यः = इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नः । नृपाणां = भूपालानाम् । ककुदं = श्रेष्ठः । आहितलक्षणः = प्रख्यातगुणः । ककुत्स्थः = ककुत्स्थ इति प्रसिद्धः । कश्चित् = कश्चन राजा । अभूत् = अजायत । यतः = यस्मात् ककुत्स्थात् आरभ्य उन्नतेच्छाः = महाशयाः । उत्तरकोसलेन्द्राः = उत्तरदिग्भव-देशराजानो दिलीपादयः । श्लाघ्यं = प्रशंसनीयम् । काकुत्स्थशब्दं = काकुत्स्थ-संज्ञाम् । दधति = बिभ्रति ।

समासः—इक्ष्वाकोः वंशः इक्ष्वाकुवंशः इक्ष्वाकुवंशे भवः इक्ष्वाकुवंश्यः । ककुदि तिष्ठतीति ककुत्स्थः । आहितं लक्षणं यस्य स आहितलक्षणः । ककुत्स्थ-स्यापत्यं पुमान् काकुत्स्थः काकुत्स्थ इति शब्दः काकुत्स्थशब्दः तं काकुत्स्थ-शब्दम् । उन्नता इच्छा येषां ते उन्नतेच्छाः । उत्तरश्चासौ कोसलः उत्तरकोसलः उत्तरकोसलस्य इन्द्रा उत्तरकोसलेन्द्राः ।

भावार्थः—मनुपुत्रस्येक्ष्वाकोः वंशे उत्पन्नो राजश्रेष्ठः प्रख्यातगुणशाली ककुत्स्थनामक एको राजा बभूव । तत आरभ्योत्तरकोसलनरेशा दिलीपादयः प्रशंसनीयं काकुत्स्थसंज्ञां धारयन्ति ।

पूर्वस्मिन् काले इक्ष्वाकुवंशीयो राजा पुरञ्जयः देवासुरसंग्रामार्थं देवैरभ्य-र्थितः प्रोवाच यद् यदीन्द्रो वृषभो भविष्यति तर्हि तस्य स्कन्धे उपविश्याहं योद्धुं शक्नोमि, नान्यथा । तदनुसारमिन्द्रो वृषभरूपं धृतवान् । तत्र विष्णुना शक्तिविशेषस्यावेशः कृतः । तदनु पुरञ्जयः वृषभरूपधारिणः इन्द्रस्य स्कन्धे ककुत्पार्श्वे उपविश्य देवानां पक्षतः सङ्ग्रामे उपस्थाय स्वकीयैस्तीक्ष्णबाणैः असुरान् प्राहरत् । तेन आहता असुराः पलायिताः देवाश्च विजयिनोऽभवन् । तत्कालादेव पुरञ्जयस्यापरं नाम 'ककुत्स्थ' इत्यभवत् । इति पौराणिकीकथाऽ-त्रानुसन्धेया । एतदेवाग्रिमेण श्लोकेन स्पष्टयति कविवरः कालिदासः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य वंश्यो वंशे भवः नृपाणां ककुदं श्रेष्ठः 'ककुच्च ककुदं श्रेष्ठे वृषांसे राजलक्ष्मणि' इति विश्वः। आहितलक्षणः प्रख्यातगुणः। 'गुणैः प्रतीते तु कृतलक्षणाहितलक्षणौ' इत्यमरः। ककुदि वृषांसे तिष्ठतीति ककुत्स्थ इति प्रसिद्धः कश्चिद्राजाऽभूत्। यतः ककुत्स्थादारभ्योन्नतेच्छा महाशयाः। 'महेच्छस्तु महाशयः' इत्यमरः। उत्तरकोसलेन्द्रा राजानो दिलीपादयः श्लाघ्यं प्रशस्तं ककुत्स्थस्यापत्यं पुमान्काकुत्स्थ इति शब्दं संज्ञां दधति बिभ्रति। तन्नामसंस्पर्शोऽपि वंशस्य कीर्तिकरः इति भावः। पुरा किल पुरंजयो नाम साक्षाद्भगवतो विष्णोरंशावतारः कश्चिदैक्ष्वाको राजा देवैः सह समयबन्धेन देवासुरयुद्धे महोक्षरूपधारिणो महेन्द्रस्य ककुदि स्थित्वा पिनाकिलीलया निखिलमसुरकुलं निहत्य ककुत्स्थसंज्ञां लेभे इति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया। वक्ष्यते चायमेवार्थं उत्तरश्लोके।

भाषार्थ—इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न राजाओं में श्रेष्ठ प्रख्यातगुणशाली एक ककुत्स्थ नाम के राजा हो गये हैं, जिनके कारण उत्तरकोशल के सभी राजा प्रसिद्धि की इच्छा से अपने को काकुत्स्थ कहते आये हैं॥ ७१॥

महेन्द्रमास्थाय महोक्षरूपं यः संयति प्राप्तपिनाकिलीलः।
चकार बाणैरसुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः॥ ७२॥

अन्वयः—यः प्राप्तपिनाकिलीलः 'सन्' महोक्षरूपं महेन्द्रम् आस्थाय संयति बाणैः असुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः चकार।

व्याख्या—यः=ककुत्स्थः। संयति=देवासुरसंग्रामे, महोक्षरूपम्=वृषभरूपम्। महेन्द्रम्=मघवानम्। आस्थाय=आरुह्य। प्राप्तपिनाकिलीलः=अवाप्तशिवक्रीडः सन् बाणैः=शरैः। असुराङ्गनानां=दैत्यस्त्रीणाम्। गण्डस्थलीः=कपोलस्थलीः। प्रोषितपत्रलेखाः=निवृत्तचित्रविशेषरचनाः। चकार =कृतवान्। असुराणां वधात् ताः स्त्रियः प्रसाधनं तत्यजुरित्यर्थः।

समासः—महांश्चासौ उक्षा महोक्षः महोक्षस्य रूपमिव रूपं यस्य स महोक्षरूपः तं महोक्षरूपम्। पिनाकोऽस्यास्तीति पिनाकी, प्राप्ताः पिनाकिनः लीला येन स प्राप्तपिनाकिलीलः। असुराणाम् अङ्गना असुराङ्गनाः तासाम् असुराङ्गनानाम्। गण्डयोः स्थल्यः गण्डस्थल्यः ताः गण्डस्थलीः। पत्राणां लेखाः पत्रलेखाः प्रोषिताः पत्रलेखाः, यासु ताः प्रोषितपत्रलेखाः।

भावार्थः—यः ककुत्स्थः देवासुरसंग्रामे वृषभरूपधारिणि इन्द्रे समारुह्य शिववत् प्रतीयमानः स्वकीयैस्तीक्ष्णतरैः बाणैः असुरान् निहत्य तत्स्त्रीणां कपोल-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थलानि शृङ्गारशून्यानि चकार । अर्थात् स्वपतीनामसुराणां वधात् असुर-स्त्रियः वैधव्यात् कपोलस्थलेषु प्रसाधनं न कुर्युः, नहि खलु विधवाः स्त्रियः शृङ्गारं कुर्वन्तीति भावः ।

सञ्जीविनी—यः ककुत्स्थः संयति युद्धे महानुक्षा महोक्षः । "अचतुर०" इत्यादिना निपातः । तस्य रूपमिव रूपं यस्य तं महेन्द्रमास्थायारुह्य अत एव प्राप्ता पिनाकिन ईश्वरस्य लीला येन स तथोक्तः सन्वाणैरसुराङ्गनानां गण्ड-स्थलीः प्रोषितपत्रलेखा निवृत्तपत्ररचनाश्चकार । तद्भर्तृनसुरानवधीदित्यर्थः । नहि विधवाः प्रसाध्यन्त इति भावः ।

भाषार्थ—जिस ककुत्स्थ राजा ने देवासुरसंग्राम में बैल का रूप धारण किये हुए इन्द्र के ऊपर सवार होकर नन्दी पर चढ़े हुए शंकर जी की लीला को प्राप्त होकर अपने वाणों से असुरों का संहार कर दिया, जिससे उन असुरों की स्त्रियाँ विधवा होने के कारण अपने कपोलों पर पत्ररचनारूप शृङ्गार करना सदा के लिए छोड़ दिया, क्योंकि विधवा स्त्रियाँ शृङ्गार नहीं करतीं ।। ७२ ।।

ऐरावतास्फालनविश्लथं यः संघट्टयन्नङ्गदमङ्गदेन ।
उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्यामर्द्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ ।। ७३ ।।

अन्वयः—यः ऐरावताऽऽस्फालनविश्लथं अङ्गदम् अङ्गदेन संघट्टयन् 'सन्' स्वाम् अग्र्यां मूर्तिम् उपेयुषः अपि गोत्रभिदः अर्धासनम् अधितष्ठौ ।

व्याख्या—यः = ककुत्स्थः । ऐरावतास्फालनविश्लथं=इन्द्रगजताडनशिथि-लम् । अङ्गदं=इन्द्रस्य केयूरम् । अङ्गदेन = स्वकीयकेयूरेण । संघट्टयन् = संघर्षयन् । स्वां = नैजीम् । अग्र्यां = श्रेष्ठाम् । मूर्तिं = देहम् । उपेयुषः = प्राप्तस्य अपि । गोत्रभिदः = इन्द्रस्य । अर्द्धासनम् = अर्द्धमासनम्, अधितष्ठौ = अधिष्ठितवान् ।

समासः—ऐरावतस्य स्फालनम् ऐरावतस्फालनम् ऐरावतस्फालनेन विश्ल-थम् ऐरावतस्फालनविश्लथम् तत् ऐरावतस्फालनविश्लथम् । आसनस्यार्द्धमर्द्धा-सनं तत् अर्द्धासनम् । गोत्रान् भिनत्तीति गोत्रभिद् तस्य गोत्रभिदः । अग्रे भवा अग्र्या ताम् अग्र्याम् ।

भावार्थः—देवासुरसंग्रामानन्तरं यः ककुत्स्थः ऐरावतस्फालनेन शिथिली-भूतमिन्द्रस्याङ्गदं स्वाङ्गदेन संघर्षयन् तस्य सिंहासनार्द्धे उपविष्टः, यः इन्द्रो वृषभरूपं परित्यज्य स्वं श्रेष्ठं शरीरं धृतवानासीत् । इत्थं ककुत्स्थः न केवल-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महावृषभरूपधारिणः इन्द्रस्य ककुदि एव समारुरुक्षत्, अपितु तस्यार्द्धासनमपि अधिष्ठितवानिति भावः ।

सञ्जीविनी—यः ककुत्स्थ ऐरावतस्य स्वर्गजस्यास्फालनेन ताडनेन विश्लथं शिथिलमङ्गदमैन्द्रमङ्गदेन स्वकीयेन संघट्टयन् संघर्षयन्स्वामग्र्यां श्रेष्ठां मूर्तिमुपेयुषोऽपि प्राप्तस्यापि गोत्रभिद इन्द्रस्यार्धमासनमर्धासनम् । "अर्धं नपुंसकम्" इति समासः । अधितष्ठावधिष्ठितवान् । "स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य" इत्यभ्यासेन व्यवायेऽपि षत्वम् । न केवलं महोक्षरूपधारिण एव तस्य ककुदमारुक्षत् किंतु निजरूपधारिणोऽपीन्द्रस्यार्धासनमित्यपि शब्दार्थः । अथवा अर्धासनमपीत्यपेरन्वयः ।

भाषार्थ—जो ककुत्स्थ राजा देवासुरसंग्राम समाप्त हो जाने पर जब इन्द्र अपना असली रूप धारण करके ऐरावत पर सवार होकर स्वर्ग में जा सिंहासन पर विराजमान हुए, तब ऐरावत को बार-बार हाँकने से इन्द्रका जो बिजायठ ढीला पड़ गया था उसे अपने बिजायठ से रगड़ता हुआ अपने ही श्रेष्ठ मूर्ति को प्राप्त किये हुए इन्द्र के आसन पर बैठे ।। ७३ ।।

जातः कुले तस्य किलोरुकीर्तिः कुलप्रदीपो नृपतिर्दिलीपः ।
अतिष्ठदेकोनशतक्रतुत्वे शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये यः ।। ७४ ।।

अन्वयः—उरुकीर्तिः कुलप्रदीपः नृपतिः दिलीपः तस्य कुले जातः किल यः शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये एकोनशतक्रतुत्वे अतिष्ठत् ।

व्याख्या—उरुकीर्तिः=महायशाः । कुलप्रदीपः=वंशप्रदीपकः । दिलीपः= दिलीप इति नामा । नृपतिः=नरपतिः, राजा । तस्य=ककुत्स्थस्य । कुले= वंशे । जातः=उत्पन्नः । किल=खलु । यः=दिलीपः । 'शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये=इन्द्रेर्ष्यानिवारणाय । एकोनशतक्रतुत्वे=नवनवतियज्ञत्वे । अतिष्ठत्= तस्थौ ।

समासः—उरुः कीर्तिर्यस्य सः उरुकीर्तिः । कुलस्य प्रदीपः कुलप्रदीपः । शक्रस्य अभ्यसूया शक्राभ्यसूया शक्राभ्यसूयया विनिवृत्तिः शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तिः तस्यै शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये । एकेन ऊनाः शतक्रतवो यस्य सः एकोनशतक्रतुः एकोनशतक्रतोः भावः एकोनशतक्रतुत्वं तस्मिन् एकोनशतक्रतुत्वे ।

भावार्थः—तस्य ककुत्स्थनृपतेः वंशे महायशस्वी कुलप्रदीपः दिलीपो नाम राजा बभूव । स राजा दिलीपः इन्द्रस्य ईर्ष्यां दूरयितुमेव नासामर्थ्यात् केवलं नवनवतियज्ञान् कृत्वैवातिष्ठत् न तु शततमं यज्ञमकार्षीत् । अर्थात् इन्द्रस्य प्रस-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्नतायै एव शततमं यज्ञं न कृतवान्, यतो हि शततमे यज्ञे कृते दिलीपोऽपि शतक्रतुरिन्द्रः स्यादिति भावः ।

सञ्जीविनी—उरुकीर्तिर्महायशाः कुलप्रदीपो वंशप्रदीपको दिलीपो नृपतिस्तस्य ककुत्स्थस्य कुले जातः किल । यो दिलीपः शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये न त्वशक्त्येति भावः । एकेनोनाः शतं क्रतवो यस्य स एकोनशतक्रतुः तस्य भावे तत्त्वेऽतिष्ठत् । इन्द्रप्रीतये शततमं क्रतुमवशेषितवानित्यर्थः ।

भाषार्थ—उस ककुत्स्थ राजा के वंश में महायशस्वी कुलदीपक दिलीप नाम के राजा उत्पन्न हुए थे, जो अशक्ति से नहीं, किन्तु केवल इन्द्र की डाह को दूर करने के लिए निन्यानवे अश्वमेघ यज्ञ करके ही रुक गये, सौवाँ यज्ञ पूर्ण नहीं किये । यदि उनका सौवाँ अश्वमेघ यज्ञ पूर्ण हो जाता तो, वे ही इन्द्र बन जाते, क्योंकि शताश्वमेघी ही इन्द्र होता है । इसलिए ईर्ष्यावश इन्द्रने अन्तिम यज्ञ में बाधा उपस्थित कर दी ॥ ७४ ॥

यस्मिन्महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्धपथे गतानाम् ।
वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम् ॥ ७५ ॥

अन्वयः—यस्मिन् महीं शासति 'सति' विहारार्धपथे निद्रां गतानां वाणिनीनाम् अंशुकानि वातः अपि न अस्रंसयत् आहरणाय हस्तं कः लम्बयेत् ।

व्याख्या—यस्मिन् = दिलीपे । महीं = पृथिवीम् । शासति = पालयति सति विहारार्द्धपथे = क्रीडास्थानार्द्धमार्गे । निद्रां = शयनम् । गतानां = प्राप्तानाम् । वाणिनीनां = मत्ताङ्गनानाम् नर्तकीनाम् । अंशुकानि = वस्त्राणि । वातोऽपि = वायुरपि । न = नहि । अस्रंसयत् = अकम्पयत् । आहरणाय = अपहरणाय । कः = जनः । हस्तं = करम् । लम्बयेत् = प्रसारयेत् । न कोऽपीत्यर्थः ।

समासः—मह्यते इति मही तां महीम् । विहरन्ति जनाः यत्रेति विहारः अर्द्धश्चासौ पन्थाश्चेति अर्द्धपथः विहारस्य अर्द्धपथः विहारार्द्धपथः तस्मिन् विहारार्द्धपथे ।

भावार्थः—महाप्रतापिनो यस्य दिलीपस्य शासनकाले क्रीडास्थलोपवनस्य मार्गमध्ये मद्यं पीत्वा शयालूनां नर्तकीनां वस्त्राणि वायुरपि न कम्पयतिस्म तर्हि तानि अपहर्तुं को नाम पुमान् हस्तं प्रसारयेत् । अर्थात् दिलीपस्य शासनमेतादृशं जागरूकमासीद् यत् प्रभावेण प्रजा निर्भयाः सन्तो विचरन्ति स्मेति भावः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—यस्मिन्दिलीपे महीं शासति सति विहरत्यत्रेति विहारः स्थानम्। तस्यार्धपथे निद्रां गतानां वाणिनीनां मत्ताङ्गनानाम् "वाणिनी नर्तकीमत्ताविदग्धवनितासु च" इति विश्वः। 'वाणिन्यौ नर्तकीमत्ते' इत्यमरश्च। अंशुकानि वस्त्राणि वातोऽपि नास्रंसयन्नाकम्पयत्। आहरणायापहर्तुं को हस्तं लम्बयेत् तस्याज्ञासिद्धत्वादकुतोभयसंचाराः प्रजा इत्यर्थः। अर्धश्चासौ पन्थाश्चेति विग्रहः। समप्रविभागे प्रमाणाभावान्नैकदेशिसमासः।

भाषार्थ—जिस राजा दिलीप के शासन करते समय क्रीडास्थल में मद्य पीकर सोई हुई स्त्रियों के वस्त्रों को वायु भी नहीं छू सकता था तो, फिर दूसरा कौन पुरुष उन्हें छूने के लिए हाथ बढ़ा सकता है॥ ७५॥

पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति महाक्रतोर्विश्वजितः प्रयोक्ता।
चतुर्दिगावर्जितसंभृतां यो मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम्॥ ७६॥

अन्वयः—विश्वजितः महाक्रतोः प्रयोक्ता तस्य पुत्रः रघुः पदं प्रशास्ति यः चतुर्दिगावर्जितसम्भृतां, विभूतिं, मृत्पात्रशेषाम्, अकरोत्।

व्याख्या—विश्वजितः = विश्वजिन्नामकस्य। महाक्रतोः = महायज्ञस्य। प्रयोक्ता = अनुष्ठाता, कर्ता। तस्य = दिलीपस्य। पुत्रः = आत्मजः। रघुः = रघुनामको राजा, साम्प्रतं पदं = पैत्रम् राज्यम्। प्रशास्ति = पालयति। यः = रघुः। चतुर्दिगावर्जितसंभृतां = सर्वकाष्ठानीव सम्यग्वर्द्धिताम्। विभूतिं = ऐश्वर्यम्। मृत्पात्रशेषां = मृत्तिकाभाजनावशिष्टाम्। अकरोत् = कृतवान्, विश्वजिद्यज्ञे सर्वस्वदानात्।

समासः—विश्वं जयतीति विश्वजित् तस्य विश्वजितः। महांश्चासौ क्रतुरिति महाक्रतुः तस्य महाक्रतोः। चतस्रश्च ता दिशः चतुर्दिशः चतुर्दिग्भ्यः आवर्जिता संभृता चेति चतुर्दिगावर्जितसंभृता तां चतुर्दिगावर्जितसंभृताम्। मृदः पात्रमेव शेषो यस्याः सा तां मृत्पात्रशेषाम्।

भावार्थः—विश्वजिन्नामकस्य यज्ञस्य अनुष्ठाता नृपतिः दिलीपपुत्रो रघुः सम्प्रति पितुः राज्ञो दिलीपादधिगतं राज्यं प्रशास्ति, यो हि चतुर्दिग्भ्यो विजित्यानीतां समस्तां सम्पत्तिं यज्ञे वितीर्य स्वपार्श्वे केवलं मृत्पात्रमेवावशेषयत्। यतो हि विश्वजिद् यज्ञे सर्वस्वमेव दानं दीयते नृपतिभिरिति भावः।

सञ्जीविनी—विश्वजितो नाम महाक्रतोः प्रयोक्ताऽनुष्ठाता तस्य दिलीपस्य पुत्रो रघुः पदं पैत्र्यमेव प्रशास्ति पालयति। यां रघुश्चतसृभ्यो दिग्भ्य आवर्जिता-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऽऽहृता संभृता सम्यग्वर्धिता च या तां चतुर्दिगावर्जितसंभृतां विभूतिं संपदं मृत्पात्रमेव शेषो यस्यास्तामकरोत् । विश्वजिद्यागस्य सर्वस्वदक्षिणाकत्वादित्यर्थः ।

भाषार्थ—उनके बाद उन्हीं के पुत्र रघु राजा हुए हैं, जिन्होंने चारों दिशाओं को जीतकर इकट्ठा किया हुआ अपार धनराशि विश्वजित् नामक यज्ञ में ब्राह्मणों को दान देकर अपने पास केवल मिट्टी के पात्र को ही शेष रखा था ॥ ७६ ॥

आरूढमद्रीनुदधीन्वितीर्णं भुजङ्गमानां वसतिं प्रविष्टम् ।
ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुबन्धि यशः परिच्छेत्तुमियत्तयाऽलम् ॥ ७७ ॥

अन्वयः—अद्रीन् आरूढम् उदधीन् वितीर्णं भुजङ्गमानां वसतिं प्रविष्टम् ऊर्ध्वं गतम् अनुबन्धि च यस्य यशः इयत्तया परिच्छेत्तुम् अलं न 'अस्ति' ।

व्याख्या—अद्रीन्=पर्वतान् । आरूढं=अधिष्ठाय स्थितम् । उदधीन्=समुद्रान् । वितीर्णम्=अवलङ्घितम् सम्पूर्णमर्त्यलोके व्याप्तम् । भुजङ्गमानां=सर्पाणाम् । वसतिं=निवासस्थानम् पाताललोकं, नागलोकम् । प्रविष्टं=गतम् । ऊर्ध्वं=स्वर्लोकं गतं=व्याप्तम् । अनुबन्धि=अविच्छेदि, सर्वदिग्व्याप्तं कालत्रयव्यापकं च । यस्य=दिलीपपुत्रस्य रघोः । यशः=कीर्तिः । इयत्तया=देशतः कालतो वा केनापि मानेन । परिच्छेत्तुं=परिमातुम् । न=नहि । अलं=शक्यम् ।

समासः—उदकानि धीयन्ते येषु ते उदधयः तान् उदधीन् । भुजैः गच्छन्तीति भुजङ्गमाः तेषां भुजङ्गमानाम् । अनुबध्नातीति अनुबन्धि । इयतः भावः इयत्ता, तया इयत्तया ।

भावार्थः—पर्वतोर्ध्वभागेषु समुद्रपारपर्यन्तं नागलोके प्रसृतं त्रिषु भूतभविष्यवर्तमानकालेषु च व्याप्तं राज्ञो रघोः निर्मलं यशः इयत्तया परिमातुं न शक्यमिति भावः ।

सञ्जीविनी—किंच अद्रीनारूढम् उदधीन्वितीर्णमगाढम् । सकलभूगोलव्यापकमित्यर्थः । भुजङ्गमानां वसतिं पातालं प्रविष्टम् ऊर्ध्वं स्वर्गादिकं गतं व्याप्तम् । इत्थं सर्वदिग्व्यापीत्यर्थः । अनुबध्नातीत्यनुबन्धि चाविच्छेदि कालत्रयव्यापकं चेत्यर्थः । अत एवैवंभूतं यस्य यश इयत्तया देशतः कालतो वा केनचिन्मानेन परिच्छेत्तुं परिमातुं नाऽलं न शक्यम् ।

भाषार्थ—पर्वतों तक पहुँचा हुआ, समुद्रों के पार गया हुआ, नागलोक में

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी व्याप्त हुआ, स्वर्गादिलोकों में फैला हुआ और अविच्छिन्न रूप से सर्वत्र व्याप्त जिस रघुके यश की कोई इयत्ता नहीं कर सकता है ।। ७७ ।।

असौ कुमारस्तमजोऽनुजातस्त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्तः ।
गुर्वीं धुरं यो भुवनस्य पित्रा धुर्येण दम्यः सदृशं बिभर्ति ।। ७८ ।।

अन्वयः—असौ कुमारः अजः त्रिविष्टपस्य पतिं जयन्तः इव तम् अनुजातः दम्यः यः भुवनस्य गुर्वीं धुरं धुर्येण पित्रा सदृशं बिभर्ति ।

व्याख्या—असौ=एष पुरोवर्ती अजनामा । कुमारः=युवराजः । त्रिविष्टपस्य=स्वर्गस्य । पतिं=स्वामिनमिन्द्रम् । जयन्तः=पाकशासनिः । इव=यथा; तम्=राजानं रघुम् । अनुजातः=उत्पन्नः, तस्माद्रघोः जातः । दम्यः=वत्सतरः, शिक्षणीयावस्थः । यः=अजः । गुर्वीं=गुरुतराम् । भुवनस्य=लोकस्य । धुरं=भारम् । धुर्येण=धुरन्धरेण । पित्रा=जनकेन । सदृशं=तुल्यम् । बिभर्ति=धारयति ।

समासः—त्रयाणां विष्टपानां समाहारः त्रिविष्टपं तस्य त्रिविष्टपस्य । अनु-पश्चात् जातः अनुजातः गुरोर्भावः गुर्वी । धुरं वहतीति धुर्यः तेन धुर्येण ।

भावार्थः—एष पुरोवर्ती युवराजः अजकुमारः स्वर्गस्य स्वामिनो महेन्द्रात् जयन्त इव भूपते रघोरुत्पन्नः यथा अल्पवयस्को वत्सो महोक्षेण वलीवर्देन सह गुरुतरां धुरं वहति तथैवायमपि कुमारः पित्रा दिलीपेन साकं प्रजापालनरूपं भूभारं वहतीति भावः ।

सञ्जीविनी—असावजाख्यः कुमारः त्रिविष्टपस्य स्वर्गस्य पतिमिन्द्रं जयन्त इव । 'जयन्तः पाकशासनिः' इत्यमरः । तं रघुमनुजातः तस्माज्जात इत्यर्थः । तज्जातोऽपि तदनुजातो भवति जन्यजनकयोरानन्तर्यात् । "गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च" इति क्तः । सोपसृष्टत्वात्सकर्मकत्वम् । आह चात्रैव सूत्रे वृत्तिकारः—'श्लिषादयः सोपसृष्टाः सकर्मका भवन्ति' इति । दम्यः शिक्षणीयावस्थः योऽजो गुर्वीं भुवनस्य धुरं धुर्येण धुरन्धरेण चिरनिरूढेन पित्रा सदृशं तुल्यं यथा तथा बिभर्ति । यथा कश्चिद्वत्सतरोऽपि धुर्येण महोक्षेण समं वहतीत्युपमालंकारो ध्वन्यते । 'दम्यवत्सतरौ समौ' इत्यमरः

भाषार्थ—ये कुमार अज स्वर्ग के स्वामी इन्द्र से उत्पन्न जयन्त के समान उस महाराज रघु से उत्पन्न हुए हैं और ये भी अपने प्रतापी पिता के समान राज्य का सब काम सँभालते हैं ।। ७८ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥ ७९ ॥

अन्वयः—कुलेन कान्त्या नवेन वयसा विनयप्रधानैः तैस्तैः गुणैः आत्मनः तुल्यम् अमुं त्वं वृणीष्व रत्नं काञ्चनेन समागच्छतु ।

व्याख्या—कुलेन = वंशेन । कान्त्या = लावण्येन, नवेन = अभिनवेन, नूतनेन, वयसा = अवस्थया, यौवनेन । विनयप्रधानैः = नम्रताप्रमुखैः । तैः तैः = प्रसिद्धैः । गुणैः = श्रुतशीलमाधुर्यौदार्यप्रभृतिभिः । आत्मनः = स्वस्य । तुल्यं = अनुरूपम् । अमुं = एनमजम् । त्वं = इन्दुमती । वृणीष्व = स्वीकुरुष्व । किंबहुना प्रोक्तेन रत्नं = हीरकादि । काञ्चनेन = सुवर्णेन । समागच्छतु = समागच्छताम् ।

समासः—विनय एव प्रधानं येषु विनयप्रधानाः तेषु विनयप्रधानेषु ।

भावार्थः—प्रिये इन्दुमति ! प्रख्यातेन वंशेन अपूर्वेण लावण्येन, अभिनवेन यौवनेन तुल्यया अवस्थया तैः तैः प्रसिद्धैः श्रुतशीलविनयसौन्दर्यमाधुर्यप्रभृतिभिः शोभनैः गुणैश्च आत्मनोऽनुरूपमेनमजं वरं वरय । किमधिकं वक्तव्यम् । रत्नसुवर्णसमागमो भवतु । अर्थात् यथा हीरकादिरत्नस्य शोभा सुवर्णेनाधिका भवति तथैव तव अजस्य च सम्बन्धोऽधिकः शोभाधायी भविष्यति ।

सञ्जीविनी—कुलेन कान्त्या लावण्येन नवेन वयसा यौवनेन विनयः प्रधानं येषां तैस्तैर्गुणैः श्रुतशीलादिभिश्चात्मनस्तुल्यं स्वानुरूपममुमजं त्वं वृणीष्व किं बहुना रत्नं काञ्चनेन समागच्छतु संगच्छताम् । प्रार्थनायां लोट् । रत्नकाञ्चनयोरिवात्यन्तानुरूपत्वाद्युवयोः समागमः प्रार्थ्यत इत्यर्थः ।

भाषार्थ—कुल से, सौन्दर्य से, नई युवावस्था से और विनय, दया, दाक्षिण्य, शील, शक्ति आदि सद्गुणों से ये तुम्हारे अनुरूप हैं । इसलिये तुम इन्हें वरण करो जिससे सुवर्ण का रत्न के साथ मेल हो जाय, क्योंकि रत्न की शोभा उसके अनुरूप सुवर्ण से ही होती हैं, दूसरे से नहीं ॥ ७९ ॥

ततः सुनन्दावचनावसाने लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या ।
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं प्रत्यग्रहीत्संवरणस्रजेव ॥ ८० ॥

अन्वयः—ततः सुनन्दावचनावसाने नरेन्द्रकन्या लज्जां तनूकृत्य प्रसादामलया दृष्ट्या संवरणस्रजा, इव कुमारं प्रत्यग्रहीत् ।

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम् । सुनन्दावचनावसाने = द्वारपालिकासुनन्दावाक्यसमाप्तौ सत्याम् । नरेन्द्रकन्या = राजकुमारी । इन्दुमती । लज्जां =

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ह्रियम् । तनूकृत्य=सङ्कोच्य । प्रसादामलया=प्रसन्नतानिर्मलेन । दृष्टया= दर्शनेन । संवरणस्रजा=स्वयम्बरार्थमधूकमालया । इव=यथा । कुमारं= युवराजमजम् । प्रत्यग्रहीत्=वृतवती ।

समासः—सुनन्दाया वचनं सुनन्दावचनं सुनन्दावचनस्य अवसानं सुनन्दावचनावसानं तस्मिन् सुनन्दावचनावसाने । न तनूः अतनूः अतनूं तनूं कृत्वा इति तनूकृत्य । नरेन्द्रस्य कन्या नरेन्द्रकन्या । प्रसादेनामला प्रसादामला तया प्रसादामलया । सम्यग् वरणमिति संवरणं संवरणस्य स्रक् संवरणस्रक् तया संवरणस्रजा ।

भावार्थः—ततः सुनन्दावचनावसाने राजकुमारी इन्दुमती लज्जासङ्कोचं विहाय प्रसन्नतया विकसिताभ्यां लोचनाभ्यां तमजं स्वीकृतवती । मन्ये, सा प्रेमपूर्णा दृष्टिः स्वयम्वरवरणस्य मधूकमाला स्यात् । अर्थात् इन्दुमत्या प्रसन्नलोचनाभ्यामेव स्वनेत्रयोः अजः स्वीकृत इति भावः ।

सञ्जीविनी—ततः सुनन्दावचनस्यावसानेऽन्ते नरेन्द्रकन्येन्दुमती लज्जां तनूकृत्य संकोच्य प्रसादेन मनःप्रसादेनामलया प्रसन्नया दृष्टया संवरणस्य स्रजा स्वयम्वरणार्थं स्रजेव कुमारमजं प्रत्यग्रहीत्स्वीचकार । सम्यक्सानुरागमपश्यदित्यर्थः ।

भाषार्थ—इस प्रकार सुनन्दा के कहने के बाद राजकुमारी इन्दुमती ने संकोच छोड़कर प्रेमभरी दृष्टि से देखकर अज को ऐसा स्वीकार कर लिया, मानो वह दृष्टि ही स्वयम्वर की माला हो ॥ ८० ॥

सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम् ।
रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रामदरालकेश्याः ॥ ८१ ॥

अन्वयः—सा यूनि तस्मिन् अभिलाषबन्धं शालीनतया वक्तुं न शशाक तथापि अरालकेश्याः सः रोमाञ्चलक्ष्येण, गात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रामत् ।

व्याख्या—सा=राजकुमारी इन्दुमती । यूनि=तरुणे । तस्मिन्=अजे । अभिलाषबन्धं=अनुरागग्रन्थिम् । शालीनतया=अधृष्टतया । वक्तुं=कथयितुम् । न=नहि । शशाक=समर्थाऽभूत् । तथापि अरालकेश्याः=कुटिलालकायाः । सः=अभिलाषः, रोमाञ्चलक्ष्येण=पुलकव्याजेन । गात्रयष्टिं=शरीरयष्टिम् । भित्त्वा=निर्भिद्य । निराक्रामत्=प्रास्फुटत् ।

समासः—अभिलाषस्य बन्धः अभिलाषबन्धः तम् अभिलाषबन्धम् । शालीनस्य भावः शालीनता तया शालीनतया । अरालाः केशा यस्याः सा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अरालकेशी तस्या अरालकेश्याः। रोमाञ्चानां लक्ष्यं रोमाञ्चलक्ष्यं तेन रोमाञ्चलक्ष्येण। गात्रमेव यष्टिः गात्रयष्टिः तां गात्रयष्टिम्।

भावार्थः—सा राजकुमारी इन्दुमती अजविषयिकामात्मप्रेमग्रन्थि कुलीनतया तु वाणीद्वारा न व्यक्तवती, किन्तु तस्या अरालकेश्यास्तत् स्नेहबन्धनं रोमाञ्चव्याजेन शरीरं निर्भिद्य बहिर्निर्गतम्। अर्थात् सात्त्विकभावाविर्भावरोमाञ्चेन तस्याः तदनुरागः प्रकटितो जात इति भावः।

सञ्जीविनी—सा कुमारी यूनि तस्मिन्नजेऽभिलाषबन्धानुरागग्रन्थि शालीनतयाऽधृष्टतया। 'स्यादधृष्टे तु शालीनः' इत्यमरः। 'शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः' इति निपातः। वक्तुं न शशाक। तथाप्यरालकेश्याः सोऽभिलाषबन्धो रोमाञ्चलक्ष्येण पुलकव्याजेन। 'व्याजोऽपदेशो लक्ष्यं च' इत्यमरः। गात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रामत्। सात्त्विकाविर्भावलिङ्गेन प्रकाशित इत्यर्थः।

भाषार्थ—वह कुमारी इन्दुमती उस युवक अजविषयक अपने अनुराग को धृष्ट न होने के कारण वाणी से प्रकट तो नहीं कर सकी, पर घुंघुराले बालवाली उस इन्दुमती के हृदय का वह अनुराग छिपाने पर भी नहीं छिप सका; रोमाञ्च के बहाने बाहर आ ही गया। अर्थात् प्रसन्नता से रोयें खड़े हो गये॥८१॥

तथागतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्रभृदाबभाषे।
आर्ये व्रजामोऽन्यत इत्यथैनां वधूरसूयाकुटिलं ददर्श॥ ८२॥

अन्वयः—सख्यां तथागतायां 'सत्यां' सखी वेत्रभृत् हे आर्ये। 'वयम्' अन्यतः व्रजामः इति परिहासपूर्वम् आबभाषे अथ वधूः एनाम् असूयाकुटिलम्; ददर्श।

व्याख्या—सख्याम्=इन्दुमत्याम्। तथागतायाम्=प्रकटानुरागायाम्। सत्याम्=जातायाम्। सखी=सहचरी। वेत्रभृत्=दौवारिकी सुनन्दा। हे आर्ये! पूज्ये!। इन्दुमति। अन्यतः=अपरं राजानं प्रति। व्रजामः=गच्छामः। इति=इत्थम्। परिहासपूर्वम्=सपरिहासम्। आबभाषे। अथ=अनन्तरम्। वधूः=इन्दुमती। एनां=सुनन्दाम्। असूयाकुटिलं=रोषवक्रं यथास्यात्तथा। ददर्श=अवलोकयामास।

समासः—वेत्रं बिभर्तीति वेत्रभृत्। परिहासःपूर्वं यस्मिन् कर्मणि तत् परिहासपूर्वम्। असूयया कुटिलम् यथा स्यात्तथा असूयाकुटिलम्।

भावार्थः—अनुरागाकृष्टायामिन्दुमत्यां तत्सखी द्वारपालिका सुनन्दा परिहासं कुर्वन्ती इन्दुमतीं प्रति कथितवती—हे आर्ये, सखि! अन्यं राजानं गच्छ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्याकर्ण्येन्दुमत्या नेत्रं वक्रं कृत्वा सरोषं सुनन्दा दृष्टा, अन्यत्र गमनस्यासह्यत्वादिति भावः।

सञ्जीविनी--सख्यामिन्दुमत्यां तथागतायां तथाभूतायां दृष्टानुरागायां सत्यामित्यर्थः। सखी सहचरी। "सख्यशिश्वीति भाषायाम्" इति निपातनात् ङीष्। वेत्रभृत्सुनन्दा हे आर्ये पूज्ये! अन्यतोऽन्यं प्रति व्रजाम इति परिहासपूर्वमाबभाषे। अथ वधूरिन्दुमत्येनां सुनन्दामसूयया रोषेण कुटिलं ददर्श। अन्यागमनस्यासह्यत्वादित्यर्थः।

भाषार्थ--अज में इन्दुमती को इस प्रकार अनुरक्त जानकर द्वारपालिका इन्दुमती परिहास की दृष्टि से कहने लगी—आर्ये! आगे बढ़िये दूसरे राजा के पास चलें, इसपर उस राजकुमारी ने उसे असूयापूर्वक कुटिल दृष्टि से देखा॥ ८२॥

सा चूर्णगौरं रघुनन्दनस्य धात्रीकराभ्यां करभोपमोरूः।
आसञ्जयामास यथाप्रदेशं कण्ठे गुणं मूर्तमिवानुरागम्॥ ८३॥

अन्वयः--करभोपमोरूः सा चूर्णगौरं गुणं मूर्त्तम् अनुरागम्, इव धात्रीकराभ्यां रघुनन्दनस्य कण्ठे यथाप्रदेशम् आसञ्जयामास।

व्याख्या--करभोपमोरूः=करवहिर्भागोपमानजङ्घा। सा=कुमारी इन्दुमती। चूर्णगौरं=मांगलिकचूर्णलोहितम् गुणं=स्रजम्। मूर्तं=मूर्तिमन्तम्, अनुरागं=अभिलाषम्। इव=यथा। धात्रीकराभ्यां=सुनन्दाहस्ताभ्याम्। रघुनन्दनस्य=रघुपुत्रस्य, अजस्य। कण्ठे=गले। यथाप्रदेशं=यथास्थानम्। आसञ्जयामास=आसक्तं कारयामास।

समासः--करभः उपमा ययोः तौ करभोपमौ करभोपमौ ऊरू यस्याः सा करभोपमोरूः। चूर्णेन गौरः चूर्णगौरः तं चूर्णगौरम्। धात्र्याः करौ धात्रीकरौ ताभ्यां धात्रीकराभ्याम्। नन्दयतीति नन्दनः रघोः नन्दनः रघुनन्दनः तस्य रघुनन्दनस्य। प्रदेशमनतिक्रम्य यथाप्रदेशम्।

भावार्थः--करभोपमोरूः सा कुमारी इन्दुमती मालारूपधारिणं स्वकीयमनुरागमिव कुङ्कुमचूर्णेन रक्तसूत्रवतीं मालां सुनन्दाहस्ताभ्यां रघुपुत्रस्याजस्य गले यथाप्रदेशं परिधापयामासेत्यर्थः।

सञ्जीविनी—करभः करप्रदेशविशेषः। 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः। करभ उपमा ययोस्तावूरू यस्याः सा करभोपमोरूः। "ऊरूत्तरपदादौपम्ये" इत्यूङ्प्रत्ययः। सा कुमारी चूर्णेन मङ्गलचूर्णेन गौरं लोहितं गुणं स्रजं मूर्तं मूर्तिमन्तमनुरागमिव। धात्र्या उपमातुः सुनन्दायाः कराभ्यां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रघुनन्दनस्याजस्य कण्ठे यथाप्रदेशं यथास्थानमासञ्जयामासासक्तं कारयामास । न तु स्वयमाससञ्ज अनौचित्यात् ।

भावार्थ—करभ के समान जङ्घोंवाली उस इन्दुमती ने मंगलचूर्ण से लाल रङ्गवाली स्वयंवर की माला को सुनन्दा के हाथों से रघु के पुत्र अज के गले में पहना दिया । वह माला उस समय ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानों इन्दुमती ने अपना साक्षात् मूर्तिमान अनुराग ही अज के ऊपर न्यौछावर कर दिया हो ॥ ८३ ॥

तया स्रजा मङ्गलपुष्पमय्या विशालवक्षःस्थललम्बया सः ।
अमंस्त कण्ठार्पितबाहुपाशां विदर्भराजावरजां वरेण्यः ॥ ८४ ॥

अन्वयः—वरेण्यः सः मङ्गलपुष्पमय्या विशालवक्षःस्थललम्बया तया स्रजा विदर्भराजावरजां कण्ठार्पितबाहुपाशाम् अमंस्त ।

व्याख्या—वरेण्यः=वरणीयः । सः=रघुपुत्रोऽजः । मङ्गलपुष्पमय्या=मधूकादिसुमनमय्या, माङ्गलिककुसुमप्रचुरया । विशालवक्षःस्थललम्बया=महदुरःस्थललम्बमानया । तया=पूर्वोक्तया, स्रजा=मालया । विदर्भराजावरजां=भोजभगिनीम् इन्दुमतीम् । कण्ठार्पितबाहुपाशाम्=गलदत्तकराम् । अमंस्त=अमन्यत ।

समासः—वरितुं योग्यः वरेण्यः । मङ्गलानि च तानि पुष्पाणि मङ्गलपुष्पाणि प्रकृतानि मङ्गलपुष्पाणि यस्यां सा मङ्गलपुष्पमयी तया मङ्गलपुष्पमय्या । विशालं च तत् वक्षःस्थलं विशालवक्षःस्थलम् तस्मिन् विशालवक्षःस्थले लम्बते इति विशालवक्षःस्थललम्बा तया विशालवक्षःस्थललम्बया । बाहू एव पाशौ बाहुपाशौ कण्ठे अर्पितौ बाहुपाशौ यया सा कण्ठार्पितबाहुपाशा तां कण्ठार्पितबाहुपाशाम् ।

भावार्थः—वरणीयो रघुपुत्रोऽजः माङ्गलिकपुष्पनिर्मितया स्ववक्षःस्थललम्बितया तया मालया आत्मानमेवममन्यत यद्भोजराजभगिन्या इन्दुमत्या एव मम गले स्वकीयो बाहुपाश एवार्पितोऽस्ति इति भावः ।

सञ्जीविनी—वरेण्यो वरणीय उत्कृष्टः । वृञ एण्यः । सोऽजो मङ्गलपुष्पमय्या मधूकादिकुसुममय्या विशालवक्षःस्थले लम्बया लम्बमानया तया प्रकृतया स्रजा विदर्भराजावरजामिन्दुमतीं कण्ठार्पितौ बाहू एव पाशौ यया ताममंस्त मन्यतेर्लुङ् । बाहुपाशकल्पसुखमन्वभूदित्यर्थः ।

भाषार्थ—मंगलमय पुष्पों से बनी हुई और अपने वक्षःस्थल पर लटकती हुई उस माला को धारण करके अज को ऐसा मालूम होने लगा कि मानो

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आलिंगन करने के लिए विदर्भराज भोज की छोटी बहन इन्दुमती ने उनके गले में अपनी भुजायें डाल दी हों ।। ८४ ।।

शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा ।
इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौराः श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्यं विवव्रुः ।। ८५ ।।

अन्वयः--तत्र समगुणयोगप्रीतयः पौराः इयं मेघमुक्तं शशिनम् उपगता कौमुदी इव अनुरूपं जलनिधिम् अवतीर्णा जह्नुकन्या इव इति नृपाणां श्रवणकटु एकवाक्यं विवव्रुः ।

व्याख्या--तत्र = स्वयम्वरे, समगुणयोगप्रीतयः = तुल्यशीलसौन्दर्यादिगुणसम्बन्धप्रसन्नाः । पौराः = नागरिकजनाः । इयम् = अजसङ्गता, इन्दुमती, मेघमुक्तं = घनत्यक्तम् । शशिनं = चन्द्रमसम्, शरच्चन्द्रम् । उपगता=सङ्गता । कौमुदी = ज्योत्स्ना । अनुरूपं = स्वसदृशम् । जलनिधि = जलधिं, समुद्रम् । अवतीर्णा = प्रविष्टा, मिलिता । जह्नुकन्या = जाह्नवी, गङ्गा । कौमुदीसदृशी । गङ्गासमाना च इन्दुमती । इति = इत्थम् । नृपाणां = लोकपालानां राज्ञाम् । श्रवणकटु = कर्णपरुषम् । एकवाक्यम् = इन्दुमतीस्वयम्बरे समागतानां अविरोधिवचनम् । विवव्रुः = कथितवन्तः । सर्वैः नागरिकैः जनैः एकस्वरेण प्रशंसितोऽयं सम्बन्ध इत्यर्थः ।

समासः—कन्या स्वयं पतिं वृणोति यस्मिन् स स्वयम्वरः तस्मिन् स्वयम्वरे । समा गुणा ययोः तौ, समगुणयोः योगः समगुणयोगः तेन समगुणयोगेन प्रीतिः येषां ते समगुणयोगप्रीतयः पुरे भवा पौराः । मेघैः मुक्तः मेघमुक्तः तं मेघमुक्तम् । कौ मोदत इति कुमुदः कुमुदस्य इयं कौमुदी । जलानां निधि जलनिधि तं जलनिधिम् । जह्नोः कन्या जह्नुकन्या । श्रवणयोः कटुः श्रवणकटु तत् श्रवणकटु । एकं च तत् वाक्यमिति एकवाक्यं तत् एकवाक्यम् । रूपस्य योग्यम् अनुरूपम् । शशीऽस्यास्तीति शशी तं शशिनम् ।

भावार्थः--तस्मिन् स्वयम्वरे समानशीलस्वभावसौन्दर्यौदार्यमाधुर्यादिगुणवतोः अजेन्दुमत्योः सम्बन्धेन प्रसन्ना नागरिकाः तेषां स्वयम्वरे सम्मिलितानां राज्ञां श्रवणकटु एकमेव वाक्यं कथयामासुः यत् इयमिन्दुमती अजेन एव सम्मिलिता यथा निर्मेघा चन्द्रचन्द्रिका स्वकीयेन अनुरूपेण सागरेण सम्मिलतीति भावः।

सञ्जीविनी--तत्र स्वयम्बरे समगुणयोस्तुल्यगुणयोरिन्दुमती-रघुनन्दनयोर्योगेन प्रीतिर्येषां ते समगुणयोगप्रीतयः पौराः पुरे भवा जनाः इयमजसंगतेन्दुमती मेघैर्मुक्तं शशिनं शरच्चन्द्रमुपगता कौमुदी । अनुरूपं सदृशं जलनिधिमव-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तीर्णा प्रविष्टा जह्नुकन्या भागीरथी। तत्सदृशीत्यर्थः। इत्थमेवं नृपाणां श्रवणयोः कटु परुषमेकमविसंवादि वाक्यमेकवाक्यं विवव्रुः। मालिनीवृत्तम्।

भाषार्थ——उस स्वयम्वर में उन दोनों समान गुणवालों के सम्बन्ध हो जाने से प्रसन्न होकर पुरवासी एक स्वर से प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि यह इन्दुमती मेघमुक्त निर्मल चन्द्रमा को प्राप्त चाँदनी और अनुरूप समुद्र को प्राप्त गङ्गा के समान सौभाग्यवती हो गई। पर यह सुनकर अन्य राजाओं को वड़ा कड़ुआ सा लगा। ॥ ८५ ॥

प्रमुदितवरपक्षमेकतस्तत्क्षितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम्।
उषसि सर इव प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत् ॥ ८६ ॥

अन्वयः——एकतः प्रमुदितवरपक्षम् अन्यतः वितानं तत् क्षितिपतिमण्डलम् उषसि प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रं सर इव आसीत्।

व्याख्या——एकतः=एकत्र। प्रमुदितवरपक्षम्=प्रहृष्टाजपक्षसमूहम्। अन्यतः=अन्यत्र, वितानं=शून्यम् अप्रसन्नं भग्नमनोरथत्वात्। तत् क्षितिपतिमण्डलम्=भग्नमनोरथभूपालसमूहः। उषसि=प्रभाते। प्रफुल्लपद्मं=विकसितकमलम्। कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रम्=श्वेतकमलसमूहप्राप्तनिमीलनम्। सरः=सरोवरः, तडागः। इव=यथा। आसीत्=अभूत्।

समासः——एकस्मिन्निति एकतः। प्रकर्षेण मुदितः प्रमुदितः वरस्य पक्षः वरपक्षः प्रमुदितः वरपक्षः यस्य तत् प्रमुदितवरपक्षम्। ते च ते क्षितिपतयः तत्क्षितिपतयः तेषां तत्क्षितिपतीनां मण्डलमिति तत्क्षितिपतिमण्डलम्। अन्यस्मिन्निति अन्यतः। प्रफुल्लन्तीति प्रफुल्लानि प्रफुल्लानि पद्मानि यस्य तत् प्रफुल्लपद्मम्। कुमुदानां वनं कुमुदवनं तेन कुमुदवनेन प्रतिपन्ना निद्रा यस्य तत् कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रम्।

भावार्थः——तस्मिन् स्वयम्वरमण्डपे एकत्र वरपक्षीया जनाः प्रसन्नतया विकसितमुखकमलाः आसन्। अन्यत्र च राजकुमार्या इन्दुमत्या अप्राप्तया खिन्नमनस्कानां नृपतीनां समूह आसीत्। अतः तस्मिन् समये तत् मण्डपम् प्रातःकालिकं तत् सर इव प्रतीयतेस्म यस्मिन् एकत्र प्रफुल्लानि कमलानि स्युः, अन्यत्र चाविकसितानि मुकुलितानि पद्मानि भवेयुरिति भावः।

इति कविवरकालिदासप्रणीते रघुवंशे महाकाव्ये
पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिकृतायां विमलाख्यायां
व्याख्यायां षष्ठः सर्गः समाप्तः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी--एकत एकत्र प्रमुदितो हृष्टो वरस्य जामातुः पक्षो वर्गो यस्य तत्तथोक्तम् । अन्यतोऽन्यत्र वितानं शून्यं भग्नाशत्वादप्रहृष्टमित्यर्थः । तत्क्षितिपतिमण्डलम् उषसि प्रभाते प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनेन प्रतिपन्ननिद्रं प्राप्तनिमीलनं सर इव सरस्तुल्यम् आसीत् । पुष्पिताग्रावृत्तमेतत् ।। ८६ ।।

इति श्रीमहामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनी-
समाख्यया व्याख्यया समेतो महाकविकालिदासकृतौ रघुवंशे
महाकाव्ये स्वयम्वरवर्णननामकः षष्ठः सर्गः ।

भाषार्थ--उस समय वह स्वयम्वरमण्डप सुबह में उस सरोवर के समान लगने लगा, जिसमें एक ओर तो खिले हुए कमल दिखाई दे रहे हों और दूसरी ओर संकुचित कुमुदों का समूह मौजूद हो । क्योंकि एक ओर अज के समर्थक व्यक्ति हँसते हुये खड़े थे, तो दूसरी ओर इन्दुमती को न पाने से निराश होकर अप्रसन्न (उदासीन) राजा लोग थे ।। ८६ ।।

इस प्रकार त्रिपाठ्युपाह्व-पं० श्रीकृष्णमणिशास्त्री द्वारा लिखित
चन्द्रकला नामक हिन्दी टीका में रघुवंशमहाकाव्य का
स्वयम्वरवर्णन नामक षष्ठ सर्ग समाप्त ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्रीः ॥

रघुवंशमहाकाव्यम्

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

सप्तमः सर्गः

अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम् ।
स्वसारमादाय विदर्भनाथः पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव ॥ १ ॥

अन्वयः—अथ विदर्भनाथः सदृशेन उपयन्त्रा युक्तां साक्षात् स्कन्देन, युक्तां देवसेनाम् इव 'स्थितां' स्वसारम्, पुरप्रवेशाभिमुखः बभूव ।

व्याख्या—अथ = मालाप्रदानानन्तरम् । विदर्भनाथः = विदर्भदेशस्वामी, भोजः । सदृशेन = कुलेन, कान्त्या, वयसा समानेन । उपयन्त्रा = पाणिग्रहण-कारिणा, वरेण । युक्तां = सहिताम् । साक्षात् = प्रत्यक्षम् । स्कन्देन = कुमारेण कार्तिकेयेन । युक्तां देवसेनां = देवसेनाख्यां, देवपुत्रीं स्कन्दपत्नीम् । इव = यथा । स्वसारं = भगिनीम् । आदाय = गृहीत्वा । पुरप्रवेशाभिमुखः = नगर-गमनसम्मुखः । बभूव = अभूत् ।

समासः—समानं दृश्यते यः सः सदृशः तेन सदृशेन । देवस्य सेना देवसेना तां देवसेनाम् । विदर्भाणां नाथः विदर्भनाथः । पुरे प्रवेशः पुरप्रवेशः, पुरप्रवेशस्य अभिमुखः पुरप्रवेशाभिमुखः ।

भावार्थः—स्वयम्वरसम्पन्नानन्तरं विदर्भराजो भोजः कुलेन, कान्त्या, वयसा, शीलेन स्वभावेन च समानेन वरेण अजेन साकं स्वसारमिन्दुमतीं गृहीत्वा स्वनगरं प्रति प्रस्थितवान् । इंदुमत्या सह गच्छन् अजः स्वभार्यया देवसेनया साकं गच्छन् कार्तिकेय इव प्रतीयते स्मेति भावः ।

भजेमहि निपीयैकं मुहुरन्यं पयोधरम् ।
मार्गन्तं बालमालोक्याश्वासयन्तौ हि दम्पती ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—अथ विदर्भनाथो भोजः सदृशेनोपयन्त्रा वरेण। युक्ताम् अत एव साक्षात्प्रत्यक्षम्। 'साक्षात्प्रत्यक्षतुल्ययोः' इत्यमरः। स्कन्देन युक्तां देवसेनामिव देवसेना नाम देवपुत्री स्कन्दपत्नी (पूर्वं हि ब्रह्मणा निर्मिते देवसेना-दैत्यसेने इन्द्रकन्येऽभूतां तयोः पूर्वस्याः पतित्वे स्कन्दोऽभिषिक्त इत्यागमः।) तामिव स्थितां स्वसारं भगिनीमिन्दुमतीमादाय गृहीत्वा पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव। उपजातिवृत्तं सर्गेऽस्मिन्।

भाषार्थ—स्वयम्वर हो चुकने के बाद, विदर्भ देश के राजा भोज योग्य वर से युक्त अपनी बहन इन्दुमती को लेकर नगर की ओर चले। अपनी पत्नी इन्दुमती के साथ जाते हुए अज ऐसे लग रहे थे, मानों देवसेना के साथ साक्षात् स्कन्द जा रहे हों॥ १॥

सेनानिवेशान्पृथिवीक्षितोऽपि जग्मुर्विभातग्रहमन्दभासः।
भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वाद्रूपेषु वेशेषु च साभ्यसूयाः॥ २॥

अन्वयः—विभातग्रहमन्दभासः पृथिवीक्षितः अपि भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वात् रूपेषु वेशेषु च साभ्यसूयाः सन्तः सेनानिवेशान् जग्मुः।

व्याख्या—भोज्यां = भोजभगिनीमिन्दुमतीम् प्रति। व्यर्थमनोरथत्वात् = नष्टाभिलाषत्वात्। रूपेषु = आकृतिषु सौन्दर्येषु, वेशेषु = नेपथ्येषु, स्वकीय-प्रसाधनेषु। साभ्यसूयाः = स्वगुणेषु दोषारोपवन्तः। विभातग्रहमन्दभासः = प्रातःकालीनचन्द्रतारकादिवत्क्षीणकान्तयः। पृथिवीक्षितः = पृथिवीसञ्चालका राजानः। अपि सेनानिवेशान् = सैन्यशिविराणि। जग्मुः = गतवन्तः।

समासः—व्यर्थः मनोरथो येषां ते व्यर्थमनोरथा तेषां व्यर्थमनोरथानां भावः व्यर्थमनोरथत्वम् तस्मात् व्यर्थमनोरथत्वात्। अभ्यसूयया सह वर्तन्ते इति साभ्यसूयाः विभातस्य ग्रहा विभातग्रहाः विभातग्रहा इव मन्दा भाः येषां ते विभातग्रहमन्दभासः। पृथिवीं क्षिपन्ति इति पृथिवीक्षितः। सेनायाः निवेशाः सेनानिवेशाः, तान् सेनानिवेशान्।

भावार्थः—भोजराजावरजामिन्दुमतीं प्रति भग्नाभिलाषत्वात् स्वं स्वं सौन्दर्यं वस्त्रालङ्कारादि-प्रसाधनादिकं निन्दन्तः ते च ते राजानः प्रातःकालीन-मन्दभासः चन्द्रनक्षत्रादिग्रहा इव क्षीणकान्तयः स्वस्वशिविराभिमुखा बभूवुः।

सञ्जीविनी—भोजस्य राज्ञो गोत्रापत्यं स्त्री भोज्या तामिन्दुमतीं प्रतिव्य-र्थमनोरथत्वाद्रूपेष्वाकृतिषु वेशेषु नेपथ्येषु च साभ्यसूया वृथेति निन्दन्तः किंच

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विभाते प्रातःकाले ये ग्रहाश्चन्द्रादयस्त इव मन्दभासः क्षीणकान्तयः पृथिवि-क्षितो नृपा अपि सेनानिवेशाञ्छिविराणि जग्मुः।

भावार्थ—इन्दुमती के प्रति असफल मनोरथ होने के कारण प्रातःकालीन नक्षत्रों के समान फीके पड़े हुए अपने-अपने रूप और वेशभूषा पर ग्लानि करते हुए, अज के अतिरिक्त राजा लोग अपने-अपने शिबिरों में चले गये ॥ २ ॥

ननु क्रुद्धाश्चेद्युध्यन्तां तत्राह—

साान्निध्ययोगात्किल तत्र शच्याः स्वयंवरक्षोभकृतामभावः।
काकुत्स्थमुद्दिश्य समत्सरोऽपि शशाम तेन क्षितिपाललोकः ॥ ३ ॥

अन्वयः—तत्र शच्याः सान्निध्ययोगात् स्वयम्वरक्षोभकृताम् अभावः 'बभूव' किल तेन काकुत्स्थम् उद्दिश्य समत्सरः अपि क्षितिपाललोकः शशाम।

व्याख्या—तत्र=स्वयम्वरस्थले। शच्याः=इन्द्राण्याः। सान्निध्ययोगात्=सामीप्यसद्भावात्। स्वयम्वरक्षोभकृताम्=स्वयम्वरविघातकानाम्। अभावः=असत्त्वं किल। तेन=कारणेन। काकुत्स्थं=ककुत्स्थगोत्रोत्पन्नमजम्। उद्दिश्य=अभिलक्ष्य। समत्सरः=सेर्ष्यः सवैरः अपि। क्षितिपाललोकः=भूपालवर्गः। शशाम=शान्त आसीत्।

समासः—सन्निधिरेव सान्निध्यं तस्य, सान्निध्यस्य योगः सान्निध्ययोगः तस्मात् सान्निध्ययोगात्। कन्या स्वयं वृणुते वरं यस्मिन्निति स्वयम्वरम्। क्षोभं कुर्वन्तीति क्षोभकृतः स्वयम्वरस्य क्षोभकृत इति स्वयम्वरक्षोभकृतः तेषां स्वयम्वरक्षोभकृताम्। क्षितिं पालयन्तीति क्षितिपालाः तेषां क्षितिपालानां लोकः क्षितिपाललोकः। ककुदि तिष्ठतीति ककुत्स्थः ककुत्स्थस्य गोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थः तं काकुत्स्थम्।

भावार्थः—तस्मिन् स्वयम्वरे विघ्ननिवारिकाया इन्द्राण्या उपस्थितत्वात् स्वयम्वरविघ्नकर्तॄणां नृपतीनामभावोऽभवत्। अतोऽजं प्रति ईर्ष्यालवोऽपि राजानो न कथमपि विघ्नमकार्षुः, अपितु सर्वे शान्ता अभूवन्निति भावः।

सञ्जीविनी—तत्र स्वयंवरक्षेत्रे शच्या इन्द्राण्याः सन्निधिरेव सान्निध्यम्। तस्य योगात्सद्भावाद्धेतोः स्वयंवरस्य क्षोभकृतां विघ्नकारिणामभावः किल। किलेति स्वयंवरविघातकाः शच्या विनाश्यन्त इत्यागमसूचनार्थम्। तेन हेतुना काकुत्स्थमजमुद्दिश्य समत्सरोऽपि सवैरोऽपि क्षितिपाललोकः शशाम नाक्षुभ्यत्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—उस स्वयम्बर स्थल में इन्द्राणी स्वयं उपस्थित थीं। इसलिये किसी का साहस नहीं हुआ कि कोई गड़बड़ी कर सके। इसीलिए अजसे ईर्ष्या करनेवाले राजा लोग भी शान्त रहे ॥ ३ ॥

तावत् प्रकीर्णाभिनवोपचारमिन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम् ।
वरः स वध्वा सह राजमार्गं प्राप ध्वजच्छायनिवारितोष्णम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—सः वरः वध्वा सह तावत् प्रकीर्णाभिनवोपचारम् इन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कं ध्वजच्छायनिवारितोष्णम् राजमार्गं प्राप ।

व्याख्या—सः=पूर्वोक्तः वरः=वोढा, अजः । वध्वा=इन्दुमत्या । सह=साकम् । तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारम्=तावत् प्रसारितनूतनपुष्पप्रकरम् । इन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम्=देवराजप्रहरणप्रकाशितवहिर्द्वारचिह्नम् । ध्वजच्छायनिवारितोष्णं=पताकानातपदूरीकृतातपम् । राजमार्गं=प्रधानं नृपपथम् । प्राप=आजगाम ।

समासः—तावन्तः प्रकीर्णा अभिनवा-उपचारा यस्य स तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारः तं तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारम् । इन्द्रस्य आयुधानि इन्द्रायुधानि इन्द्रायुधानि इव द्योतितानि तोरणानि अङ्का यस्य स इन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कः तम् इन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम् । ध्वजानां छाया ध्वजच्छायम् ध्वजच्छायेन निवारितः उष्णः यस्य स ध्वजच्छायनिवारितोष्णः तं ध्वजच्छायनिवारितोष्णम् । राज्ञां मार्गः राजमार्गः तं राजमार्गम् ।

भावार्थः—नवविवाहितो रघुपुत्रोऽजः स्वपत्न्या इन्दुमत्या साकं तस्मिन् राजमार्गे प्रविष्टो यत्र सम्यगभिनवपुष्पाणां वर्षणं भवतिस्म, इन्द्रधनुरिव विभिन्नरङ्गरञ्जितानि तोरणानि सुसज्जितानि आसन्, तथा पताकाछायया सूर्यातपः प्रच्छन्नो वभूव । अर्थात् तस्मिन् समये राजमार्गो रङ्गविरङ्गतोरणैः सुसज्जितः, पुष्पवर्षया व्याप्तः, पताकाभिश्च सूर्यातपप्रच्छन्नो जात इति भावः ।

सञ्जीविनी—'यावत्तावच्च साकल्ये' इत्यमरः । तावत्प्रकीर्णाः साकल्येन प्रसारिता अभिनवा नूतना उपचाराः पुष्पप्रकरादयो यस्य तं तथोक्तम् । इन्द्रायुधानीव द्योतितानि प्रकाशितानि तोरणान्यङ्काश्चिह्नानि यस्य तं ध्वजानां छाया ध्वजच्छायम् । 'छाया बाहुल्ये' इति नपुंसकत्वम् । तेन निवारित उष्ण आतपो यत्र तं तथा राजमार्गं स वरो वोढा वध्वा सह प्राप विवेश ।

भावार्थ—वह अज अपनी पत्नी इन्दुमती के साथ उस मुख्य राजमार्ग पर पहुँचे जहाँ स्थान-स्थान पर नये-नये सुन्दर फूल उनपर बरसाये जा रहे थे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रधनुष के समान रंग-विरंग के तोरण उनके सत्कार के लिए सजाये गये थे और वहाँ इतनी झंडियाँ, ध्वजा, पताका आदि लगायी गयी थीं कि धूप भी नहीं मालूम पड़ती थी ॥ ४ ॥

ततस्तदालोकनतत्पराणां सौधेषु चामीकरजालवत्सु ।
बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ॥ ५ ॥

अन्वयः—ततः चामीकरजालवत्सु सौधेषु तदालोकनतत्पराणां पुरसुन्दरीणाम् इत्थं त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि बभूवुः ।

व्याख्या—राजमार्गप्रवेशानन्तरम् । चामीकरजालवत्सु = सुवर्णनिर्मितवातायनवत्सु । सौधेषु = भवनेषु । तदालोकनतत्पराणां = अजदर्शनासक्तानाम् । पुरसुन्दरीणां = नगररमणीनाम् । इत्थं = वक्ष्यमाणप्रकारम् । त्यक्तान्यकार्याणि = परित्यक्तकेशबन्धनादिकर्माणि । विचेष्टितानि = व्यापाराः । बभूवुः = जातानि ।

समासः—चामीकरस्य जालानि चामीकरजालानि चामीकरजालानि सन्ति येषु सौधेषु । तस्य आलोकनं तदालोकनं तदालोकने तत्पराः तदालोकनतत्पराः तासां तदालोकनतत्पराणाम् । पुरस्य सुन्दर्यः पुरसुन्दर्यः तासां पुरसुन्दरीणाम् । त्यक्तानि अन्यानि कार्याणि येषु तानि त्यक्तान्यकार्याणि । विशेषाणि च तानि चेष्टितानि विचेष्टितानि ।

भावार्थः—राजमार्गगमनसमये सुवर्णनिर्मितगवाक्षवद्भ्यः स्वस्वभवनेभ्यः अजं द्रष्टुकामनया नगरसुन्दर्यः अन्यानि सर्वाणि कार्याणि विहाय वक्ष्यमाणा विविधाः चेष्टा अकार्षुरिति भावः ।

सञ्जीविनी—ततस्तदनन्तरं चामीकरजालवत्सु सौवर्णगवाक्षयुक्तेषु सौधेषु तस्याजस्यालोकने तत्पराणामासक्तानां पुरसुन्दरीणामित्थं वक्ष्यमाणप्रकाराणि त्यक्तान्यान्यकार्याणि केशबन्धनादीनि येषु तानि विचेष्टितानि व्यापाराः । नपुंसके भावे क्तः । बभूवुः ।

भाषार्थ—इसके बाद अजको देखने के लिए नगर की सुन्दरियाँ अपना-अपना काम छोड़कर महल में सुनहले झरोखों की ओर दौड़ पड़ीं ॥ ५ ॥

तान्येवाह पञ्चभिः श्लोकैः—

आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः ।
बद्धुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः ॥ ६ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः—सहसा आलोकमार्गं व्रजन्त्या कयाचित् उद्वेष्टनवान्तमाल्यः करेण रुद्धः अपि केशपाशः तावत् बद्धुं न एव सम्भावितः ।

व्याख्या—सहसा = झटिति, अजावलोकनत्वरया । आलोकमार्गं=गवाक्षपथम् । व्रजन्त्या = गच्छन्त्या । कयाचित् = कामिन्या, स्त्रिया । उद्वेष्टनवान्तमाल्यः = उन्मुक्तबन्धनपतितपुष्पमालः, बन्धविश्लेषणेनोद्गीर्णपुष्पमालो वा । करेण=हस्तेन । रुद्धः = गृहीतः, अवलम्बितः अपि च केशपाशः = कचसमूहः । तावत् = गवाक्षमार्गपर्यन्तम् । बद्धुं = बन्धनार्थम् । न = नहि । सम्भावितः= विचारित एव ।

समासः—आलोकस्य मार्गः आलोकमार्गः तम् आलोकमार्गम् । उद्गतं वेष्टनं यस्य स उद्वेष्टनः, वान्तं माल्यं यस्य स वान्तमाल्यः, उद्वेष्टनश्चासौ वान्तमाल्यश्चेति उद्वेष्टनवान्तमाल्यः । केशानां पाशः केशपाशः ।

भावार्थः—अजावलोकनत्वरया झटिति गवाक्षसविधे धावन्त्या गच्छन्त्या कयाचित् कामिन्या शीघ्रगतिवशात् विश्लथितपुष्पमालं केशपाशं करेण गृह्णन्त्या बद्धुं विस्मृतम् । अर्थात् धावनगमनेन पतितमालं केशपाशं करे गृहीत्वा गवाक्षे गत्वा अजं दृष्ट्वैव सा केशपाशं बद्धुं ध्यानं न दत्तवतीति भावः ।

सञ्जीविनी—सहसाऽऽलोकमार्गं गवाक्षपथं व्रजन्त्या कयाचित्कामिन्योद्वेष्टनवान्तमाल्यः उद्वेष्टनो द्रुतगतिवशादुन्मुक्तबन्धनः अत एव वान्तमाल्यो बन्धविश्लेषेणोद्गीर्णमाल्यः करेण रुद्धो गृहीतोऽपि च केशपाशः केशकलापः । 'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे' इत्यमरः तावदालोकमार्गप्राप्तिपर्यन्तं बद्धुं बन्धनार्थं न सम्भावितो न चिन्तित एव ।

भाषार्थ—अज को देखने के लिए झरोखों पर शीघ्रता से जाती हुई किसी स्त्री का केश खुल गया, जल्दी में जूड़ा बाँधने की भी उसे सुधि नहीं रही, वह उसे हाथ में पकड़े ही खिड़की पर पहुंच गई, केशपाश ढीले पड़ जाने से उसमें गूंथे हुए पुष्प बराबर नीचे गिरते जाते थे ॥ ६ ॥

> प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव ।
> उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ॥ ७ ॥

अन्वयः—काचित् प्रसाधिकालम्बितं द्रवरागं एव अग्रपादम् आक्षिप्य उत्सृष्टलीलागतिः सती आगवाक्षात् अलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ।

व्याख्या—काचित् = वनिता, सुन्दरी । प्रसाधिकालम्बितम् । अलङ्कर्त्र्या दास्या रञ्जनार्थं धृतम् । द्रवरागम्=आर्द्ररञ्जनद्रव्यम् । अग्रपादं = चरणाग्र-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाणम् । आक्षिप्य = आकृष्य । उत्सृष्टलीलागतिः = परित्यक्तमन्दगमना सती । आगवाक्षात् = वातायनपर्यन्तम् । पदवीं = मार्गम् । अलक्तकाङ्कां = लाक्षाराग-चिह्निताम् । ततान = विस्तारयामास ।

समासः—अग्रश्चासौ पादः अग्रपादः तम् अग्रपादम् । द्रवः रागो यस्य सः द्रवरागः तं द्रवरागम् । लीलया गतिः लीलागतिः उत्सृष्टा लीलागतिः यया सा उत्सृष्टलीलागतिः । अलक्तस्य अङ्कः यस्यां सा अलक्तकाङ्का ताम् अलक्त-काङ्काम् । गवाक्षं मर्यादीकृत्य आगवाक्षम् तस्मात् आगवाक्षात् ।

भावार्थः—द्वितीया काचित् कामिनी अलङ्कारकर्त्र्या दास्या रञ्जनार्थं हस्ते धृतं संलग्नार्द्ररञ्जनद्रव्यं चरणाग्रभागम् आकृष्य स्वाभाविकीं मन्दविलास-गतिं त्यक्त्वा धावन्ती गवाक्षपर्यन्तं रक्तालक्तकपङ्क्तिं निर्मितवती । अर्थाद् वातायनपर्यन्ता भूमिः तत्पादरागरञ्जिता जातेति भावः ।

सञ्जीविनी—काचित् प्रसाधिकयाऽलङ्कर्त्र्यालम्बितं रञ्जनार्थं धृतं द्रव-रागमेवार्द्रालक्तकमेव अग्रश्चासौ पादश्चेत्यग्रपाद इति कर्मधारयसमासः । 'हस्ताग्राग्रहस्तादयो गुणगुणिनोर्भेदाभेदाभ्याम्' इति वामनः । तमाक्षिप्याकृष्य उत्सृष्टलीलागतिस्त्यक्तमन्दगमना सती, आगवाक्षाद् गवाक्षपर्यन्तं पदवीं पन्था-नमलक्तकाङ्कां लाक्षारागचिह्नां ततान विस्तारयामास ।

भावार्थ—एक स्त्री शृंगार करने वाली अपनी दासी से पैरों में महावर लगवा रही थी, उसी समय अज के आने के कलकल शब्दों को सुनकर शृंगार करने वाली के हाथ से गीले महावर वाले पैरों को खींच कर झरोखे की ओर दौड़ पड़ी, जिससे झरोखे तक उसके पैर के महावर का लाल-लाल चिह्न पड़ गया ॥ ७ ॥

विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन सम्भाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा ।
तथैव वातायनसन्निकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती ॥ ८ ॥

अन्वयः—अपरा दक्षिणं विलोचनं अञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा सती तथा एव शलाकां वहन्ती वातायनसन्निकर्षं ययौ ।

व्याख्या—अपरा = तृतीया काचित् स्त्रीः, दक्षिणं = वामेतरम् अपसव्यम् । विलोचनं = नयनम् । अञ्जनेन = कज्जलेन । संभाव्य=अलङ्कृत्य । तद्वञ्चित-वामलोचना = अञ्जनवर्जितसव्यनयना सती । तथैव=तेनैव प्रकारेण । शलाकां = अञ्जनतूलिकाम् । वहन्ती = धारयन्ती । वातायनसन्निकर्षं गवाक्षसमीपम् । ययौ = गतवती ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समासः—तेन वञ्चितं तद्वञ्चितं तद्वञ्चितं वामं नेत्रं यस्याः सा तद्वञ्चितवामनेत्रा। वातायनस्य सन्निकर्षः वातायनसन्निकर्षः तं वातायनसन्निकर्षम् । विशिष्टं च तत् लोचनं विलोचनं तत् विलोचनम् ।

भावार्थः—यद्यपि स्त्रिया प्रथमं वामनेत्रेऽञ्जनं कर्तव्यं तथापि त्वरया काचित् तृतीया कामिनी, पूर्वं दक्षिणनेत्रमञ्जयित्वा वामं तद्विरहितं त्यक्त्वा अञ्जनतूलिकां हस्ते गृहीत्वा गवाक्षपर्यन्तमुपगता। अत्र त्वरयाऽञ्जनकरणे वैपरीत्यं जातमिति भावः।

सञ्जीविनी—अपरा स्त्री दक्षिणं विलोचनमञ्जनेन सम्भाव्यालंकृत्य, सम्भ्रमादिति भावः। तद्वञ्चितं तेनाञ्जनेन वर्जितं वामनेत्रं यस्याः सा सती तथैव शलाकामञ्जनतूलिकां वहन्ती सती वातायनसंनिकर्षं गवाक्षसमीपं ययौ। दक्षिणग्रहणं संभ्रमाद्व्युत्क्रमकरणद्योतनार्थम्। 'सव्यं हि पूर्वं मनुष्या अञ्जते' इति श्रुतेः।

भाषार्थ—एक दूसरी स्त्री अपनी आँखों में आँजन लगा रही थी, दाहिनी आंख में अञ्जन लगा कर अज को देखने की जल्दी में बायीं आँख विना अञ्जन लगाये ही हाथ में सलाई लिये हुए झरोखे के पास पहुँच गई ॥ ८ ॥

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम् ।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः ॥ ९ ॥

अन्वयः—अन्या जालान्तरप्रेषितदृष्टिः, सती प्रस्थानभिन्नां नीवीं न बबन्ध किन्तु नाभिप्रविष्टाभरणेन हस्तेन वासः अवलम्ब्य तस्थौ।

व्याख्या—अन्या=अपरा काचिच्चतुर्थीनायिका। जालान्तरप्रेषितदृष्टिः=वातायनमध्यदत्तनयना सती। प्रस्थानभिन्नां=गमनमुक्ताम्। नीवीं=शाटिकाग्रन्थिम्। न बबन्ध=न बन्धयामास, नैव नियन्त्रितवती। नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण=उदरगतकङ्कणालङ्कारकान्त्या, हस्तेन=करेण। वासः=वस्त्रं शाटिकाम्, अवलम्ब्य=गृहीत्वा। तस्थौ=स्थिता।

समासः—जालस्य अन्तरं जालान्तरं प्रेषिता दृष्टिः यया सा जालान्तरप्रेषितदृष्टिः। प्रस्थानेन भिन्ना, प्रस्थानभिन्ना तां प्रस्थानभिन्नाम्। नाभौ प्रविष्टा नाभिप्रविष्टा आभरणानां प्रभा आभरणप्रभा नाभिप्रविष्टा आभरणप्रभा यस्य सः नाभिप्रविष्टाभरणप्रभः तेन नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण।

भावार्थः—शाटिकां दधाना काचिच्चतुर्थी नायिका गवाक्षे दृष्टिं प्रदाय धावन्ती तत्रोपस्थिता, द्रुतगत्या शिथिलां नीवीं बद्धुं न शशाक, किंतु शाटिकां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करे धृत्वा स्थिता, यस्या आभूषणानां कान्तिः तस्या नाभिं चमत्कृतवती। अर्थात् शाटिकायां विश्लथायां आभूषणप्रभैव नाभेरामरणार्पितेति भावः।

सञ्जीविनी—अन्या स्त्री जालान्तरप्रेषितदृष्टिर्गवाक्षमध्यप्रेरितदृष्टिः सती प्रस्थानेन गमनेन भिन्नां त्रुटितां नीवीं वसनग्रन्थिम्। 'नीवी परिपणे ग्रन्थौ स्त्रीणां जघनवाससि' इति विश्वः। न बबन्ध किंतु नाभिप्रविष्टाभरणानां कङ्कणादीनां प्रभा यस्य तेन। प्रभैव नाभेराभरणमभूदिति भावः। हस्तेन वासोऽवलम्ब्य गृहीत्वा तस्थौ।

भावार्थ—इसके अतिरिक्त कोई अन्य स्त्री झरोखे की ओर देखती हुई शीघ्रता से जा रही थी उसकी फुफती खुल गई, उसे विना बाँधे ही हाथ से पकड़कर खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई। हाथ के आभूषणों की चमक उसकी नाभि तक पहुँच रही थी॥ ९॥

अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा॥ १०॥

अन्वयः—सत्वरम् उत्थितायाः कस्याश्चित् अर्धाञ्चिता दुर्निमिते पदे पदे गलन्ती रशना तदानीम् अङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा, आसीत्।

व्याख्या—सत्वरं = शीघ्रम्। उत्थितायाः = उच्चलितायाः। कस्याश्चित् पञ्चम्याः नायिकायाः। अर्द्धाञ्चिता = अर्द्धभागमणिगुम्फिता। दुर्निमिते = संभ्रमादुत्क्षिप्ते। पदे पदे = प्रतिपदम्। गलन्ती = पतद्रत्ना सती। रसना = मेखला तदानीं = गमनसमये। अङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा = पादाङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रावशिष्टा। आसीत् = बभूव।

समासः—अर्द्धम् अञ्चितं यस्याः सा अर्द्धाञ्चिता यद्वा अर्द्धम् अञ्चिता अर्द्धाञ्चिता। अङ्गुष्ठस्य मूलम् अङ्गुष्ठमूलम् अङ्गुष्ठमूले अर्पितं सूत्रमेव शेषं यस्याः सा अङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा।

भावार्थः—एका नायिका उपविश्य मणिरशनां ग्रथ्नातिस्म। यस्या एकोऽन्तिमो भागः तदीयाङ्गुष्ठे निबद्ध आसीत्। अर्द्धग्रथितायामेव तस्यां रशनायामुत्थाय सा अजं द्रष्टुं प्रचलिता। त्वरया, गवाक्षपर्यन्तं गच्छन्त्याः तस्या अर्द्धग्रथितरशनातः सर्वाणि रत्नानि पतित्वा विकीर्णानि, केवलं सूत्रमात्रमेव तत्पादाङ्गुष्ठेऽवशिष्टमिति भावः।

सञ्जीविनी—सत्वरमुत्थितायाः कस्याश्चिदर्धाञ्चिता मणिभिरर्धगुम्फिता दुर्निमिते सम्भ्रमाद् दुरुत्क्षिप्ते। 'डुमिञ्प्रक्षेपणे' इति धातोः कर्मणि क्तः। पदे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पदे प्रतिपदम् । वीप्सायां द्विर्भावः । गलन्ती गलद्रत्ना सती रशना मेखला तदानीं गमनसमयेऽङ्गुष्ठमूलेऽर्पितं सूत्रमेव शेषो यस्याः साऽऽसीत् ।

भाषार्थ—एक स्त्री बैठी हुई मणियों से करधनी गूंथ रही थी जिसका एक छोर उसने पैर के अँगूठे में बाँध रखा था। वह अभी आधी ही गूँथ पाई थी कि एकाएक उठकर अज को देखने के लिए झरोखे की ओर दौड़ पड़ी। उसका परिणाम यह हुआ कि झरोखे तक पहुँचते-पहुँचते मणि तो निकलकर इधर-उधर बिखर गये, किन्तु उसके अंगूठे में केवल सूत ही बँधा रह गया ॥ १० ॥

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ॥ ११ ॥

अन्वयः—सान्द्रकुतूहलानां तासां आसवगन्धगर्भैः विलोलनेत्रभ्रमरैः मुखैः व्याप्तान्तराः गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इव आसन् ।

व्याख्या—तदानीं=अजस्यावलोकनसमये । सान्द्रकुतूहलानां=अत्यधिककौतुकानाम् । तासां=कामिनीनाम् । आसवगन्धगर्भैः मद्यसौरभाभ्यन्तरैः । विलोलनेत्रभ्रमरैः=चञ्चललोचनचञ्चरीकैः । मुखैः=आननैः । व्याप्तान्तरा=आच्छन्नावकाशाः गवाक्षाः=वातायनानि । सहस्रपत्राभरणाः=कमलालङ्कारा-कृतयः । इव=यथा । आसन्=बभूवुः ।

समासः—सान्द्रं कुतूहलं यासां ताः सान्द्रकुतूहलाः तासां सान्द्रकुतूहलानाम् । आसवस्य गन्धः आसवगन्धः आसवगन्धः गर्भे येषां ते आसवगन्धगर्भाः तैः आसवगन्धगर्भैः । विलोलानि नेत्राणि एव भ्रमरा येषां तानि विलोलनेत्र-भ्रमराणि तैः विलोलनेत्रभ्रमरैः । सहस्रं पत्राणि येषां तानि सहस्रपत्राणि सहस्रपत्राणि आभरणं येषां ते सहस्रपत्राभरणाः । गवामक्षिणीव अक्षीणि येषां ते गवाक्षाः ।

भावार्थः—अजं द्रष्टुमत्यन्तमुत्सुकानां तन्नगरनिवासिनीनां कामिनीनाम् मदिरागन्धसुवासितैः, चञ्चललोचनचञ्चरीकैः मुखैः पूरिताः गवाक्षाः सुसज्जित-कमला इव प्रतीयन्ते स्मेति भावः ।

सञ्जीविनी—तदानीं सान्द्रकुतूहलानां तासां स्त्रीणामासवगन्धो गर्भे येषां तैः । विलोलानि नेत्राण्येव भ्रमरा येषां तैः । मुखैर्व्याप्तान्तराश्छन्नावकाशा गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इव कमलालंकृता इव । 'सहस्रपत्रं कमलम्' इत्यमरः । आसन् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—मदिरा की सुगन्ध से वासित मुखवाली, झरोखों में उत्सुकता से झाँकती हुई वे स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानों झरोखों में बहुत से कमल सजे हुए हों और उनपर अनेक भौंरे बैठे हुए हों। अर्थात् उन स्त्रियों के सुन्दर मुखों पर उनकी आँखें ऐसी मालूम पड़ती थीं जैसे कमल पर भौंरे बैठे हों ॥ ११ ॥

ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।
तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ॥ १२ ॥

अन्वयः—ताः नार्यः राघवं दृष्टिभिः आपिबन्त्यः 'सत्यः' विषयान्तराणि न जग्मुः तथा हि आसां शेषेन्द्रियवृत्तिः सर्वात्मना चक्षुः प्रविष्टा इव 'बभूव'।

व्याख्या—ताः=पूर्वोक्ता नार्यः, राघवं=रघुतनयम्, अजम्। दृष्टिभिः =नयनैः। आपिबन्त्यः=अतितृष्णया पश्यन्त्यः। विषयान्तराणि=अन्यान् विषयान्। न जग्मुः=नैव गताः। नैव जानन्तिस्म। तथा हि=उक्तमुपपादयति। आसां=स्त्रीणाम्। शेषेन्द्रियवृत्तिः=अवशिष्टेन्द्रियव्यापारः। सर्वात्मना =पूर्णरूपेण, चक्षुः=नेत्रम्। प्रविष्टा इव=गता इव, आसां=नारीणां चक्षुर्व्यतिरिक्तेन्द्रियव्यापारः स्वरूपकार्त्स्न्येन चक्षुः प्रविष्ट इत्यर्थः।

समासः—अन्ये विषया विषयान्तराणि। शेषाणि च तानि इन्द्रियाणि शेषेन्द्रियाणि तेषां वृत्तिः शेषेन्द्रियवृत्तिः। सर्वश्चासौ आत्मा सर्वात्मा तेन सर्वात्मना। रघोरपत्यं पुमान् राघवः तं राघवम्। आपिबन्तीति आपिबन्त्यः। दृश्यन्ते विषयो आभिः इति दृष्टयः ताभिः दृष्टिभिः।

भावार्थः—ताः तन्नगरनिवासिन्यः कामिन्यः एकतानैर्नेत्रैरजमेवावलोकयन्त्यः कार्यान्तराणि माविदन्। (तासां तदतिरिक्ते वस्तुनि ध्यानमेव नासीत्) प्रतीयतेस्म यत्तासां सर्वेन्द्रियाणां (चक्षुर्विहाय) व्यापारः एकस्मिन् नेत्रे एव प्रविष्टः।

अर्थात् नेत्रातिरिक्तानि श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि स्वान्तन्त्र्येण स्वस्वविषयग्रहणेऽशक्तानीति चक्षुष्येव प्रविश्याजं व्यलोकयन्निति भावः।

सञ्जीविनी—ता नार्यो रघोरपत्यं राघवमजम्। 'तस्यापत्यम्' इत्यण्प्रत्ययः। दृष्टिभिरापिबन्त्योऽतितृष्णया पश्यन्त्यो विषयान्तराण्यन्यान्विषयान्न जग्मुः न विविदुरित्यर्थः। तथाहि आसां नारीणां शेषेन्द्रियवृत्तिश्चक्षुर्व्यतिरिक्तश्रोत्रादीन्द्रियव्यापारः सर्वात्मना स्वरूपकार्त्स्न्येन चक्षुः प्रविष्टेव श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वातन्त्र्येण ग्रहणाशक्तेश्चक्षुरेव प्रविश्य कौतुकात्स्वयमप्येनमुपलभन्ते किमु अन्यथा स्वस्वविषयाधिगमः किं न स्यादिति भावः ।

भाषार्थः—वे स्त्रियाँ एक टक होकर अज को अपने नेत्रों से इस प्रकार देख रही थीं कि मानो उनका ध्यान किसी दूसरे काम की ओर गया ही नहीं था, क्योंकि इन स्त्रियों के दूसरी इन्द्रियों का व्यापार नेत्रों में ही प्रविष्ट हो गया है ॥ १२ ॥

स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः स्वयंवरं साधुममंस्त भोज्या ।
पद्मेव नारायणमन्यथाऽसौ लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—भोज्या परोक्षैः भूपतिभिः वृता, 'अपि' स्वयम्वरम् एव साधुम् अमंस्त 'इति' स्थाने अन्यथा असौ पद्मा नारायणम् इव आत्मतुल्यं कान्तं कथं लभेत ।

व्याख्या—भोज्या=भोजभगिनी, इन्दुमती । परोक्षैः=अदृष्टैः । भूपतिभिः=नृपतिभिः । वृता=प्रार्थिता अपि । स्वयम्वरं=स्वेनैव वरणम् । साधुः=हितकरम् । अमंस्त=अमन्यत, न तु अदृष्टं कमपि राजानं वव्रे । इति स्थाने=समुचितमेतत् । अन्यथा=स्वयम्वराभावे । असौ=एषा, इन्दुमती । पद्मा=लक्ष्मीः । नारायणं=भगवन्तं विष्णुम् । इव=यथा । आत्मतुल्यं स्वानुरूपम् । कान्तं=मनोहरं पतिम् । कथं=केन प्रकारेण । लभेत=विन्देत् न लभेतैव, सदसद्विवेकासौकर्यादित्यर्थः ।

समासः—भुवः पतयः भूपतयः तैः भूपतिभिः । अक्ष्णः परे परोक्षाः तैः परोक्षैः भोजस्यापत्यं स्त्रीरिति भोज्या । पद्ममस्या अस्तीति पद्मा । स्वयं वृणीते कन्या यस्मिन् स स्वयम्वरः तं स्वयम्बरम् । आत्मना तुल्यः आत्मतुल्यः तम् आत्मतुल्यम् । नाराः (आपः) एव अयनं स्थानम् यस्य स नारायणः ।

भावार्थः—ताः नगरनिवासिन्यो नार्यः परस्परमालपन् यदियमिन्दुमती-दर्शनमन्तरेव विवाहार्थं राजभिः स्वयं प्रार्थिता स्वयम्वरकरणमेव समुचितम-मन्यत । तदुचितमेवानया कृतम् । अन्यथा स्वयम्वराभावे यथा भगवती लक्ष्मीः भगवन्तं विष्णुं पतित्वेनावाप्तवती तथेयमिन्दुमती अपि स्वानुरूपं सुन्दरं पति-मेनमजं कथमवाप्स्यदिति भावः ।

सञ्जीविनी—भोज्येन्दुमती परोक्षैरदृष्टैर्भूपतिभिः वृता ममैवेयमिति प्रार्थि-तापि स्वयंवरमेव साधुं हितममंस्त मेने न तु परोक्षमेव कंचित्प्रार्थकं वव्रे स्थाने युक्तमेतत् । 'युक्ते द्वे सांप्रतं स्थाने' इत्यमरः । कुतः अन्यथा स्वयंम्वराभावेऽ-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साविन्दुमती पद्ममस्या अस्तीति पद्मा लक्ष्मीः । 'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्ययः । नारायणमिव आत्मतुल्यं स्वानुरूपं कान्तं पतिं कथं लभेत न लभेतैव सदसद्विवेकासौकर्यादिति भावः ।

भावार्थ—स्त्रियाँ आपस में बातें कर रही थीं कि बहुत से राजाओं ने अपने आप इन्दुमती से विवाह करने की प्रार्थना की थी, पर इसने स्वयम्वर करके ही अपना विवाह करना उचित समझा, अन्यथा इन्दुमती विष्णु को लक्ष्मी के समान अपने अनुरूप पति अज को कैसे पा सकती थी ? ॥ १३ ॥

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत् ॥ १४ ॥

अन्वयः—'प्रजापतिः' स्पृहणीयशोभम् इदं द्वन्द्वं चेत् परस्परेण न अयोजयिष्यत् 'तर्हि' अस्मिन् द्वये प्रजानां पत्युः रूपविधानयत्नः वितथः अभविष्यत् ।

व्याख्या—स्पृहणीयशोभम् = अभिलषितसौन्दर्यम् । इदं=परिदृश्यमानम् । द्वन्द्वं = मिथुनं, वरकन्ययोर्युगलम् । परस्परेण=अन्योन्येन । न अयोजयिष्यत्= नैव अमेलयिष्यत् चेत्=यदि तर्हि । प्रजानां = लोकानाम्, पत्युः = स्वामिनः लोकपितामहस्य ब्रह्मणः । अस्मिन् द्वये=अत्र युगले । रूपविधानयत्नः= सौन्दर्यनिर्माणप्रयासः । वितथः = विफलः, व्यर्थः । अभविष्यत् = समपत्स्यत् ।

समासः—स्पृहयितुं योग्या स्पृहणीया स्पृहणीया शोभा यस्य तत् स्पृहणीयशोभम् । प्रकर्षेण जायते इति प्रजाः तासां प्रजानाम् । रूपस्य विधानं रूपविधानं रूपविधाने यत्नः रूपविधानयत्नः ।

भावार्थः—स्पृहणीयसौन्दर्यम् अजेन्दुमत्योः युगलं यदि न मिलितमभविष्यत्तर्हि जगत्स्रष्टुर्विधातुः एनयोरेतादृशमपूर्वसौन्दर्यनिर्माणकौशलमेव व्यर्थमभविष्यत् । अर्थादेनौ सम्मेल्य ब्रह्मणा समुचितमेव कृतमिति भावः ।

सञ्जीविनी—स्पृहणीयशोभं सर्वाशास्यसौन्दर्यमिदं द्वन्द्वं मिथुनम् । 'द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु' इत्यनेन निपातः । परस्परेण नायोजयिष्यच्चेन्न योजयेद्यदि तर्हि, प्रजानां पत्युर्विधातुरस्मिन्द्वये द्वन्द्वे रूपविधानयत्नः सौन्दर्यनिर्माणप्रयासो वितथो विफलोऽभविष्यत् । एतादृशानुरूपस्त्रीपुंसान्तराभावादिति भावः । 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' इति लृङ् । 'कुतश्चित्कारणवैगुण्यात्क्रियाया अनभिनिष्पत्तिः क्रियातिपत्तिः' इति वृत्तिकारः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषार्थ—यदि ब्रह्मा अत्यन्त सुन्दर इन दोनों की जोड़ी न मिलाते, तो इन दोनों को इतना सुन्दर बनाने का उनका प्रयास व्यर्थ ही हो जाता ॥१४॥

रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथा हि बाला।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—इमौ नूनं रतिस्मरौ अभूताम् तथा हि इयं बाला राज्ञां सहस्रेषु आत्मप्रतिरूपम् एव गता हि मनः जन्मान्तरसंगतिज्ञं 'भवति'।

व्याख्या—रतिस्मरौ = रतिकामदेवौ। नूनं = अवश्यमेव तौ एव। इमौ = इन्दुमत्यजौ दम्पती। अभूताम् = आस्ताम्। तथाहि = उक्तं समर्थयते इयं पुरोदृश्यमाना। बाला = कुमारी इन्दुमती। राज्ञां = नृपाणाम्। सहस्रेषु = सहस्रसंख्याकेषु, सहस्रभूपालमध्ये। आत्मप्रतिरूपम् = स्वसमानरूपम्। एव गता = प्राप्ता। हि = यतः। मनः = चित्तम्। जन्मान्तरसंगतिज्ञं = अन्यजन्मसंज्ञम्। भवति = जायते। जन्मान्तरसाहचर्यमेवात्र प्रवर्तकमित्यर्थः।

समासः—रतिश्च स्मरश्चेति रतिस्मरौ। इयं च अयञ्च इमौ। आत्मनः प्रतिरूपः आत्मप्रतिरूपः तम् आत्मप्रतिरूपम्। अन्यत् जन्म जन्मान्तरं जन्मान्तरे संगतिः जन्मान्तरसंगतिः जन्मान्तरसंगतिं जानातीति जन्मान्तरसंगतिज्ञम्।

भावार्थः—रतिकामदेवौ एव इमौ द्वौ इन्दुमत्यजौ पतिपत्नीरूपेणावतीर्णौ स्तः। अतः इयं कुमारी इन्दुमती सहस्रभूपालमध्ये स्वसमानसुन्दरम् एनमजमेव वृतवती। यतो हि मनः पूर्वजन्म सम्बन्धविशेषं जानात्येव। अर्थात् तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञाया अभावेऽपि संस्कारविशेषवशाद् जन्मान्तरेऽनुभूतपदार्थमेव मनो वृणुते। अनुभूतेऽर्थे एव तत् प्रवर्तते इति भावः।

सञ्जीविनी—रतिस्मरौ यौ नित्यसहचरावित्यभिप्रायः नूनं तावेवेयं चाय चेमौ दम्पती अभूताम्। एतद्रूपेणोत्पन्नौ। कुतः तथाहि इयं बाला राज्ञां सहस्रेषु राजसहस्रमध्ये सत्यपि व्यत्यासकरण इति भावः। आत्मप्रतिरूपं स्वतुल्यमेव। 'तुल्यसंकाशनीकाशप्रकाशप्रतिरूपकाः' इति दण्डी। गता प्राप्ता। तदपि कथं जातमत आह—हि यस्मान्मनो जन्मान्तरसंगतिज्ञं भवति तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञाभावेऽपि वासनाविशेषवशादनुभूतार्थेषु मनःप्रवृत्तिरस्तीत्युक्तम्। जन्मान्तरसाहचर्यमेवात्र प्रवर्तकमिति भावः।

भाषार्थ—वे दोनों पूर्व जन्म में रति और कामदेव ही रहे होंगे। इसीलिए तो हजारों राजाओं के बीच में इन्दुमती ने अज को ही वरण किया है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह बात ठीक ही है कि मन पूर्व जन्म के सम्बन्ध को भलीभांति पहचान लेता है ॥ १५ ॥

इत्युद्गताः पौरवधूमुखेभ्यः शृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखाः कुमारः ।
उद्भासितं मङ्गलसंविधाभिः संबन्धिनः सद्म समाससाद ॥ १६ ॥

अन्वयः—इति पौरवधूमुखेभ्यः उद्गताः श्रोत्रसुखाः कथाः शृण्वन् 'सन्' कुमारः मंगलसंविधाभिः उद्भासितं सम्बन्धिनः सद्म समाससाद ।

व्याख्या—इति=उक्तप्रकारेण । पौरवधूमुखेभ्यः=नागरिकनारीजनमानसेभ्यः । उद्गताः=निर्गताः श्रोत्रसुखाः=कर्णमधुराः । कथाः=आलापानि । शृण्वन्=आकर्णयन् । कुमारः=युवराजो रघुपुत्रोऽजः । मङ्गलसम्विधाभिः=शुभरचनाभिः । उद्भासितं=प्रकाशितं, सुशोभितम् । सम्बन्धिनः=कन्याप्रदातुः, भोजस्य । सद्म=गृहम् । समाससाद=प्राप, भोजराजभवनं प्राप्तवानित्यर्थः ।

समासः—पुरे भवाः पौराः पौराणां वध्वः पौरवध्वः पौरवधूनां मुखानि पौरवधूमुखानि तेभ्यः पौरवधूमुखेभ्यः । श्रोत्रयोः सुखाः श्रोत्रसुखाः ताः श्रोत्रसुखाः । मङ्गलस्य संविधाः मङ्गलसंविधाः ताभिः मङ्गलसंविधाभिः ।

भावार्थः—नागरिकवनितानन्नेभ्यः श्रवणसुखकराणि मधुराणि आलापानि शृण्वन् कुमारः अजो मङ्गलसामग्रीसज्जया सुशोभितं भोजराजभवनमाससादेति भावः ।

सञ्जीविनी—इति 'स्थाने वृता' इत्याद्युक्तप्रकारेण पौरवधूमुखेभ्य उद्गता उत्पन्नाः श्रोत्रयोः सुखा मधुराः सुखशब्दो विशेष्यनिघ्नः । 'पापं पुण्यं सुखादि च' इत्यमरः । कथा गिरः शृण्वन्कुमारोऽजो मङ्गलसंविधाभिर्मङ्गलरचनाभिरुद्भासितं शोभितं संबन्धिनः कन्यादायिनः सद्म गृहं समाससाद प्राप ।

भाषार्थ—नगर की महिलाओं के मुख से इस प्रकार की कर्णसुखद प्रिय बातें सुनते हुए कुमार अज अपने सम्बन्धी महाराज भोज के उस राजभवन में पहुंच गये, जो मंगलमय सामग्रियों की सजावट से जगमगा रहा था ॥ १६ ॥

ततोऽवतीर्याशु करेणुकायाः सः कामरूपेश्वरदत्तहस्तः ।
वैदर्भनिर्दिष्टमथो विवेश नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः ॥ १७ ॥

अन्वयः—ततः सः कामरूपेश्वरदत्तहस्तः, 'सन्' करेणुकायाः आशु अवतीर्य अथो वैदर्भनिर्दिष्टम् अन्तःचतुष्कं नारीमनांसि इव विवेश ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या—ततः = भोजभवनप्राप्त्यनन्तरम् । करेणुकायाः = हस्तिन्याः । आशु = शीघ्रम् । अवतीर्य = पृथिव्यामागत्य । कामरूपेश्वरदत्तहस्तः = कामाख्यास्थाननृपावलम्बितकरः । सः = अजः । अथ = पश्चात् । वैदर्भनिर्दिष्टम् = भोजप्रदर्शितम् । अन्तश्चतुष्कं = आभ्यन्तरचत्वरम् । नारीणां = पुरन्ध्रीणाम् मनांसि = चित्तानि, इव = यथा । विवेश = प्रविष्टवान् ।

समासः—कामरूपस्येश्वरः कामरूपेश्वरः तस्मिन् कामरूपेश्वरे दत्तः हस्तो येन स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः । विदर्भाणां राजा वैदर्भः तेन वैदर्भेण निर्दिष्टं तत् वैदर्भनिर्दिष्टम् । चतुष्कस्य अन्तः अन्तश्चतुष्कं तत् अन्तश्चतुष्कम् ।

भावार्थः—भोजराजभवनमुपेत्य कामाख्यास्थाननृपस्य हस्ते हस्तमवलम्ब्य हस्तिनीत अवतीर्य अजः भोजेन निर्दिष्टे आभ्यन्तरचत्वरे नारीमनस्सु इव प्रविष्टः ।

सञ्जीविनी—ततोऽनन्तरं करेणुकायाः हस्तिन्याः सकाशादाशु शीघ्रमवतीर्य । कामरूपेश्वरे दत्तो हस्तो येन सोऽजः अथोऽनन्तरं वैदर्भेण निर्दिष्टं प्रदर्शितमन्तश्चतुष्कं चत्वरं नारीणां मनांसीव विवेश ।

भाषार्थ—इसके बाद वे अज कामरूप (कामाख्या) के राजा के हाथ का सहारा लेकर हाथी से शीघ्र उतर गये । बाद विदर्भनरेश भोज से दिखाये गये मण्डप में इस प्रकार प्रवेश किये, मानो वे स्त्रियों के मन में प्रवेश करते हों ॥ १७ ॥

महार्हसिंहासनसंस्थितोऽसौ सरत्नमर्घ्यं मधुपर्कमिश्रम् ।
भोजोपनीतं च दुकूलयुग्मं जग्राह सार्धं वनिताकटाक्षैः ॥ १८ ॥

अन्वयः—महार्हसिंहासनसंस्थितः असौ भोजोपनीतं सरत्नं मधुपर्कमिश्रं अर्घ्यं दुकूलयुग्मं च वनिताकटाक्षैः सार्द्धं जग्राह ।

व्याख्या—महार्हसिंहासनसंस्थितः = बहुमूल्यसिंहपीठसमुपविष्टः असौ = एषः अजः । भोजोपनीतं = भोजानीतम् । सरत्नं = हीरकादि-रत्नसहितम् । मधुपर्कमिश्रं = घृत-मधु दधि-जल-शर्करासम्मिलितम् । अर्घ्यं = पूजासाधनद्रव्यम् । दुकूलयुग्मं = क्षौमवस्त्रद्वयम् । च वनिताकटाक्षैः = स्त्रीणामपाङ्गदर्शनैः, सार्द्धं = सहितम् । जग्राह = गृहीतवान् ।

समासः—महच्च तदर्हञ्च महार्हं महार्हं च तत् सिंहासनं महार्हसिंहासनं तस्मिन् महार्हसिंहासने संस्थितः इति महार्हसिंहासनसंस्थितः । भोजेन उपनीतं भोजोपनीतं तत् भोजोपनीतम् । रत्नैः सह वर्तते इति सरत्नम् तत् सरत्नम् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मधुपर्केण मिश्रमिति मधुपर्कमिश्रम् तत् मधुपर्कमिश्रम् । दुकूलयोः युग्मं दुकूलयुग्मं तत् दुकूलयुग्मम् । वनितानां कटाक्षाः वनिताकटाक्षाः तैः वनिता-कटाक्षैः ।

भावार्थः—बहुमूल्यसिंहासने समुपविष्टोऽजः भोजराजोपनीतं सरत्नं मधुपर्कसंयुक्तमर्घ्यं दुकूलद्वयं च स्त्रीणां कटाक्षैः सह स्वीकृतवान् । मधुपर्के हि घृत-मधु दधि-जल-शर्कराणां संग्रहो जायते इति भावः ।

सञ्जीविनी—महार्हसिंहासने संस्थितोऽसावजः । भोजेनोपनीतं रत्नैः सहितं सरत्नं मधुपर्कमिश्रमर्घ्यं पूजासाधनद्रव्यं दुकूलयोः क्षौमयोर्युग्मं च वनिताकटाक्षैरन्यस्त्रीणामपाङ्गदर्शनैः सार्धं जग्राह गृहीतवान् ।

भावार्थ—अज वहाँ जाकर बहुमूल्य सिंहासन पर बैठ गये और भोज ने उन्हें रत्नों के सहित मधुपर्क युक्त अर्घ्य और दो रेशमी वस्त्र दिये जिसे अज ने वहाँ की स्त्रियों के कटाक्ष के साथ-साथ ग्रहण किया ।। १८ ।।

दुकूलवासाः स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधरक्षैः ।
वेलासकाशं स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः ।। १९ ।।

अन्वयः—दुकूलवासाः सः विनीतैः अवरोधरक्षैः वधूसमीपं स्फुटफेनराजिः उदन्वान् नवैः, चन्द्रपादैः वेलासकाशम् इव निन्ये ।

व्याख्या—दुकूलवासाः क्षौमवस्त्रः । सः=अजः । विनीतैः=शिक्षितैः, शिष्टैः, अवरोधरक्षैः=अन्तःपुरपालकैः । स्फुटफेनराजिः=स्पष्टाब्धिकफ-पङ्क्तिः । उदन्वान्=उदधिः, समुद्रः । नवैः=अभिनवैः, नूतनैः । चन्द्रपादैः= इन्दुकिरणैः । वेलासकाशम्=तटसमीपम् । इव=यथा । वधूसमीपम्=इन्दु-मतीसविधम् । निन्ये=नीतः ।

समासः—दुकूलं वासो यस्य स दुकूलवासाः वध्वाः समीपं वधूसमीपम्, तत् वधूसमीपम् । अवरोधं रक्षन्तीति अवरोधरक्षाः तैः अवरोधरक्षैः । वेलायाः सकाशं वेलासकाशं तत् वेलासकाशम् । फेनस्य राजिः फेनराजिः स्फुटा फेन-राजिः यस्य स स्फुटफेनराजिः । चन्द्रस्य पादाः चन्द्रपादाः, तैः चन्द्रपादैः ।

भावार्थः—दुकूलवस्त्रधारिणम् अजम् अन्तःपुरस्य विनम्राः सेवकाः तथैव वध्वा इन्दुमत्याः समीपे नीतवन्तः यथा स्पष्टफेनराजि समुद्रं नूतनाः किरणाः तटस्य समीपे नयन्तीति भावः ।

सञ्जीविनी—दुकूलवासाः सोऽजः विनीतैर्नम्रैरवरोधरक्षैरन्तःपुराधिकृतै-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वंधूसमीपं निन्ये। तत्र दृष्टान्तः—स्फुटफेनराजिरुदन्वान्समुद्रो नवैनूंतनैश्चन्द्र-पादैश्चन्द्रकिरणैर्वेलायाः सकाशं समीपमिव। पूर्णदृष्टान्तोऽयम्।

भावार्थ—जिस प्रकार चन्द्रमा की नवीन किरणें स्पष्टफेनसमूहवाले समुद्र को तीर के पास ले जाती है उसी प्रकार अन्तःपुर के रक्षक रेशमी वस्त्र पहने हुए उस अज को इन्दुमती के पास ले गये ॥ १९ ॥

तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधा हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः।
तमेव चाधाय विवाहसाक्ष्ये वधुवरौ संगमयाञ्चकार ॥ २० ॥

अन्वयः—तत्र अर्चितः अग्निकल्पः भोजपतेः पुरोधा आज्यादिभिः अग्निं हुत्वा तम् एव विवाहसाक्ष्ये आधाय च वधूवरौ सङ्गमयाञ्चकार।

व्याख्या—तत्र = भोजराजभवने। अर्चितः = पूजितः। अग्निकल्पः = वह्नि-सदृशः। भोजपतेः = भोजदेशेश्वरस्य, भोजस्य। पुरोधाः = पुरोहितः। आज्या-दिभिः = घृतप्रभृतिभिः हवनीयद्रव्यैः। अग्नि = अनलम्। संभोज्य = सन्तर्प्य, हुत्वा। तमेव = हुताग्निमेव। विवाहसाक्ष्ये = पाणिग्रहणद्रष्टृत्वे। आधाय = अग्निकल्पः निधाय। वधूवरौ = नवोढाजामातरौ, अजेन्दुमत्यौ। सङ्गमयाञ्च-कार = संयोजयामास विवाहविधिं कारयामासेत्यर्थः।

समासः—भोजानां पतिः भोजपतिः तस्य भोजपतेः ईषदूनः अग्निरिति अग्निकल्पः। विवाहस्य साक्ष्यं विवाहसाक्ष्यं तस्मिन् विवाहसाक्ष्ये। पुरो धीयते इति पुरोधाः। वधूश्च वरश्चेति वधूवरौ।

भावार्थः—तत्र पूजितः अग्निसमानतेजस्वी भोजराजपुरोहितः घृतादिभिः हवनीयद्रव्यैः अग्नि हुत्वा तमेव हुताग्नि विवाहस्य साक्षिणं विधाय वधूवरौ अजेन्दुमत्यौ पतिपत्नीत्वेन संयोजयामासेति भावः।

सञ्जीविनी—तत्र सद्मन्यर्चितः पूजितोऽग्नितुल्यो भोजपतेर्भोजदेशाधीश्व-रस्य पुरोधाः पुरोहितः। 'पुरोधास्तु पुरोहितः' इत्यमरः। आज्यादिभिर्द्रव्यैरग्निं हुत्वा तमेव चाग्निं विवाहसाक्ष्ये आधाय। साक्षिणं च कृत्वेत्यर्थः। वधूवरौ संगमयाञ्चकार योजयामास।

भावार्थ—वहाँ पर सत्कृत और अग्नि के समान तेजस्वी राजा भोज के पुरोहित ने घी आदि सामग्रियों से अग्नि में हवन करके और उसी अग्नि को विवाह में साक्षी बनाकर अज और इन्दुमती का विवाह सम्बन्ध करा दिया ॥ २० ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हस्तेन हस्तं परिगृह्य वध्वाः स राजसूनुः सुतरां चकासे ।
अनन्तराशोकलताप्रवालं प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन ।। २१ ।।

अन्वयः—सः राजसूनुः हस्तेन वध्वाः हस्तं परिगृह्य अनन्तराशोकलताप्रवालं प्रतिपल्लवेन प्राप्य चूतः इव सुतरां चकासे ।

व्याख्या—सः=पूर्वोक्तः । राजसूनुः=राजपुत्रः, रघुतनयः, अजः, हस्तेन=स्वकरेण । वध्वाः=नवोढायाः, इन्दुमत्याः । हस्तं=करम् । परिगृह्य=गृहीत्वा । अनन्तराशोकलताप्रवालं=समीपस्थवञ्जुललतापल्लवम् । प्रतिपल्लवेन=स्वकीयंप्रवालेन । प्राप्य=अवाप्य । चूतः=आम्रः । इव=यथा । सुतरां=अत्यन्तम् । चकासे=शुशुभे ।

समासः—राज्ञः सूनुरिति राजसूनुः । अशोकस्य लता अशोकलता, न विद्यते अन्तरं यस्याः सा अनन्तरा, अनन्तरा च अशोकलता चेति अनन्तराशोकलता अनन्तराशोकलतायाः प्रवालमिति अनन्तराशोकलताप्रवालं तत् अनन्तराशोकलताप्रवालम् । प्रतिकूलं च तत् पल्लवं प्रतिपल्लवं तेन प्रतिपल्लवेन ।

भावार्थः—रघुपुत्रः सः अजः स्वकीयेन हस्तेन इन्दुमतीहस्तं गृहीत्वा तथैव शुशुभे यथा सन्निहिताशोकलतापल्लवं प्राप्य आम्रवृक्षः सुशोभितो भवति । अर्थात् अशोकलताया रक्तेन पल्लवेन सङ्गतः आम्रवृक्ष इव इन्दुमत्या हस्तं स्वहस्ते आदाय अजोऽपि अत्यन्तं मनोहरो जात इति भावः ।

सञ्जीविनी—स राजसूनुर्हस्तेन स्वकीयेन वध्वा हस्तं परिगृह्य । अनन्तरायाः संनिहिताया अशोकलतायाः प्रवालं पल्लवं प्रतिपल्लवेन स्वकीयेन प्राप्य चूत आम्र इव, सुतरां चकासे ।

भाषार्थ—जिस प्रकार आम्रवृक्ष अपनी पत्तियों के साथ अशोकलता की लाल पत्तियों के मिल जाने से मनोहर लगने लगता है, उसी प्रकार कुमार अज भी इन्दुमती के हाथ को अपने हाथ में ले लेने पर अत्यन्त सुशोभित हुए ।। २१ ।।

आसीद्वरः कण्टकितप्रकोष्ठः स्विन्नाङ्गुलिः संववृते कुमारी ।
तस्मिन्द्वये तत्क्षणमात्मवृत्तिः समं विभक्तेव मनोभवेन ।। २२ ।।

अन्वयः—वरः कण्टकितप्रकोष्ठः आसीत् कुमारी स्विन्नाङ्गुलिः संववृते तत्क्षणं मनोभवेन तस्मिन् द्वये आत्मवृत्तिः समं विभक्ता इव ।

व्याख्या—वरः=जामाता, अजः । कण्टकितप्रकोष्ठः=पुलकितमणिबन्धः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आसीत् = अभूत् । कुमारी = इन्दुमती । स्विन्नाङ्गुलिः = सञ्जातस्वेदकर-शाखा । संववृते = जाता । तस्मिन् = पूर्वोक्ते, द्वये = मिथुने । तत्क्षणं = पाणि-ग्रहणसमये । आत्मवृत्तिः = स्वसात्त्विकोदयरूपो व्यापारः । मनोभवेन = काम-देवेन । समं = समानम् । विभक्ता = पृथक् कृता ।

समासः—कण्टकाः सञ्जाता अस्येति कण्टकितः कण्टकितः प्रकोष्ठो यस्य स कण्टकितप्रकोष्ठः । स्विन्ना अङ्गुलयो यस्याः सा स्विन्नाङ्गुलिः । आत्मनः वृत्तिः आत्मवृत्तिः मनसि भवतीति मनोभवः तेन मनोभवेन ।

भावार्थः—इन्दुमतीहस्तग्रहणसमये अजस्य मणिबन्धसमीपे रोमाञ्चो जातः । इन्दुमत्या अङ्गुलयश्च स्विन्नाः अभवन् । एतेन प्रतीयते यत् कामदेवेन स्वकीयो व्यापारः तस्मिन् युगले पृथक् पृथक् समभागे विभक्त इति भावः ।

सञ्जीविनी—वरः कण्टकितः पुलकितः प्रकोष्ठो यस्य स आसीत् । "सूच्यग्रे क्षुद्रशत्रौ च रोमहर्षे च कण्टकः" इत्यमरः । कुमारी स्विन्नाङ्गुलिः संववृते बभूव । अत्रोत्प्रेक्षते तस्मिन्द्वये मिथुने तत्क्षणमात्मवृत्तिः सात्त्विकोदयरूपा वृत्तिर्मनोभवेन कामेन समं विभक्तेव पृथक्कृतेव । प्राक्सिद्धस्याप्यनुरागसाम्यस्य संप्रति तत्कार्यदर्शनात्पाणिस्पर्शकृतत्वमुत्प्रेक्षते । अत्र वात्स्यायनः—कन्या तु प्रथमसमागमे स्विन्नाङ्गुलिः स्विन्नमुखी च भवति । पुरुषस्तु रोमाञ्चितो भवति । एभिरनयोर्भावं परीक्षेत्' इति । स्त्रीपुरुषयोः स्वेदरोमाञ्चाभिधानं सात्त्विकमात्रोपलक्षणम् । न तु प्रतिनियमो विवक्षित एभिरिति बहुवचनसाम-र्थ्यात् । एवं सति कुमारसंभवे—'रोमोद्गमः प्रादुरभूदुमायाः स्विन्नाङ्गुलिः पुंगवकेतुरासीत्' इति व्युत्क्रमवचनं न दोषायेति । 'वृत्तिस्तयोः पाणिसमागमेन समं विभक्तेव मनोभवस्य' इत्यपरार्धस्य पाठान्तरे व्याख्यानानन्तरं पाणिसमा-गमेन पाण्योः संस्पर्शेन कर्त्रा तयोर्वधूवरयोर्मनोभवस्य वृत्तिः स्थितिः समं विभक्तेव समीकृतेवेत्यर्थः ।

भाषार्थ—इन्दुमती के हाथ को अपने हाथ में ले लेने पर अज के हाथ में रोमाञ्च हो गया और इन्दुमती की अंगुलियों में पसीना आने लगा । उस समय ऐसा मालूम हुआ, मानों कामदेव ने अपनी सात्त्विक वृत्ति को उन दोनों में बराबर-बराबर बाँट दिया है । इसलिए दोनों में समान रूप से सात्त्विक भाव का उदय हुआ ॥ २२ ॥

तयोरपाङ्गप्रतिसारितानि क्रियासमापत्तिनिर्वर्तितानि ।
ह्रीयन्त्रणामानशिरे मनोज्ञामन्योन्यलोलानि विलोचनानि ॥ २३ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः—अपाङ्गप्रतिसारितानि क्रियासमापत्तिनिर्वर्तितानि अन्योन्यलोलानि तयोः विलोचनानि मनोज्ञां ह्रीयन्त्रणाम् आनशिरे।

व्याख्या—अपाङ्गप्रतिसारितानि=नेत्रप्रान्तप्रवर्तितानि। क्रियासमापत्तिनिर्वर्तितानि=निरीक्षणयदृच्छासंगतिप्रत्यावर्तितानि। अन्योन्यलोलानि=परस्परसतृष्णानि। तयोः=वधूवरयोः दम्पत्योः अजेन्दुमत्योः। विलोचनानि=नयनानि। मनोज्ञां=रम्याम्। ह्रीयन्त्रणां=लज्जासङ्कोचम्। आनशिरे=प्राप्तानि।

समासः—अपाङ्गन्तीति अपाङ्गाः अपाङ्गेषु प्रतिसारितानि अपाङ्गप्रतिसारितानि। क्रियायाः समापत्तिरिति क्रियासमापत्तिः क्रियासमापत्त्या निर्वर्तितानि क्रियासमापत्तिनिर्वर्तितानि। अन्योन्यस्मिन् लोलानि अन्योन्यलोलानि। मनो जानातीति मनोज्ञा तां मनोज्ञाम्। ह्रिया यन्त्रणा ह्रीयन्त्रणा तां ह्रीयन्त्रणाम्।

भावार्थः—अप्राङ्गपर्यन्तं प्रसारितानि निरीक्षणयदृच्छया प्रत्यावर्तितानि परस्परावलोकनोत्सुकानि वधूवरयोः अजेन्दुमत्योः नेत्राणि लज्जया सङ्कोचमञ्चितानि। अर्थाद् द्वयोः विकसिता दृष्टिः लज्जया नम्रीभवतिस्मेति भावः।

सञ्जीविनी—अपाङ्गेषु नेत्रप्रान्तेषु प्रतिसारितानि प्रवर्तितानि क्रिययोर्निरीक्षणलक्षणयोः समापत्त्या यदृच्छासंगत्या निवर्तितानि प्रत्याकृष्टान्यन्योऽन्यस्मिल्लोलानि सतृष्णानि 'लोलश्चलसतृष्णः' इत्यमरः। तयोर्दम्पत्योर्विलोचनानि दृष्टयो मनोज्ञां रम्यां ह्रिया निमित्तेन यन्त्रणां संकोचमानशिरे प्रापुः।

भाषार्थ—वे दोनों एक दूसरे को कनखियों से देखते थे और आंखें चार होते ही लज्जा से अपनी-अपनी आँखों को संकुचित कर लेते थे। इस प्रकार दोनों का यह लज्जा भरा संकोच देखनेवालों को बड़ा ही सुन्दर लगता था॥ २३॥

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्॥ २४॥

अन्वयः—तत् मिथुनम् उदर्चिषः कृशानोः प्रदक्षिणप्रक्रमणात् मेरोः उपान्तेषु वर्तमानम् अन्योन्यसंसक्तम् अहस्त्रियामम् इव चकासे।

व्याख्या—तन्मिथुनम्=तद्युगलम्, तद् द्वन्द्वम्। उदर्चिषः=उद्गतज्वालस्य कृशानोः=वह्नेः, पावकस्य। प्रदक्षिणप्रक्रमणात्=प्रदक्षिणाकरणात्। मेरोः=सुमेरुपर्वतस्य। उपान्तेषु=समीपेषु। वर्तमानं=आवर्तमानम्, सुमेरुपर्वत-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रदक्षिणां कुर्वन् । अन्योन्यसंसक्तम्=परस्परसंगतम् । अहस्त्रियामं=रात्रिन्दिवम् । इव=यथा। चकासे=बभासे।

समासः—तयोः मिथुनं तन्मिथुनम् । प्रदक्षिणं यत् प्रक्रमणं प्रदक्षिणप्रक्रमणं तस्मात् प्रदक्षिणप्रक्रमणात् । उत् अर्चिर्यस्य स उदर्चिः तस्योदर्चिषः । अन्योऽन्यस्मिन् संसक्तमिति अन्योन्यसंसक्तम् । अहश्च त्रियामा चानयोः समाहारः अहस्त्रियामम् ।

भावार्थः—अजेन्दुमत्योः युगलं प्रज्वलितहुताग्नेः प्रदक्षिणं कुर्वत् सुमेरुपर्वतस्य प्रदक्षिणां विदधत् परस्परं संमिलितं रात्रिन्दिनमिव देदीप्यते स्मेतिभावः ।

सञ्जीविनी—तन्मिथुनमुदर्चिष उन्नतज्वालस्य कृशानोर्वह्नेः प्रदक्षिणप्रक्रमणात्प्रदक्षिणीकरणात् मेरोरुपान्तेषु समीपेषु वर्तमानमावर्तमानं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वदित्यर्थः । अन्योन्यसंसक्तं परस्परसंगतं मिथुनस्याप्येतद्विशेषणम् । अहश्च त्रियामा चाहस्त्रियामं रात्रिन्दिवमिव समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः । चकासे दिदीपे ।

भाषार्थ—जिस समय अज और इन्दुमती दोनों हवन से प्रदीप्त अग्नि की प्रदक्षिणा कर रहे थे उस समय मालूम पड़ता था कि मानो दिन और रात एक साथ मिलकर सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा कर रहे हैं ।। २४ ।।

नितम्बगुर्वी गुरुणा प्रयुक्ता वधूर्विधातृप्रतिमेन तेन ।
चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ ॥ २५ ॥

अन्वयः—नितम्बगुर्वी मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती सा वधूः विधातृप्रतिमेन तेन गुरुणा प्रयुक्ता 'सती' अग्नौ लाजविसर्गं चकार ।

व्याख्या—नितम्बगुर्वी=स्थूलनितम्बा । विधातृप्रतिमेन=ब्रह्मतुल्येन । तेन=प्रसिद्धेन । गुरुणा=पुरोहितेन । प्रयुक्ता=प्रेरिता । मत्तचकोरनेत्रा=प्रसन्नचक्रवाकनयना । लज्जावती=ह्रीमती । सा=पूर्वोक्ता । वधूः=इन्दुमती अग्नौ=वह्नौ । लाजानां=भृष्टधान्यानाम् । विसर्गं=त्यागम् । चकार=कृतवती ।

समासः—नितम्बेन गुर्वी नितम्बगुर्वी । विशेषेण धारयतीति विधाता तेन, विधात्रा प्रतिमः विधातृप्रतिमः तेन विधातृप्रतिमेन । मत्तश्चासौ चकोरः मत्तचकोरः मत्तचकोरस्य नेत्रे इव नेत्रे यस्याः सा मत्तचकोरनेत्रा । लाजायाः विसर्गः लाजविसर्गः तं लाजविसर्गम् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—महन्नितम्बा प्रसन्नचकोरनयना लज्जावती इन्दुमती ब्रह्मतुल्येन पुरोधसा प्रेरिता सती अग्नौ लाजाहुतिं दत्तवतीति भावः।

सञ्जीविनी—नितम्बेन गुर्व्यलघ्वी। 'दुर्धरालघुनोः गुर्वी' इति शाश्वतः। विधातृप्रतिमेन ब्रह्मतुल्येन तेन गुरुणा याजकेन प्रयुक्ता जुहुधीति नियुक्ता मत्त-चकोरस्येव नेत्रे यस्याः सा वधूरग्नौ लाजविसर्गं चकार।

भावार्थ—विशाल नितम्बवाली मदोन्मत्त चकोर के समान चंचल नेत्रवाली सलज्ज इन्दुमती ने ब्रह्मा के समान विद्वान् उस पुरोहित के कहने पर अग्नि में लावा का हवन किया ॥ २५ ॥

हविः शमीपल्लवलाजगन्धा पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे ॥ २६ ॥

अन्वयः—हविः शमीपल्वलाजगन्धी पुण्यः धूमः कृशानोः उदियाय कपोलसंसर्पिशिखः सन् सः तस्याः मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे।

व्याख्या—हविःशमीपल्लवलाजगन्धी =आज्यादिशिवाकिशलयभृष्टधान-सौरभः। पुण्यः=पवित्रः। धूमः कृशानोः=अनलात्। उदियाय=उत्थितः। कपोलसंसर्पिशिखः=गण्डस्थलप्रसरणशीलचूडः। सः=धूमः। तस्याः=इन्दु-मत्याः। मुहूर्तकर्णोत्पलतां=क्षणकर्णकमलतां, कर्णभूषणताम्। प्रपेदे=पाप।

समासः—शम्याः पल्लवाःशमीपल्लवाःहविश्च शमीपल्लवाश्च लाजाश्चेत्ये-तेषामितरेतरद्वन्द्वे हविःशमीपल्लवलाजाः तेषां हविःशमीपल्लवलाजानां गन्धोऽ-स्यास्तीति हविःशमीपल्लवलाजगन्धी। कपोलयोः संसर्पिणी शिखा यस्य स कपोलसंसर्पिशिखः। उत्पलस्य भावः उत्पलता मुहूर्तम् उत्पलता मुहूर्तोत्पलता तां मुहूर्तोत्पलताम्।

भावार्थः—घृतशमीपत्रलाजसौरभः धूमः इन्दुमत्याः कपोलपर्यन्तमुपस्थाय क्षणं यावत् तत्कर्णाभरणतामजायत। अर्थात् कपोलं यावदुपस्थितो होमधूमः एवं प्रतीयते स्म यद् इन्दुमती नीलकमलस्य कर्णभूषणं परिधत्ते स्मेति भावः।

सञ्जीविनी—हविष आज्यादेः शमीपल्लवानां लाजानां च गन्धोऽस्या-स्तीति हविःशमीपल्लवलाजगन्धी। 'शमीपल्लवमिश्राँल्लाजानञ्जलिना वपति' इति कात्यायनः। पुण्यो धूमः कृशानोः पावकादुदियायोद्भूतः। कपोलयोः संसर्पिणी प्रसरणशीला शिखा यस्य स तथोक्तः स धूमस्तस्या वध्वा मुहूर्त-कर्णोत्पलतां प्रपेदे।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—घी, शमी पल्लव और लावों के गन्धवाला पवित्र धुआँ अग्नि से निकलकर जब इन्दुमती के कपोल तक पहुँचा तब ऐसा मालूम पड़ा मानो इन्दुमती ने नीलकमल का कर्णफूल पहना हो ।। २६ ।।

तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम् ।
वधूमुखं पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद् बभूव ।। २७ ।।

अन्वयः—तत् वधूमुखम् आचारधूमग्रहणात् अञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरं पाटलगण्डलेखं बभूव ।

व्याख्या—तद् = पूर्वोक्तम् । वधूमुखं = इन्दुमत्याननम् । आचारधूमग्रहणात् = माङ्गलिकधूमस्वीकारात् । अञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षम् = कज्जलमिश्राश्रुजले व्याप्तनयनम् । प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम् = प्रम्लानयवाङ्कुरकर्णभूषणम् । पाटलगण्डलेखं = ईषद्रक्तगण्डस्थलम् । च बभूव = अजायत ।

समासः—वध्वा मुखं वधूमुखम् आचारेण प्राप्तः आचारप्राप्तः आचारप्राप्तश्चासौ धूमः आचारधूमः । आचारधूमस्य ग्रहणं आचारधूमग्रहणं तस्मात् आचारधूमग्रहणात् । अञ्जनस्य क्लेदः अञ्जनक्लेदः अञ्जनक्लेदेन समाकुले अक्षिणी यस्मिन् तत् अञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षम् । प्रकर्षेण म्लानः बीजाङ्कुर एव कर्णपूरो यस्मिन् तत् प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम् । पाटला गण्डलेखा यस्मिन् तत् पाटलगण्डलेखम् ।

भावार्थः—तदानीमिन्दुमत्या मुखं माङ्गलिकधूमसम्पर्काद् अश्रुपूर्णं जातं यवाङ्कुरस्य कर्णभूषणं म्लानमभूत् कपोलस्थले रक्तवर्णमजायतेति भावः ।

सञ्जीविनी—तद्वधूमुखमाचारेण प्राप्ताद्धूमग्रहणात् । अञ्जनस्य क्लेदोऽञ्जन-क्लेदः अञ्जनमिश्रबाष्पोदकमित्यर्थः तेन समाकुलाक्षम् । प्रम्लानो बीजाङ्कुरो यवाङ्कुर एव कर्णपूरोऽवतंसो यस्य तत्पाटलगण्डलेखमरुणगण्डस्थलं च बभूव ।

भाषार्थ—उस वैवाहिक अग्नि का धुआँ लगने से इन्दुमती की आँखों से आँजन मिला हुआ आँसू बहने लगा, कानों के कर्णभूषण कुम्हला गये; और गाल लाल हो गये ।। २७ ।।

तौ स्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा पुरन्ध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम् ।
कन्याकुमारौ कनकासनस्थावार्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम् ।। २८ ।।

अन्वयः—कनकासनस्थौ तौ कन्याकुमारौ स्नातकैः बन्धुमता राज्ञा च पुरंध्रिभिः च क्रमशः प्रयुक्तम् आर्द्राक्षतारोपणं अन्वभूताम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या—कनकासनस्थौ=सुवर्णपीठोपविष्टौ। तौ=द्वौ। कन्याकुमारौ=वधूवरौ, अजेन्दुमत्यौ। स्नातकैः=गृहस्थविशेषैः। बन्धुमता=स्वजनपुरःसरेण। राज्ञा=भोजेन च=अपि। पुरन्ध्रिभिः=पुत्रवतीभिः। क्रमशः=क्रमेण प्रयुक्तं=कृतम्। आर्द्राक्षतारोपणम्=कुंकुमाक्ताखण्डतण्डुलप्रक्षेपणम्। अन्वभूतां=अनुभूतवन्तौ। साशीर्वचनमक्षतान् गृहीतवन्तावित्यर्थः।

समासः—कनकस्यासनं कनकासनं कनकासने तिष्ठत इति कनकासनस्थौ। स च सा च तौ। कन्या च कुमारश्चेति कन्याकुमारौ। स्नान्तीति स्नातकाः तैः स्नातकैः। बन्धवोऽस्यास्तीति बन्धुमान् तेन बन्धुमता! पुरं धरन्तीति पुरन्ध्रयः ताभिः पुरन्ध्रिभिः। आर्द्राश्च ते अक्षता आर्द्राक्षता आर्द्राक्षतानामारोपणम् आर्द्राक्षतारोपणम् तत् आर्द्राक्षतारोपणम्।

भावार्थः—अग्निपरिक्रमणानन्तरं सुवर्णनिर्मितसिंहासनोपरि समुपविष्टौ तौ वधूवरौ अजेन्दुमत्यौ नागरिकैः गृहस्थैः कुटुम्बिजनैः भोजेन पतिपुत्रवतीभिः नारीभिश्च क्रमशः साशीर्वादं प्रक्षिप्तमाङ्गलिकस्य कुंकुमाक्षतस्यानुभवं कृतवन्तौ इति भावः।

सञ्जीविनी—कनकासनस्थौ तौ कन्याकुमारौ स्नातकैर्गृहस्थविशेषैः। कृतसमावर्तनैरित्यर्थः। 'स्नातकस्त्वाप्लुतो व्रती' इत्यमरः बन्धुपुरःसरेणेत्यर्थः। राज्ञा च पुरन्ध्रिभिः पतिपुत्रवतीभिर्नारीभिश्च क्रमशः प्रयुक्तं स्नातकादीनां पूर्वपूर्ववैशिष्ट्यात् क्रमेण कृतमार्द्राक्षतानामारोपणमनुभूतवन्तौ।

भाषार्थ—सुवर्ण के सिंहासन पर बैठे हुए उन इन्दुमती और अज दोनों के ऊपर स्नातक (समावर्तनसंस्कारसम्पन्न गृहस्थ विशेष) एवं बन्धुओं के साथ राजा भोज और पतिपुत्रवती सौभाग्यवती स्त्रियों ने बारी-बारी से गीले अक्षत छोड़कर उन्हें आशीर्वाद दिया ॥ २८ ॥

इति स्वसुर्भोजकुलप्रदीपः संपाद्य पाणिग्रहणं स राजा।
महीपतीनां पृथगर्हणार्थं समादिदेशाधिकृतानधिश्रीः ॥ २९ ॥

अन्वयः—अधिश्रीः भोजकुलप्रदीपः सः राजा इति स्वसुः पाणिग्रहणं सम्पाद्य महीपतीनां पृथक् अर्हणार्थं अधिकृतान् समादिदेश।

व्याख्या—अधिश्रीः=प्राप्तलक्ष्मीकः, लक्ष्मीवान्। भोजकुलप्रदीपः=विदर्भवंशदीपकः। सः=प्रसिद्धः। राजा=नृपतिः। इति=पूर्वोक्तप्रकारेण। स्वसुः=भगिन्याः इन्दुमत्याः। पाणिग्रहणं=हस्तस्वीकरणं, विवाहम्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पाद्य = कारयित्वा। महीपतीनां = पृथ्वीपालानाम्। पृथगर्हणार्थम् = समुचितसत्कारार्थम्। अधिकृतान् = अधिकारिणः यथोचितसत्कारकरणार्थं नियुक्तान् पुरुषान्। आदिदेश = आदिष्टवान्।

समासः—अधिगताः श्रीः येन यस्य वा स अधिश्रीः। भोजानां कुलं भोजकुलं भोजकुलस्य प्रदीपः भोजकुलप्रदीपः। पाणेः ग्रहणमिति पाणिग्रहणं तत् पाणिग्रहणम्। मह्यते इति मही मह्याः पतयः महीपतयः तेषां महीपतीनाम्। अधिकमुपरि क्रियन्ते इति अधिकृताः तान् अधिकृतान्।

भावार्थः—लक्ष्मीवान् भोजकुलदीपको भोजः एवं भगिन्या इन्दुमत्या विवाहकृत्यं सम्पाद्य अन्यानुपस्थितान् भूपालान् पृथक्-पृथक् यथोचितं सत्कर्तुं नियुक्तान् अधिकारिणः आदेशं दत्तवानिति भावः।

सञ्जीविनी—अधिश्रीः अधिगता प्राप्ता श्रीः संपत्तिः येन सः अधिकसंपन्नो भोजकुलप्रदीपः स राजा। इति स्वसुरिन्दुमत्याः पाणिग्रहणं विवाहं संपाद्य कारयित्वा। महीपतीनां राज्ञां पृथगेकैकशोऽर्हणार्थं पूजार्थमधिकृतानधिकारिणः समादिदेशाज्ञापयामास।

भाषार्थ—इस प्रकार सम्पत्तिशाली भोजवंश के दीपक राजा भोज ने अपनी बहन इन्दुमती का विवाह-संस्कार समाप्त करके दूसरे राजाओं को पृथक्-पृथक् आदर सत्कार करने के लिए अपने अधिकारियों को आदेश दिया॥ २९॥

> लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते ह्रदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः।
> वैदर्भमामन्त्र्य ययुस्तदीयां प्रत्यर्प्य पूजामुपदाछलेन॥ ३०॥

अन्वयः—मुदः लिङ्गैः संवृतक्रियाः ते गूढनक्राः प्रसन्नाः ह्रदाः इव आमन्त्र्य तदीयां पूजां उपदाछलेन प्रत्यर्प्य ययुः।

व्याख्या—मुदः = हर्षस्य सन्तोषस्य। लिङ्गैः = चिह्नैः हासादिभिः। संवृतविक्रियाः = निगूहितविकृतयः, निगूहिताशुभद्वेषाः। अत एव प्रसन्नाः = सन्तुष्टाः। गूढनक्राः = अन्तर्लीनग्रहाः। ह्रदा इव = सरसो यथा। ते = पूर्वोक्ताः स्वयम्वरे समागताः। नृपाः = राजानः। विदर्भं = भोजम्। आमन्त्र्य = आपृच्छ्य। तदीयां = भोजसम्बन्धिनीम्। पूजां = सत्कारम्। उपदाछलेन = उपायनव्याजेन। प्रत्यर्प्य = परावर्तनं कृत्वा। ययुः = गतवन्तः, स्वस्वराजधानीं प्रति निवृत्ताः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समासः—संवृता विक्रिया यैः ते संवृतविक्रियाः। गूढा नक्रा येषु ते गूढनक्राः। उपदायाः छलमुपदाछलं तेन उपदाछलेन। विदर्भस्य राजा वैदर्भः तं वैदर्भम्। तस्य इयं तदीया तां तदीयाम्।

भावार्थः—प्रसन्नताचिह्नद्वारा निगूहिताशुभद्वेषा बहिःप्रसन्नाः सन्तः नक्रवन्तः तडागा इव अन्ये राजानः भोजमापृच्छ्य उपहारव्याजेन भोजराजेन प्रदत्तं सत्कारं परावर्त्य स्वस्वराजधानीं प्रति प्रतस्थुरित्यर्थः।

सञ्जीविनी—मुदः संतोषस्य लिङ्गैश्चिह्नैः कपटहासादिभिः संवृतविक्रिया निगूहितमत्सराः अत एव प्रसन्ना बहिर्निर्मला गूढनक्रा अन्तर्लीनग्राहा ह्रदा इव स्थितास्ते नृपा वैदर्भभोजमामन्त्र्यापृच्छ्य तदीयां वैदर्भीयां पूजामुपदाछलेनोपायनमिषेण प्रत्यर्प्य ययुर्गतवन्तः।

भाषार्थ—जिस प्रकार भयंकर जल-जन्तुओं से युक्त होते हुए भी गंभीर सरोवर ऊपर से स्वच्छ जलवाले मालूम पड़ते हैं, उसी तरह अन्दर द्वेष रखने वाले राजा लोग भी अपने हृदयगत द्वेष को हँसी आदि के बहाने छिपाकर बाहरी प्रसन्नता व्यक्त करते थे। वे सभी विदर्भ राजा से आज्ञा लेकर और उनकी दी हुई सामग्री को भेंट के व्याज से पुनः उन्हें लौटाकर विदा हुए ॥ ३० ॥

स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम्।
आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ ॥ ३१ ॥

अन्वयः—आरम्भसिद्धौ कृतपूर्वसंवित् स राजलोकः समयोपलभ्यं तत् प्रमदामिषं आदास्यमानः 'सन्' अजस्य पन्थानं आवृत्य तस्थौ।

व्याख्या—आरम्भसिद्धौ=कार्यसफलताम्। कृतपूर्वसंवित्=प्रथमनिश्चितसङ्केतः, पूर्वनिर्धारिताजमार्गाऽवरोधः। सः=पूर्वोक्तः। राजलोकः=नृपसमूहः। समयोपलभ्यं=अजयात्रासमयप्राप्यम्। तत्=प्रसिद्धम्। प्रमदामिषं=कामिनीभोग्यवस्तु। आदास्यमानः=ग्रहीष्यमाणः अग्रे आदातुमिच्छन्। अजस्य=रघुपुत्रस्य। पन्थानं=मार्गम्। आवृत्य=प्रतिरोध्य मार्गावरोधं कृत्य। तस्थौ=स्थितः। मार्गे एकाकिनं यान्तमजं युद्धेन विजित्य स्त्रीरत्नमिन्दुमतीं हरिष्याम इत्येवं पूर्वमेव सङ्केतं कृत्य नृपा मार्गे स्थिताः।

समासः—आरम्भस्य सिद्धिः आरम्भसिद्धिः तस्यामारम्भसिद्धौ। पूर्वं कृता कृतपूर्वा कृतपूर्वा संवित् येन स कृतपूर्वसंवित्। राज्ञां लोकः राजलोकः। समये

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपलभ्यं समयोपलभ्यम् तत् समयोपलभ्यम् । प्रमदा एव आमिषमिति प्रमदामिषम् तत् प्रमदामिषम् ।

भावार्थः—यदा एकाकी अजः इन्दुमतीमादाय स्वराजधानीं प्रति गमिष्यति तदैव मार्गाऽवरोध्येनं विजित्येन्दुमतीं ग्रहीष्याम इति कृतनिश्चयाः राजानः मार्गे स्थितवन्त इति भावः ।

सञ्जीविनी—आरम्भसिद्धौ कार्यसिद्धौ विषये । पूर्वं कृता कृतपूर्वा । सुप्सुपेति समासः । कृतपूर्वा संवित्संकेतो मार्गावरोधरूप उपायो येन स तथोक्तः । 'संविद्युद्धे प्रतिज्ञायां संकेताचारनामसु' इति केशवः । स राजलोकः समयोपलभ्यमजप्रस्थानकाले लभ्यं तदा तस्यैकाकित्वादिति भावः । 'समरोपलभ्यम्' इति पाठे युद्धसाध्यमित्यर्थः । तत्प्रमदैवामिषं भोग्यवस्तु । 'आमिषं त्वस्त्रियां मांसे तथा स्याद्भोग्यवस्तुनि' इति केशवः । आदास्यमानो ग्रहीष्यमाणः सन् अजस्य पन्थानमावृत्यावरुध्य तस्थौ ।

भाषार्थ—उन राजाओं ने मिलकर पहले ही निश्चय कर लिया था कि जब अज इन्दुमती को लेकर चलें, तो उन्हें घेर लिया जाय और उनसे इन्दुमती को छीन लिया जाय । इसलिए वे अज का मार्ग रोककर बीच में ही रुक गये थे ।। ३१ ।।

भर्तापि तावत्क्रथकैशिकानामनुष्ठितानन्तरजाविवाहः ।
सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः प्रास्थापयद्राघवमन्वगाच्च ।। ३२ ।।

अन्वयः—अनुष्ठितानन्तरजाविवाहः क्रथकैशिकानां भर्ता अपि तावत् सत्त्वानुरूपाऽऽहरणकृतश्रीः 'सन्' राघवं प्रास्थापयत् 'स्वयम्' अन्वगात् च ।

व्याख्या—अनुष्ठितानन्तरजाविवाहः=कृतानुजापाणिग्रहणसंस्कारः । क्रथकैशिकानां विदर्भदेशानाम् । भर्ता=नाथः, स्वामी, अजः । अपि तावत्=तदा । सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः=उत्साहसदृशसुदायीकृतलक्ष्मीकः । सन् । राघवं=रघुपुत्रम् अजम् । प्रास्थापयत्=प्रस्थापितवान् । स्वयं=भोजः । अन्वगात्=अन्वव्रजत, किञ्चिद्दूरं तेन सह गतवान् ।

समासः—अनन्तरं जाता अनन्तरजा अनन्तरजाया विवाहः अनन्तरजाविवाहः अनुष्ठितः अनन्तरजाविवाहो येन स अनुष्ठितानन्तरजाविवाहः । सत्त्वस्य अनुरूपं सत्त्वानुरूपम् । आसमन्तात् हरणमिति आहरणम् न आहरणमिति अनाहरणम् अनाहरणमाहरणं सम्पद्यमाना कृता इति आहरणीकृता ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्त्वानुरूपं यथा स्यात्तथा आहरणीकृता श्रीः येन स सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः।

भावार्थः—अनुजाया इन्दुमत्या विवाहसंस्कारं विधिवत् सम्पाद्य विदर्भाधिपतिः भोजः स्वैश्वर्यानुरूपं दायं दत्त्वा रघुपुत्रमजं प्रस्थापयामास तथा तेन सह प्रेम्णा किञ्चित् दूरपर्यन्तमपि गतवानिति भावः।

सञ्जीविनी—अनुष्ठितः संपादितोऽनन्तरजाया अनुजाया विवाहो येन स तथोक्तः क्रथकैशिकानां देशानां भर्ता स्वामी भोजोऽपि तावत्तदा सत्त्वानुरूपमुत्साहानुरूपं यथा तथा आ समन्तात्। अनेनानियतवस्तुदानमित्यर्थः। हरणं कन्यायै देयं धनम्। तदेवाह कात्यायनः—'ऊढया कन्यया वाऽपि पत्युः पितृगृहेऽपि वा। भ्रातुः सकाशात्पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतम्।' 'यौतुकादि तु तद्देयं सुदायो हरणं च तत्' इत्यमरः आहरणीकृता श्रीर्येन तथोक्तः सन् राघवमजं प्रास्थापयत्प्रस्थापितवान्स्वयमन्वगादनुजगाम च।

भाषार्थ—अपनी छोटी वहन इन्दुमती का विवाह कर देने के वाद विदर्भ नरेश भोज ने अपनी सम्पत्ति के अनुसार दहेज देकर अज को विदा किया और वे स्वयं पहुंचाने के लिए उनके पीछे-पीछे चले॥ ३२॥

तिस्रस्त्रिलोकप्रथितेन सार्धमजेन मार्गे वसतीरुषित्वा।
तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः पर्वात्यये सोम इवोष्णरश्मेः॥ ३३॥

अन्वयः—कुण्डिनेशः मार्गे त्रिलोकप्रथितेन अजेन सार्द्धं तिस्रः वसतीः उषित्वा पर्वात्यये उष्णरश्मेः सोमः इव तस्मात् अपावर्तत।

व्याख्या—कुण्डिनेशः = विदर्भराजः। त्रिलोकप्रथितेन = त्रिभुवनप्रसिद्धेन। अजेन = रघुपुत्रेण, सार्धं = सह। मार्गे = पथि। तिस्रः = त्रिसंख्याकाः। वसतीः = रात्रीः। उषित्वा = स्थित्वा, त्रिरात्रं तेन सह निवासं कृत्वा। पर्वात्यये = दर्शान्ते। उष्णरश्मेः = सूर्यात्। चन्द्र इव सोमो यथा। तस्मात् = अजात्। अपावर्तत = प्रतिनिवृत्तः।

समासः—त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकं त्रिलोके प्रथितः त्रिलोकप्रथितः तेन त्रिलोकप्रथितेन। कुण्डिनस्य ईशः कुण्डिनेशः। पर्वणः अत्ययः पर्वात्ययः तस्मिन् पर्वात्यये। उष्णा रश्मयो यस्य सः उष्णरश्मिः तस्य उष्णरश्मेः।

भावार्थः—कुण्डिननगरनृपो भोजः विश्वविश्रुतेन त्रिलोकप्रख्यातेन तेन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अजेन साकं मार्गे रात्रित्रयमुषित्वा तत्समीपतः तथैव परावृत्तः यथा अमावस्यासमाप्त्यनन्तरं सूर्यसमीपतः चन्द्रमा निवर्तते इति भावः।

सञ्जीविनी––कुण्डिनं विदर्भनगरं तस्येशो भोजस्त्रिषु लोकेषु प्रथितेनाजेन सार्धं मार्गे पथि तिस्रो वसती रात्रीरुषित्वा स्थित्वा 'वसती रात्रिवेश्मनोः' इत्यमरः। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया। पर्वात्यये दर्शान्त उष्णरश्मेः सूर्यात्सोमश्चन्द्र इव तस्मादजादपावर्तत। तं विसृज्य निवृत्त इत्यर्थः।

भाषार्थ––(यह ज्योतिष शास्त्र का सिद्धान्त है कि सूर्य और चन्द्रमा अमावस्या के दिन एक साथ रहते हैं और बाद में अमावस्या के अन्त में चन्द्रमा सूर्य से अलग हो जाते हैं) जिस प्रकार अमावस्या के अन्त में सूर्य के पास से चन्द्रमा लौट जाते हैं उसी प्रकार तीनों लोक में प्रसिद्ध अज के साथ मार्ग में तीन रात बिताकर विदर्भनरेश भोज लौट गये ॥ ३३ ॥

प्रमन्यवः प्रागपि कोसलेन्द्रे प्रत्येकमात्तस्वतया बभूवुः।
अतो नृपाश्चक्षमिरे समेताः स्त्रीरत्नलाभं न तदात्मजस्य ॥ ३४ ॥

अन्वयः—नृपाः प्राक् अपि आत्तस्वतया कोसलेन्द्रे प्रमन्यवः बभूवुः अतः समेताः 'सन्तः' तदात्मजस्य स्त्रीरत्नलाभं न चक्षमिरे।

व्याख्या—नृपाः = राजानः। प्रागपि = पूर्वमपि। प्रत्येकं = पृथक्-पृथक् एकैकम्। आत्तस्वतया = दिग्विजयकाले रघुणा गृहीतधनत्वेन। कोसलेन्द्रे = रघौ। प्रमन्यवः = प्रवृद्धवैराः बभूवुः = जाताः। अतः अस्मात् कारणात्। समेताः = संगताः, संघीभूताः सन्तः। तदात्मजस्य = रघुपुत्रस्य अजस्य। स्त्रीरत्नलाभं = पत्नीरत्नप्राप्तिम्। न चक्षमिरे = नहि सोढवन्तः।

समासः—कोसलानामिन्द्रः कोसलेन्द्रः तस्मिन् कोसलेन्द्रे। आत्तं स्वत्वं येषां ते आत्तस्वत्वा आत्तस्वत्वानां भावः आत्तस्वता तया आत्तस्वतया। स्त्रीरेव रत्नं स्त्रीरत्नं यद्वा स्त्रीषु रत्नं स्त्रीरत्नम् स्त्रीरत्नस्य लाभः स्त्रीरत्नलाभः तं स्त्रीरत्नलाभम्। तस्य आत्मजः तदात्मजः तस्य तदात्मजस्य। प्ररूढा मन्यवो येषां ते प्ररूढमन्यवः।

भावार्थः—अजमार्गावरोधका राजानः रघुदिग्विजयसमये रघुणा तेभ्यो गृहीतधनत्वात् तेन कोसलपतिना सह पूर्वत एव बद्धवैरा आसन्। अतस्ते संमिलिताः सन्तः रघुपुत्रस्य अजस्य स्त्रीरत्नेन्दुमतीलाभं न सोढवन्त इति भावः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—नृपा राजानः प्रागपि प्रत्येकमात्तस्वतया दिग्विजये गृहीतघनत्वेन कोसलेन्द्रे रघौ प्रमन्यवो रूढवैरा बभूवुः। अतो हेतोः स्वयम्बरार्थं समेताः सङ्गताः सन्तस्तदात्मजस्य रघुसूनोः स्त्रीरत्नलाभं च चक्षमिरे न सेहिरे।

भाषार्थ—रघु ने अपने दिग्विजय के समय सभी राजाओं का धन छीन लिया था। इसलिए वे सब उनसे पहले से ही विरोधी हो चुके थे। इस कारण स्वयंवर में एकत्र सम्मिलित हुए वे सभी राजे इस समय रघु के पुत्र अज का स्त्रीरत्न लाभ सहन नहीं कर सके॥ ३४॥

तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्यां रुरोध राजन्यगणः स दृप्तः।
बलिप्रदिष्टां श्रियमाददानं त्रैविक्रमं पादमिवेन्द्रशत्रुः॥ ३५॥

अन्वयः—दृप्तः सः राजन्यगणः भोजकन्याम् उद्वहन्तं तं बलिप्रदिष्टां श्रियम् आददानं त्रैविक्रमं पादम् इन्द्रशत्रुः इव पथि रुरोध।

व्याख्या—दृप्तः = गर्वितः, उद्दण्डः। सः = पूर्वोक्तः। राजन्यगणः = राजपुत्रसमूहः। भोजकन्याम् = भोजानुजामिन्दुमतीम्। उद्वहन्तं = नयन्तम्। तं = अजम्। बलिप्रदिष्टां = विरोचनपुत्रदत्ताम्। श्रियं = लक्ष्मीम्। आददानं = स्वीकुर्वाणम्, बलिना दत्तां देवलक्ष्मीं स्वीकुर्वन्तम्। त्रैविक्रमं = त्रिविक्रमसम्बन्धिनम्। पादं = वामनरूपविष्णुचरणम्। इन्द्रशत्रुः = देवराजरिपुप्रह्लादः इव = यथा। पथि = मार्गे। रुरोध = रुद्धवान्।

समासः—भोजस्य कन्या भोजकन्या तां भोजकन्याम्। राज्ञोऽपत्यानि राजन्यानि राजन्यानां गणः राजन्यगणः। बलिना प्रदिष्टा बलिप्रदिष्टा तां बलिप्रदिष्टाम्। इन्द्रस्य शत्रुः इन्द्रशत्रुः।

भावार्थः—उद्दण्डो राजसमूहो भोजावरजामिन्दुमतीं नयन्तं रघुपुत्रमजं मार्गे तथैवावारुधत् यथा बलिना दत्तां दैत्यलक्ष्मीं स्वीकुर्वाणं वामनं प्रह्लादो रुरोध। प्रह्लादद्वारा वामनावरोधस्य कथा ब्रह्माण्डपुराणीयाऽवगन्तव्या तथाहि—

विरोचनविरोधेऽपि प्रह्लादः प्राक्तनं स्मरन्।
विष्णोस्तु क्रममाणस्य पादाम्भोजं रुरोध ह॥

सञ्जीविनी—दृप्त उद्धतः स राजन्यगणो राजसङ्घातः भोजकन्यामुद्वहन्तं नयन्तं तमजं बलिना वैरोचनिना प्रदिष्टां दत्तां श्रियमाददानं स्वीकुर्वाणं त्रिविक्रमस्येमं त्रैविक्रमं पादमिन्द्रशत्रुः प्रह्लाद इव पथि रुरोध। तथा च ब्रह्माण्ड-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुराणे—'विरोचनविरोधेऽपि प्रह्लादः प्राक्तनं स्मरन् । विष्णोस्तु क्रममाणस्य पादाम्भोजं रुरोध ह ।।' इति ।

भाषार्थ—जिस प्रकार बलि द्वारा दी गई लक्ष्मी को ग्रहण करते समय इन्द्रशत्रु प्रह्लाद ने वामन के चरण को बीच में ही रोक लिया था उसी प्रकार इन्दुमती को ले जाते हुए अज को उस उद्धत राज समूह ने रास्ते में रोक लिया ।। ३५ ।।

तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधमादिश्य पित्र्यं सचिवं कुमारः ।
प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरङ्गः ।। ३६ ।।

अन्वयः—सः कुमारः तस्याः रक्षार्थम् अनल्पयोधं पित्र्यं सचिवम् आदिश्य उत्तरङ्गः, शोणः भागीरथीम् इव तां पार्थिववाहिनीम् प्रत्यग्रहीत ।

व्याख्या—सः=पूर्वोक्तः, प्रसिद्धः । कुमार=स्वसौन्दर्येण लज्जितमदनः । युवराजोऽजः । तस्याः=इन्दुमत्याः । संरक्षार्थं=संरक्षणाय । अनल्पयोधं=अधिकभटम् । पित्र्यं=पितृपरम्परागतम् विश्वस्तम् । सचिवं=मन्त्रिणम् । आदिश्य=आज्ञाप्य । तां=मार्गस्थिताम् । पार्थिववाहिनीम्=नृपसेनाम् । भागीरथीं=भगीरथरथस्थितावच्छिन्नप्रवाहां गङ्गाम् । उत्तरङ्गः=उच्छ्वलद्वीचिः शोणनामा नदः । इव=यथा । प्रत्यग्रहीत्=अभियुक्तवान् तैः सर्वैः सह युद्धं चकारेत्यर्थः ।

समासः—न अल्पा अनल्पा अनल्पा योधा यस्य सः अनल्पयोधः तम् अनल्पयोधम् । पितुरागतं पित्र्यं तं पित्र्यम् । पृथिव्या ईश्वराः पार्थिवाः पार्थिवानां वाहिनीति पार्थिववाहिनी तां पार्थिववाहिनीम् । उद्गच्छन्तस्तरङ्गाःयस्मिन् स उत्तरङ्गः । रक्षायै इति रक्षार्थम् । कुमारयति खेलयतीति कुमारः अथवा कुत्सितः लज्जितः मारो मदनो येन स कुमारः ।

भावार्थः—तेन अजेन इन्दुमत्या रक्षार्थं पर्याप्तैयोद्धृभिः साकं पितृपितामहक्रमेण वर्तमानं सर्वथा विश्वसनीयं मंत्रिणं नियुज्य तां शत्रुसेनामवरोध्य तथैवाग्रे स्थितो यथा विशालतरङ्गवानब्धिगङ्गायाः समुद्धतां धारामवरुणद्धीति भावः ।

सञ्जीविनी—स कुमारोऽजस्तस्या इन्दुमत्या रक्षार्थमनल्पयोधं बहुभटं पितुरागतं पित्र्यम् आप्तमित्यर्थः । सचिवमादिश्याज्ञाप्य तां पार्थिववाहिनीं राजसेनाम् । 'ध्वजिनी वाहिनी सेना' इत्यमरः । भागीरथीमुत्तरङ्गः शोणः शोणाख्यो नद इव प्रत्यग्रहीदभियुक्तवान् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषार्थ—उस अज ने इन्दुमती की रक्षा के लिये बहुत से योद्धाओं के साथ पिता के समय से ही वर्तमान विश्वासपात्र मन्त्री को नियुक्त कर स्वयं उस सेना को रोककर उसी प्रकार खड़े हो गये, जिस प्रकार बाढ़ के समय विशाल तरङ्गों वाला सोनभद्र गंगा जी की धारा को रोक देता है ।। ३६ ।।

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरङ्गसादी तुरगाधिरूढम् ।
यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं, तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम् ।। ३७ ।।

अन्वयः—पत्तिः पदातिं रथेशः रथिनं तुरङ्गसादी तुरङ्गाधिरूढं गजस्य यन्ता गजस्थम् अभ्यपतत् इत्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि युद्धम् बभूव ।

व्याख्या—पत्तिः=पादगामी । पदातिं=पादचारिणम् । अभ्यपतत्=युयोध । रथेशः=स्यन्दनस्थः रथी । रथिनं=रथस्थितं, स्यन्दनस्थम् अभ्यपतत् । तुरङ्गसादी=अश्वारूढः । तुरङ्गाधिरूढम्=अश्वसादिनम् अभ्यपतत् । गजस्य=हस्तिनः । यन्ता=हस्तिपकः । गजस्थं=हस्त्यारूढम् पुरुषमभ्यपतत्=युयोध । इत्थं=एवम् । तुल्यप्रतिद्वन्द्वि=समानयोधम् । एकजातीयप्रतिभटम् । युद्धं=रणम् । बभूव=अभूत् ।

समासः—पद्भ्यां गच्छतीति पत्तिः । पादाभ्यां गच्छतीति पदातिः तं पदातिम् । रथस्येशः रथेशः रथोऽस्यास्तीति रथी तं रथिनम् । तुरङ्गं सादयतीति तुरङ्गसादी । तुरगमधिरूढः तुरगाधिरूढः तं तुरगाधिरूढम् । गजे तिष्ठतीति गजस्थः तं गजस्थम् । तुल्याः प्रतिद्वन्द्विनः यस्मिन् तत् तुल्यप्रतिद्वन्द्वि ।

भावार्थः—पदगामी पदगामिना सहायुध्यत । रथी रथिना साकमयुध्यत । तुरगस्थः तुरगस्थेनायुध्यत, गजस्थश्च गजस्थेन सार्द्धमयुध्यत । इत्थं परस्परं समानयोधकं युद्धमारब्धमिति भावः ।

सञ्जीविनी—पत्तिः पादचारो योद्धा पदातिं पादचारमभ्यपतत् । पदा पादाभ्यामटतीति पदातिः । 'पादस्य पदज्यातिगोपहतेषु' इत्यनेन पदादेशः । 'पदातिपत्तिपदगपादातिकपदाजयः' इत्यमरः । रथेशो रथिको रथिनं रथारोहमभ्यपतत् । तुरङ्गसाद्यश्वारोहस्तुरगाधिरूढमश्वारोहमभ्यपतत् । 'रथिनः स्यन्दनारोहा अश्वारोहास्तु सादिनः' इत्यमरः । गजस्य यन्ता हस्त्यारोहो गजस्थं पुरुषमभ्यपतत् । इत्थमनेन प्रकारेण तुल्यप्रतिद्वन्द्वयेकजातीयप्रतिभटं युद्धं बभूव । अन्योन्यं द्वन्द्वं कलहोऽस्त्येषामिति प्रतिद्वन्द्विनो योधाः। 'द्वन्द्वं कलहयुग्मयोः' इत्यमरः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ—दोनों दलों से युद्ध शुरू हो गया, पैदल पैदलों से भिड़ गये, रथ वाले रथ वालों से जूझ गये, घुड़सवार घुड़सवारों से उलझ पड़े, हाथी सवार हाथी सवारों पर टूट पड़े। इस प्रकार दोनों दलों में बराबर जोड़ का युद्ध होने लग गया ॥ ३७ ॥

नदत्सु तूर्येष्वविभाव्यवाचो नोदीरयन्ति स्म कुलोपदेशान् ।
बाणाक्षरैरेव परस्परस्य नामोर्जितं चापभृतः शशंसुः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—तूर्येषु नदत्सु सत्सु अविभाव्यवाचः चापभृतः कुलोपदेशान् न उदीरयन्तिस्म परस्परस्य ऊर्जितम् नाम बाणाक्षरैः एव शशंसुः ।

व्याख्या—तूर्येषु=रणवाद्येषु । नदत्सु=अव्यक्तं ध्वनत्सु सत्सु । अविभाव्यवाचः=अनवधार्यगिरः । चापभृतः=धनुर्धारिणः । कुलोपदेशान्=स्ववंशनामानि । नोदीरयन्ति स्मः=नहि कथयन्ति स्म । किन्तु बाणाक्षरैः=शराङ्कितैरक्षरैः । एव परस्परस्य=अन्योऽन्यस्य । ऊर्जितं=विख्यातम् प्रसिद्धम् । नाम=नामधेयम् । शशंसुः=कथयामासुः ।

समासः—विभावयितुं योग्या विभाव्या न विभाव्या अविभाव्या अविभाव्या वाचो येषां ते अविभाव्यवाचः कुलमुपदिश्यते यैस्ते कुलोपदेशाः तान् कुलोपदेशान् । बाणेषु लिखितानि बाणलिखितानि बाणलिखितानि अक्षराणि इति बाणाक्षराणि तैः बाणाक्षरैः चापं बिभ्रतीति चापभृतः ।

भावार्थः—तत्र युद्धस्थले वाद्यमानानां वाद्यानां ध्वनिना, धनुर्धारिणां वीराणां स्वपरनामगोत्रादि न ज्ञायते स्म, किन्तु प्रक्षिप्तेषु बाणेषु लिखिताक्षरैरेव परस्परं प्रसिद्धानि तेषां नामानि अवगम्यन्ते स्म । एवं वाद्यकोलाहलात् न किमपि जायते स्मेति भावः ।

सञ्जीविनी—तूर्येषु नदत्सु सत्स्वविभाव्यवाचोऽनवधार्यगिरश्चापभृतो धानुष्काः कुलमुपदिश्यते प्रख्याप्यते यैस्तैं कुलोपदेशास्तान्कुलनामानि नोदीरयन्ति स्म नोच्चारयामासुः । श्रोतुमशक्यत्वाद्वाचो नाब्रुवन्नित्यर्थः । किंतु बाणाक्षरैर्बाणेषु लिखिताक्षरैरेव परस्परस्यान्योन्यस्योर्जितं प्रख्यातं नाम शशंसुरूचुः ।

भावार्थ—वहाँ इतने जोर से रणदुन्दुभि बज रही थी कि स्पष्ट कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था। इसलिए धनुर्धारी योद्धा अपना कुल और नाम भी नहीं पुकारते थे, किन्तु वे जो बाण चला रहे थे उन पर खुदे हुए अक्षरों से ही उनके नामों का ज्ञान हो जाता था ॥ ३८ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्थापितः संयति रेणुरश्वैः सान्द्रीकृतः स्यन्दनवंशचक्रैः ।
विस्तारितः कुञ्जरकर्णतालैर्नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—संयति अश्वैः उत्थापितः स्यन्दनवंशचक्रैः सान्द्रीकृतः कुञ्जरकर्णतालैः विस्तारितः रेणुः नेत्रक्रमेण सूर्यम् उपरुरोध ।

व्याख्या—संयति = संग्रामे युद्धे । अश्वैः = घोटकैः । उत्थापितः = ऊर्ध्वं-नीतः । स्यन्दवंशचक्रैः = स्यन्दनसमूहरथाङ्गैः । सान्द्रीकृतः = घनीकृतः । कुञ्जरकर्णतालैः = गजश्रोत्रताडनैः । विस्तारितः = प्रसारितः । रेणुः = धूलिः । नेत्रक्रमेण = वस्त्रेण । सूर्यं = भास्करम् । उपरुरोध = आच्छादयामास । रेणुना सूर्यस्योपरोधेनान्धकारोऽभूदित्यर्थः ।

समासः—स्यन्दनानां वंशाः स्यन्दनवंशाः स्यन्दनवंशानां चक्राणि स्यन्दनवंशचक्राणि तैः स्यन्दनवंशचक्रैः । न सान्द्रः असान्द्रः असान्द्रः सान्द्रः सम्पद्यमानः कृतः इति सान्द्रीकृतः । कुञ्जराणां कर्णाः कुञ्जरकर्णाः तैः कुञ्जरकर्णैः ।

भावार्थः—घोटकस्वरोत्थितेन, रथचक्रसान्द्रीकृतेन, हस्तिकर्णताडनप्रसारितेन धूलिना अंशुकपरिपाट्या सूर्यः समाच्छादितः । अर्थात् समरोत्थितो धूलिः शनैः शनैः अंशुकवस्त्रमिव सूर्यमाच्छादयामासेति भावः ।

सञ्जीविनी—संयति संग्रामेऽश्वैस्तुरगैरुत्थापितः । स्यन्दनवंशानां रथसमूहानां चक्रै रथाङ्गैः 'चक्रं सैन्ये जलावर्ते रथावयवराष्ट्रयोः । संसारे मण्डले वृन्ते धर्मभेदास्त्रभेदयोः ॥' इति वैजयन्ती । सान्द्रीकृतो घनीकृतः 'वंशः पृष्ठास्थिन गेहोर्ध्वकाष्ठे वेणौ गणे कुले' इति केशवः । कुञ्जरकर्णानां तालैस्ताडनैर्विस्तारितः प्रसारितो रेणुर्नेत्रक्रमेणांशुकपरिपाट्या । अंशुकमित्यर्थः । 'स्याज्जटांशुकयोर्नेत्रम्' इति । 'क्रमोऽङ्घ्रौ परिपाट्यां च' इति च केशवः । सूर्यमुपरुरोधाच्छादयामास ।

भाषार्थ—युद्धस्थल में घोड़ों की टापों से उठी हुई धूलि रथ के पहिये से उठी हुई धूलि के साथ मिलकर दुगुनी हो गई और हाथियों के कानों को हिलाने से वह धूलि चारों तरफ इस प्रकार फैल गई, मानों सूर्य को कपड़े से ढक दिया गया हो ॥ ३९ ॥

मत्स्यध्वजा वायुवशाद्विदीर्णैर्मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि ।
बभुः पिबन्तः परमार्थमत्स्याः पर्याविलानीव नवोदकानि ॥ ४० ॥

अन्वयः—वायुवशात् विदीर्णैः मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि पिबन्तः मत्स्यध्वजाः पर्याविलानि नवोदकानि पिबन्तः परमार्थमत्स्याः इव बभुः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या—वायुवशात् = पवनकारणात् । विदीर्णैः = व्यात्तैः विवृतैः । मुखैः = आननैः । प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि = प्रवृद्धसैन्यरेणून् । पिबन्तः = गृह्णन्तः । मत्स्यध्वजाः = मीनाकाराः पताकाः । पर्याविलानि = परितः कलुषानि । नवोदकानि = नूतनानि जलानि पिबन्तः । परमार्थमत्स्याः = सत्यमीनाः । इव = यथा । बभुः = भान्तिस्म ।

समासः—वायोः वशः वायुवशः तस्मात् वायुवशात् । ध्वजाः सन्ति अस्यामिति ध्वजिनी ध्वजिन्या रजांसि ध्वजिनीरजांसि प्रवृद्धानि ध्वजिनीरजांसि इति प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि तानि प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि । मत्स्याकारा ध्वजा इति मत्स्यध्वजाः । परितः आविलानि पर्याविलानि तानि पर्याविलानि । नवानि च तानि उदकानीति नवोदकानि तानि नवोदकानि । परमार्थाश्च ते मत्स्याः यद्वा परमश्चासौ अर्थश्चेति परमार्थः परमार्थेन मत्स्याः परमार्थमत्स्याः ।

भावार्थः—वायुवशात् विवृतैः आननैः प्रवृद्धसैन्यधूलीन् गृह्णन्तः मीनाकारा ध्वजा वर्षया आविलानि जलानि पिबन्तः वास्तविकमत्स्या इव प्रतीयन्ते स्म । अर्थात् वायुना उड्डीयमानो धूलिः यदा मीनाकारपताकायां पतितस्तदा प्रतीयते यत् परमार्थाः मत्स्या एव आविलं वर्षाजलं पिबन्तीति भावः ।

सञ्जीविनी—वायुवशाद्विदीर्णैर्विवृतैर्मुखैः प्रवृद्धानि ध्वजिनीरजांसि सैन्यरेणून् पिबन्तो गृह्णन्तो मत्स्यध्वजा मत्स्याकारा ध्वजाः पर्याविलानि परितः कलुषाणि नवोदकानि पिबन्तः परमार्थमत्स्याः सत्यमत्स्या इव । बभुर्भान्ति स्म ।

भाषार्थ—मछली के आकार वाली सेना की झण्डियों के मुँह खुल गये थे । वायु के कारण जब उनमें सेना की धूलि उड़कर पड़ती थी तब वे ऐसी मालूम पड़ती थीं कि मानों वर्षा का गंदला पानी पीती हुई सच्ची मछलियाँ हैं ॥ ४० ॥

रथो रथाङ्गध्वनिना विजज्ञे विलोलघण्टाक्वणितेन नागः ।
स्वभर्तृनामग्रहणाद् बभूव सान्द्रे रजस्यात्मपरावबोधः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—सैनिकैः सान्द्रे रजसि रथाङ्गध्वनिना रथः विजज्ञे नागः विलोलघण्टाक्वणितेन विजज्ञे आत्मपरावबोधः स्वभर्तृनामग्रहणात् बभूव ।

व्याख्या—सान्द्रे = प्रवृद्धे, घनीभूते । रजसि = धूलौ । रथः = स्यन्दनम् । रथाङ्गध्वनिना = स्यन्दनाङ्ग चक्रशब्देन । विजज्ञे = विज्ञातः । नागः = हस्ती । विलोलघण्टाक्वणितेन = चञ्चलघण्टानादेन विजज्ञे । आत्मपरावबोधः = स्वशत्रुविवेकः । निजस्वामिनाम्न उच्चारणात् । बभूव = अभूत् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समासः—रथस्य अङ्गानि रथाङ्गानि रथाङ्गानां ध्वनिः रथाङ्गध्वनिः तेन रथाङ्गध्वनिना, विलोलाश्च ता घण्टा विलोलघण्टा विलोलघण्टानां क्वणितं विलोलघण्टाक्वणितं तेन विलोलघण्टाक्वणितेन। आत्मनः परे आत्मपराः तेषामात्मपराणाम् अवबोधः आत्मपरावबोधः। नाम्नो ग्रहणं नामग्रहणं स्वस्य भर्ता स्वभर्ता स्वभर्तुः नामग्रहणं स्वभर्तृनामग्रहणं तस्मात् स्वभर्तृनामग्रहणात्। रमन्ते जना अनेनेति रथः।

भावार्थः—घनीभूतेन धूलिना आच्छन्ने तस्मिन् युद्धस्थले रथचक्रध्वनिना रथस्य, लम्बायमानानां घण्टानां क्वणितेन हस्तिनाम्, स्वस्वस्वामिनां नामग्रहणेन च स्वात्मपरयोर्ज्ञानं भवति स्म। अर्थात् तत्र घनान्धकारे योद्धारः स्वस्वस्वामिनामोच्चारणेनैव स्वपरयोर्ज्ञानं कृत्वा परस्परं प्रहरन्तिस्मेति भावः।

सञ्जीविनी—सान्द्रे प्रवृद्धे रजसि रथो रथाङ्गध्वनिना चक्रस्वनेन विजज्ञे ज्ञातः। नागो हस्ती विलोलानां घण्टानां क्वणितेन नादेन विजज्ञे। आत्मपरावबोधः स्वपरविवेकः योधानामिति शेषः। स्वभर्तृणां स्वस्वामिनां नामग्रहणान्नामोच्चारणाद् बभूव। रजोऽन्धतया सर्वे स्वं परं च शब्दादेवानुमन्य प्रजघ्नुरित्यर्थः।

भाषार्थ—उस युद्ध में धूलि इतनी छा गई कि पहियों के शब्द को सुनकर ही मालूम पड़ता था कि रथ आ रहा है, बजती हुई घण्टाओं की ध्वनि से हाथी मालूम पड़ते थे और अपना तथा पराये का ज्ञान तब होता था जब दोनों दल के सैनिक अपने-अपने राजाओं का नाम ले-लेकर युद्ध करते थे॥ ४१॥

आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य।
शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः॥ ४२॥

अन्वयः—लोचनमार्गम् आवृण्वतः आजौ विजृम्भितस्य रजोऽन्धकारस्य शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा रुधिरप्रवाहः बालारुणः अभूत्।

व्याख्या—लोचनमार्गम्=नेत्रपन्थानम्। आवृण्वतः=उपरुन्धतः। आजौ=युद्धे। विजृम्भितस्य=व्यापृतस्य। रजोऽन्धकारस्य=धूलितमसः। शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा=आयुधविक्षतघोटकगजवीरपुरुषशरीरनिःसृतः। रुधिरप्रवाहः=रक्तस्रावः। बालारुणः=प्रातःकालिकसूर्यः। अभूत्=जातः।

समासः—लोचनानां मार्गो लोचनमार्गः तं लोचनमार्गम्। रज एव अन्धकारः रजोऽन्धकारः तस्य रजोऽन्धकारस्य। अश्वाश्च द्विपाश्च वीराश्चेति अश्वद्विपवीराः शस्त्रैः क्षताः शस्त्रक्षताः शस्त्रक्षताश्च ते अश्वद्विपवीरा इति शस्त्र-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षताश्वद्विपवीराः तेभ्यः शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरेभ्यो जन्म यस्य स शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा । बालश्च अरुणः बालारुणः । रुधिरस्य प्रवाहः रुधिरप्रवाहः ।

भावार्थः—लोचनमार्गरोधकरस्य युद्धस्थले प्रसृतस्य धूलेः सम्पर्के शस्त्रास्त्रैः निहितानां घोटकहस्तिवीरपुरुषाणां शरीरेभ्यो निःसृतः रुधिरस्य प्रवाहः प्रातःकालीनसूर्यरक्तिमा इवाजायतेति भावः ।

सञ्जीविनी—लोचनमार्गमावृण्वतो दृष्टिपथमुपरुन्धतः । आजौ युद्धे विजृम्भितस्य व्याप्तस्य । रज एवान्धकारं तस्य । शस्त्रक्षतेभ्योऽश्वद्विपवीरेभ्यो जन्म यस्य स तथोक्तो रुधिरप्रवाहो बालारुणो बालार्कोऽभूत् । 'अरुणो भास्करेऽपि स्यात्' इत्यमरः । बालविशेषणं रुधिरसावर्ण्यार्थम् ।

भाषार्थ—नेत्रपथ को आच्छादित करने वाला, और युद्धस्थल में व्याप्त, धूलिरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए शस्त्रों से कटे हुए घोड़े, हाथी और योद्धाओं के शरीर से निकला हुआ रुधिर प्रवाह प्रातः काल के सूर्य के समान लाल मालूम पड़ता था ॥ ४२ ॥

स च्छिन्नमूलः क्षतजेन रेणुस्तस्योपरिष्टात्पवनावधूतः ।
अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितो धूम इवाबभासे ॥ ४३ ॥

अन्वयः—क्षतजेन छिन्नमूलः तस्य उपरिष्टात् पवनावधूतः सः रेणुः अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितः, धूमः इव आबभासे ।

व्याख्या—क्षतजेन = रुधिरेण । छिन्नमूलः = त्याजितभूतलसम्बन्धः । तस्य = रुधिरस्य । उपरिष्टात् = ऊर्ध्वभागे । पवनावधूतः = वायुकम्पितः । स रेणुः = स धूलिः । अङ्गारशेषस्य = अङ्गारमात्रावशिष्टस्य । हुताशनस्य = वह्नेः । पूर्वोत्थितः = प्रागुत्पन्नः । धूम इव = यथा । आबभासे = दिदीपे ।

समासः—क्षताज्जातः क्षतजः तेन क्षतजेन । छिन्नं मूलं यस्य स छिन्नमूलः । पवनेन अवधूतः पवनावधूतः । हुतमश्नातीति हुताशनः तस्य हुताशनस्य । अङ्गार एव शेषः यस्य स अङ्गारशेषः तस्य अङ्गारशेषस्य । पूर्वमुत्थितः पूर्वोत्थितः ।

भावार्थः—रुधिरेण पृथिव्यां संसक्तः उपरि वायुना उड्डीयमानो धूलिः तद्धूम इव प्रतीयतेस्म । यो धूमः प्राग् उड्डीय आकाशे गतः स्यात् अधस्ताच्च अङ्गारमात्रावशिष्टो भवेत् । अर्थात् भूमिः रुधिरेण रक्ताङ्गारसमा जाता तथाकाशे धूलिः धूमसमो जायते स्मेति भावः ।

सञ्जीविनी—क्षतजेन रुधिरेण छिन्नमूलः त्याजितभूतलसम्बन्ध इत्यर्थः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य क्षतजस्योपरिष्टात्पवनावधूतो वाताहतः स रेणुः अङ्गारशेषस्य हुताशनस्याग्नेः पूर्वोत्थितो धूम इव आबभासे दिदीपे ।

भावार्थ—उस समय पृथ्वी पर इतना रुधिर बहा कि नीचे की धूलि दब गई और ऊपर की धूलि वायु के सहारे इधर-उधर फैल कर इस तरह लगती थी मानों अग्नि से ऊपर उठकर धुआँ ऊपर फैल गया है और नीचे केवल अङ्गार मात्र शेष अग्नि रह गया है ॥ ४३ ॥

प्रहारमूर्च्छापगमे रथस्था यन्तॄनुपालभ्य निवर्तिताश्वान् ।
यैः सादिता लक्षितपूर्वकेतूंस्तानेव सामर्षतया निजघ्नुः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—रथस्थाः प्रहारमूर्च्छापगमे निवर्तिताश्वान् यन्तॄन् उपालभ्य यैः सादिताः लक्षितपूर्वकेतून् तान् एव सामर्षतया निजघ्नुः ।

व्याख्या—रथस्थाः=स्यन्दनस्थाः । प्रहारमूर्च्छापगमे=मारणमोहविनाशे सति, चैतन्ये समागते सति । निवर्तिताश्वान्=परावर्तितघोटकान् । यन्तॄन्=सारथीन् । उपालभ्य=अधिक्षिप्य, न त्वया सम्यक्कृतमिति कथयित्वा । पूर्वं यैः=भटैः, सादिताः=हताः । लक्षितपूर्वकेतून्=ज्ञातपूर्वध्वजान् । तान् एव=भटान् । सामर्षतया=सकोपतया । निजघ्नुः=निघ्नन्तिस्म ।

समासः—प्रहारेण या मूर्च्छा प्रहारमूर्च्छा प्रहारमूर्च्छाया अपगमः इति प्रहारमूर्च्छापगमः तस्मिन् प्रहारमूर्च्छापगमे । रथे तिष्ठन्तीति रथस्थाः । निवर्तिता अश्वा यैः ते निवर्तिताश्वाः तान् निवर्तिताश्वान् । पूर्वं लक्षिताः इति लक्षितपूर्वाः लक्षितपूर्वाः केतवः येषां ते लक्षितपूर्वकेतवः तान् लक्षितपूर्वकेतून् । अमर्षेण सह वर्तमानाः सामर्षाः तेषां भावः सामर्षता तया सामर्षतया ।

भावार्थः—मूर्च्छापगमे प्रहारेण मूर्च्छितान् योद्धॄन् सुरक्षितस्थाने समुपस्थापयितॄन् सारथिनः त्वया न सम्यक्कृतमित्याक्षिप्य रथस्थैः योद्धृभिः पूर्वदृष्टध्वजया अवगत्य तानेव योद्धॄन् प्रजह्रुः, यैस्ते पूर्वं मूर्च्छिताः कृता आसन्निति भावः ।

सञ्जीविनी—रथस्था रथिनः प्रहारेण या मूर्च्छा तस्या अपगमे सति । मूर्च्छितानामन्यत्र नीत्वा संरक्षणं सारथिधर्म इति कृत्वा । निवर्तिताश्वान्यन्तॄन्सारथीनुपालभ्यासाधुकृतमित्यधिक्षिप्य । पूर्वं यैः स्वयं सादिता हताः लक्षितपूर्वकेतून् । पूर्वदृष्टैः केतुभिः प्रत्यभिज्ञातानित्यर्थः । तानेव सामर्षतया सकोपत्वेन हेतुना निजघ्नुः प्रजह्रुः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषार्थ—जो योद्धा अपने प्रतियोद्धा के प्रहार से मूच्छित हो गये थे उनको उनके सारथी लेकर युद्धस्थल से बाहर चले गये, पर जब उनकी मूर्छा छूटी तब वे अपने सारथी को भला-बुरा कहने लगे और जिनसे घायल हुए थे उन्हें रथ की पताका से पहचान कर पुनः उनके ऊपर क्रोध से प्रहार करने लगे ॥ ४४ ॥

अप्यर्धमार्गे परबाणलूना धनुर्भृतां हस्तवतां पृषत्काः ।
संप्रापुरेवात्मजवानुवृत्त्या पूर्वार्द्धभागैः फलिभिः शरव्यम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हस्तवतां धनुर्भृतां पृषत्काः अर्धमार्गे परबाणलूनाः अपि आत्मजवानुवृत्या फलिभिः पूर्वार्द्धभागैः शरव्यम् एव संप्रापुः ।

व्याख्या—अर्धमार्गे=मार्गमध्ये । परबाणलूनाः=शत्रुशरच्छिन्ना अपि । हस्तवतां=प्रशस्तहस्तानाम् । धनुर्भृतां=चापधारिणाम् । पृषत्काः=बाणाः । आत्मजवानुवृत्या=स्ववेगानुबन्धतया । फलिभिः=लोहाग्रवद्भिः । पूर्वार्द्धभागैः =अग्रभागैः । शरव्यं=लक्ष्यम् । संप्रापुरेव न तु मध्ये पतिता ।

समासः—अर्द्धश्चासौ मार्गः अर्द्धमार्गः तस्मिन् अर्द्धमार्गे । परेषां बाणाः परबाणाः परबाणैः लूनाः परबाणलूनाः आत्मनो जवः आत्मजवः आत्मजवस्यानुवृत्तिः आत्मजवानुवृत्तिः तया आत्मजवानुवृत्त्या । पूर्वे च ते अर्द्धभागा पूर्वार्द्धभागाः तैः पूर्वार्द्धभागैः ।

भावार्थः—सिद्धहस्तानां धनुर्धारिणां वीराणां बाणा मध्ये एव शत्रुशरैः छिन्ना अपि प्रबलवेगेन सह लक्ष्यपर्यन्तमुपतिष्ठन्तेस्म एव । अर्थात् योद्धॄणां लक्ष्यमेतत् सफलमासीत् यत् येन सफला भवन्त्येवेति भावः ।

सञ्जीविनी—अर्धश्चासौ मार्गश्च अर्धमार्गस्तस्मिन्नर्धमार्गे परेषां बाणैर्लूनाश्छिन्ना अपि हस्तवतां कृतहस्तानां धनुर्भृतां पृषत्काः शरा आत्मजवानुवृत्त्या स्ववेगानुबन्धेन हेतुना फलिभिर्लोहाग्रवद्भिः । 'सस्यबाणाग्रयोः फलम्' इति विश्वः । पूर्वार्धभागैः । शृणातीति शरुः तस्मै हितं शरव्यं लक्ष्यम् । 'उगवादिभ्यो यत्' इति यत्प्रत्ययः । 'लक्षं लक्ष्यं शरव्यं च' इत्यमरः । सम्प्रापुरेव । न तु मध्ये पतिता इत्यर्थः ।

भाषार्थ—सिद्धहस्त धनुर्धारियों से छोड़े गये बाण यद्यपि शत्रुओं के बाणों से बीच में ही कट जाते थे, फिर भी उनमें इतना वेग होता था कि उनका फल लगा हुआ अगला भाग लक्ष्य तक पहुँच ही जाता था ॥ ४५ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आधोरणानां गजसन्निपाते शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः ।
हृतान्यपि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—गजसन्निपाते निशितैः क्षुराग्रैः चक्रैः हृतानि अपि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि आधोरणानां शिरांसि चिरेण पेतुः ।

व्याख्या—गजसन्निपाते=हस्तियुद्धे । निशितैः=तीक्ष्णैः । क्षुराग्रैः=क्षुराग्रभागैः । चक्रैः=आयुधविशेषैः । हृतानि=छिन्नानि; कृत्तानि । अपि । श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि=श्येनपक्षिकररुहाग्रभागकोटिसंलग्नकचानि । आधोरणानां=हस्तिपकानाम् । शिरांसि=मस्तकानि । चिरेण=विलम्बेन । पेतुः=पतितानि ।

समासः—गजानां सन्निपातः गजसन्निपातः तस्मिन् गजसन्निपाते । क्षुरस्य अग्रमिव अग्रं येषां ते क्षुराग्राः तैः क्षुराग्रैः । श्येनानां नखाः श्येननखाः श्येननखानामग्राणि श्येननखाग्राणि श्येननखाग्राणां कोटयः श्येननखाग्रकोटयः तासु व्यासक्ता केशा येषां तानि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि ।

भावार्थः—हस्तियुद्धे क्षुराग्रधारसमतीक्ष्णाग्रैः शस्त्रैः तेषां हतानां हस्तिपकानां शिरांसि विलम्बेन पृथिव्यां निपतन्ति स्म, येषां केशाः श्येनपक्षिणां नखेषु आसज्यन्तेस्म । अर्थात् तत्रोड्डीयमानानां श्येनानां पादलग्नानि शिरांसि विलम्बेनाधः पतन्तिस्मेति भावः ।

सञ्जीविनी—गजसन्निपाते गजयुद्धे निशितैरत एव क्षुराग्रैः क्षुरस्याग्रमिवाग्रं येषां तैश्चक्रैरायुधविशेषैर्हृतानि छिन्नान्यपि । श्येनानां पक्षिविशेषाणाम् । 'पक्षी श्येनः' इत्यमरः । नखाग्रकोटिषु व्यासक्ताः केशा येषां तानि । आधोरणानां हस्त्यारोहाणाम् । 'आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः' इत्यमरः । शिरांसि चिरेण पेतुः पतितानि । शिरःपातात्प्रागेवारुह्य पश्चादुत्पततां पक्षिणां नखेषु केशसङ्गश्चिरपातहेतुरिति भावः ।

भाषार्थ—हाथियों के युद्ध में तेज तथा क्षुरे के समान फलवाले चक्रों से कटे हुए महावतों के मस्तकों को लेकर बाज पक्षी ऊपर उड़ जाते थे । उनके लम्बे-लम्बे बाल बाजों के नखों में बझ जाते थे, जिससे वे मस्तक कुछ देर में पृथ्वी पर गिरते थे ॥ ४६ ॥

पूर्वं प्रहर्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी ।
तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकाङ्क्ष ॥ ४७ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः—पूर्वं प्रहर्ता, अश्वसादी प्रतिप्रहाराक्षमं तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहम् रिपुं भूयः न जघान किन्तु प्रत्याश्वसन्तम् आचकांक्ष ।

व्याख्या—पूर्वं = प्रथमम् । प्रहर्ता = प्रहारकः । अश्वसादी=तुरगाधिरूढः । प्रतिप्रहाराक्षमं = प्रतिमारणेऽसक्तम् । तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहं=अश्वांसपतितकलेवरम् । रिपुं=शत्रुम् । भूयः = पुनः न जघान = नैव प्रजहार । मूर्च्छितस्योपरिप्रहारं न कृतवान् शास्त्रविरुद्धत्वात् । किन्तु प्रत्याश्वसन्तं=प्रत्यागतप्राणम्, जीवन्तम् । आचकाङ्क्ष = इच्छितवान् ।

समासः—सीदत्यवश्यमिति सादी अश्वस्य सादी अश्वसादी । न क्षमः अक्षमः प्रतिप्रहारेऽक्षमः इति प्रतिप्रहाराक्षमः तं प्रतिप्रहाराक्षमम् । स्कद्यते इति स्कन्धः तुरङ्गमस्य स्कन्धः तुरङ्गमस्कन्धः तुरङ्गमस्कन्धे निषण्णः देहो यस्य स तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहः तं तुरङ्गमस्कन्धनिषण्णदेहम् ।

भावार्थः—प्रहारकः एकः अश्वसादी प्रहारात् प्रतिप्रहारं कर्तुमक्षमं मूर्च्छितं घोटकस्य स्कन्धे पतितदेहं शत्रुं न भूयः प्रहारितवान्, किन्तु व्यपगतमूर्च्छं तं प्रतीक्षते स्म यतो हि मूर्च्छिते शत्रौ प्रहारकस्य नीतिशास्त्रमर्यादाविरुद्धमस्तीति भावः ।

सञ्जीविनी—पूर्वं प्रथमं प्रहर्ताऽश्वसादी तौरङ्गिकः प्रतिप्रहारेऽक्षममशक्तं तुरङ्गमस्कन्धे निषण्णदेहम् । मूर्छितमित्यर्थः । रिपुं भूयो न जघान पुनर्न प्रजहार । किंतु प्रत्याश्वसन्तं पुनरुज्जीवन्तमाचकाङ्क्ष । 'नायुधव्यसनं प्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम्' इति निषेधादिति भावः ।

भाषार्थ—एक घुड़सवार ने अपने शत्रु घुड़सवार पर प्रहार किया, जिससे वह घोड़े के कन्धे पर झूल गया । उसे अपना शिर उठाने की भी शक्ति नहीं रही, पहले प्रहार करने वाले घुड़सवार ने मूर्च्छित होने के कारण अपने ऊपर अस्त्र चलाने में असमर्थ उस शत्रु पर फिर प्रहार नहीं किया, किन्तु उसके जीने की ही इच्छा की; क्योंकि ऐसे शत्रुओं पर प्रहार करना निन्दित माना गया है ॥ ४७ ॥

तनुत्यजां वर्मभृतां विकोशैर्बृहत्सु दन्तेष्वसिभिः पतद्भिः ।
उद्यन्तमग्निं शमयांबभूवुर्गजा विविग्नाः करशीकरेण ॥ ४८ ॥

अन्वयः—तनुत्यजां वर्मभृतां बृहत्सु दन्तेषु पतद्भिः विकोशैः असिभिः उद्यन्तम् अग्निं विविग्नाः गजाः करसीकरेण शमयाम्बभूवुः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या—तनुत्यजां = शरीरनिस्पृहाणाम् । वर्मभृतां = कवचधारिणाम् । बृहत्सु = विशालेषु । दन्तेषु = दशनेषु । पतद्भिः = संलग्नैः । विकोशैः = पिधानाद् वहिर्निर्गतैः । असिभिः = खड्गैः । उद्यन्तं = उत्थितम् । अग्निं = वह्निम् । विविग्नाः = त्रस्ताः, भयभीताः । गजाः = हस्तिनः । करशीकरेण = शुण्डादण्डाम्बुकणेन । शमयांबभूवुः = शमयाञ्चक्रुः ।

समासः—तनुं त्यजन्तीति तनुत्यजः तेषां तनुत्यजाम् । वर्माणि बिभ्रतीति वर्मभृतः तेषां वर्मभृताम् । विगताः कोशा येषामिति विकोशाः तैः विकोशैः । करस्य शीकरः करशीकरः तेन करशीकरेण ।

भावार्थः—स्वशरीरेषु निस्पृहाणां वर्मधारिणां वीराणां बृहत्सु दन्तेषु नग्नासिप्रहारैरुद्धतेनाग्निना भयभीताः स्वकीयशुण्डादण्डजलैः तमग्निं निर्वापितवन्त इति भावः ।

सञ्जीविनी—तनुत्यजां तनुषु निःस्पृहाणामित्यर्थः । वर्मभृतां कवचिनां सम्बन्धिभिर्बृहत्सु दन्तेषु पतद्भिरत एव विकोशैः पिधानादुद्धृतैः । 'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः' इत्यमरः । असिभिः खड्गैरुद्यन्तमुत्थितमग्निं विविग्ना भीता गजाः करशीकरेण शुण्डादण्डजलकणेन शमयांबभूवुः शान्तं चक्रुः ।

भाषार्थ—अपने प्राण की परवाह न करके लड़ने वाले कवचधारी योद्धाओं की नंगी तलवारों से हाथियों के बड़े-बड़े दाँतों पर प्रहार करने पर उनसे चिनगारियाँ निकलने लगीं, उनसे डर कर व्याकुल हाथी अपने सूँड के पानी से उस आग को बुझाने लगे ।। ४८ ।।

शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेव ।
रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्या रराज मृत्योरिव पानभूमिः ।। ४९ ।।

अन्वयः—शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैः चषकोत्तरा इव शोणितमद्यकुल्या रणक्षितिः मृत्योः पानभूमिः इव रराज ।

व्याख्या—शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या=बाणाच्छिन्नमस्तकफलपरिपूर्णा । च्युतैः = पतितैः । शिरस्त्रैः = शीर्षण्यैः शीर्षकैः । चषकोत्तराः = पानपात्रोत्तराः । इव = यथा । शोणितमद्यकुल्या = रुधिरमदिराप्रवाहा । रणक्षितिः = संग्रामभूमिः । मृत्योः = मरणस्य यमस्य, पानभूमिः = मदिरापानस्थानम् । इव = यथा । रराज = शुशुभे ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समासः—शिलीमुखैः उत्कृत्तानि शिलीमुखोत्कृत्तानि शिलीमुखोत्कृत्तानि च तानि शिरांसि शिलीमुखोत्कृत्तशिरांसि शिलीमुखोत्कृत्तशिरांसि एव फलानि शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलानि तैः शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलैराढ्या इति शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या। शिरः त्रायन्त इति शिरस्त्राणि तैः शिरस्त्रैः। शोणितमेव मद्यं शोणितमद्यं शोणितमद्यस्य कुल्या यस्यां सा शोणितमद्यकुल्या। पानस्य भूमिः पानभूमिः।

भावार्थः—तद् युद्धस्थलं मदिरालय इव शुशुभे यत् वाणच्छिन्नमस्तकरूपफलैः परिपूर्णं विद्यते, यत्र निपतितानि लौहशिरस्त्राणानि एव पानपात्राणि सन्ति, यत्र वा रक्तरूपमदिरानदी प्रवहति। एवं सा युद्धस्थली मृत्योः पानभूमिरिव रराजेति भावः।

सञ्जीविनी—शिलीमुखैर्बाणैरुत्कृत्तानि शिरांस्येव फलानि तैराढ्या सम्पन्ना च्युतैर्भ्रष्टैः शिरांसि त्रायन्त इति शिरस्त्राणि शीर्षण्यानि। 'शीर्षण्यं च शिरस्त्रं च' इत्यमरः। तैश्चषकोत्तरा चषकः पानपात्रमुत्तरं यस्या सेव। 'चषकोऽस्त्री पानपात्रम्' इत्यमरः। शोणितान्येव मद्यं तस्य कुल्याः प्रवाहा यस्यां सा। 'कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित्' इत्यमरः। रणक्षितिर्युद्धभूमिर्मृत्योः पानभूमिरिव रराज।

भाषार्थ—वह युद्ध स्थल मृत्यु के उस मदिरापान स्थल के समान मालूम पड़ रहा था, जिसमें बाणों से कटे हुए सिर ही मानों फल हों, उलटे गिरे हुए मुकुट ही पानपात्र हों, बहता हुआ रुधिर ही मानो मदिरा हो ॥ ४९ ॥

उपान्तयोर्निष्कुषितं विहङ्गैराक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियापि।
केयूरकोटिक्षततालुदेशा शिवा भुजच्छेदमपाचकार ॥ ५० ॥

अन्वयः—विहङ्गैः उपान्तयोः निष्कुषितं भुजच्छेदं तेभ्यः आक्षिप्य पिशितप्रिया अपि शिवा केयूरकोटिक्षततालुदेशा सती अपाचकार।

व्याख्या—उपान्तयोः=प्रान्तयोः। विहङ्गैः=पक्षिभिः। निष्कुषितं=खण्डितम्। भक्षणाय खण्ड्यमानम्। भुजच्छेदं=बाहुखण्डम्। तेभ्यः=पक्षिभ्यः। आक्षिप्य=आच्छिद्य। पिशितप्रिया=रुधिरपानरुचिरा अपि। शिवा=शृगाली। केयूरकोटिक्षततालुदेशा=अङ्गदाग्रविद्धककुदप्रदेशा सती। अपाचकार=भुजखण्डं परित्यज्यान्यत्र गता।

समासः—अन्तयोः समीपे उपान्ते तयोः उपान्तयोः। भुजस्य च्छेदः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भुजच्छेदः तं भुजच्छेदम् । पिशितं प्रियं यस्याः सा पिशितप्रिया । केयूरस्य कोटिः केयूरकोटिः केयूरकोट्या क्षतः तालुदेशः यस्याः सा केयूरकोटिक्षत-तालुदेशा ।

भावार्थः—द्वयोः प्रान्तयोः पतितं पक्षिभिः भक्षितुं खण्ड्यमानं भुजखण्डं तेभ्यः आच्छिद्य भक्षितुमुद्यता मांसप्रिया शृगाली अङ्गदाग्रेण विद्धतालुप्रदेशा सती परित्यज्य पलायिता । अर्थात् यावदेव पक्षिभ्य आच्छिद्य भोक्तुमारब्धवती तावदेव भुजे वर्तमानेन केयूरेण तस्या मुखं क्षतमिति कष्टमनुभूय मांसप्रियापि सा अन्यत्र गतेति भावः ।

सञ्जीविनी—उपान्तयोः प्रान्तयोर्विहङ्गैः पक्षिभिर्निष्कुषितं खण्डितम् । 'इणिनष्ठायाम्' इतीडागमः । भुजच्छेदं भुजखण्डं तेभ्यो विहङ्गेभ्यः आक्षिप्याच्छिद्य, पिशितप्रिया मांसप्रियाऽपि शिवा क्रोष्ट्री । 'शिवः कीलः शिवा क्रोष्ट्री' इति विश्वः । केयूरकोटयाऽङ्गदाग्रेण क्षतस्तालुदेशो यस्याः सा सती । अपाचकारापसारयामास । किरतेः करोतेर्वा लिट् ।

भावार्थ—पक्षियों से दोनों तरफ चोंच मारे गये हाथ के टुकड़े को उनसे छीन कर सियारिन ज्योंही खाने लगी, त्योंही बाँह में बँधे हुए बिजायठ का नुकीला अग्रभाग उसके तालु में पड़ गया, जिससे मांसप्रिय होने पर भी वह उसे छोड़कर अन्यत्र चली गई ॥ ५० ॥

कश्चिद्द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य ।
वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः स्वं नृत्यत्कबन्धं समरे ददर्श ॥ ५१ ॥

अन्वयः—द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः कश्चित् सद्यः विमानप्रभुताम् उपेत्य वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः 'सन्' समरे नृत्यत् स्वं कबन्धं ददर्श ।

व्याख्या—द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः=शत्रुखड्गछिन्नशिरस्कः । कश्चित्=कोऽपि । वीरः=शूरः । सद्यः=सपदि । विमानप्रभुतां=व्योमयानस्वामित्वम् । उपेत्य=प्राप्य । वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः=सव्योत्सङ्गगृहीतदेवाङ्गनः सन् । समरे=समराङ्गणे । नृत्यत्=नृत्यं कुर्वत् । स्वं=स्वकीयम् । कबन्धं=छिन्नशिरस्कं देहम् । ददर्श=दृष्टवान् ।

समासः—द्वेष्टीति द्विषत्, खण्डयतेऽनेनेति खड्गः द्विषतः खड्गः द्विषत्खड्गः तेन द्विषत्खड्गेन हृतम् उत्तमाङ्गं यस्य स द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः । विगतं मानमुपमा यस्य स विमानः विमानस्य प्रभुः विमानप्रभुः विमानप्रभोः भावः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विमानप्रभुता तां विमानप्रभुताम् । सुराणामङ्गना सुराङ्गना वामं तदङ्गमिति वामाङ्गं वामाङ्गे संसक्ता सुराङ्गना यस्य स वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः ।

भावार्थः—शत्रोरसिना छिन्नमस्तकः एको योद्धा युद्धमरणात् सद्यः देवत्वमवाप्य विमाने उपविश्य युद्धस्थले नृत्यत् स्वकीयं छिन्नं शिरः ददर्श । तस्य वीरस्य वामभागे एकाऽप्सरा उपविष्टा आसीदिति भावः ।

सञ्जीविनी—द्विषतः खड्गेन हृतोत्तमाङ्गश्छिन्नशिराः । 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इत्यमरः । कश्चिद्वीरः सद्यो विमानप्रभुतां विमानाधिपत्यं देवत्वमित्यर्थः । उपेत्य प्राप्य वामाङ्गसंसक्ता सव्योत्सङ्गसङ्गिनी सुराङ्गना यस्य स तथोक्तः सन् । अग्निपुराणे—वाराप्सरः सहस्राणि भूपमायोधने हृतम् । त्वरितान्युपधावन्ति मम भर्ता ममेति च ॥' इति । समरे नृत्यत्स्वं निजं कबन्धं अशिरस्कं कलेवरं ददर्श । 'कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तमपमूर्धकलेवरम्' इत्यमरः ।

भाषार्थ—शत्रु की तलवार से एक योद्धा का शिर कट गया । युद्ध में मृत्यु होने के कारण वह योद्धा तत्काल देवता हो गया और अपने बायें तरफ एक अप्सरा को लिए हुए विमान पर बैठकर युद्धस्थल में नाचते हुए अपने धड़ को देखने लगा ॥ ५१ ॥

अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां तावेव सूतौ रथिनौ च कौचित् ।
व्यश्वौ गदाव्यायतसंप्रहारौ भग्नायुधौ बाहुविमर्दनिष्ठौ ॥ ५२ ॥

अन्वयः—कौचित् अन्योन्यसूतोन्मथनात् तौ एव सूतौ रथिनौ च अभूताम् व्यश्वौ 'सन्तौ' गदाव्यायतसंप्रहारौ अभूताम् भग्नायुधौ 'सन्तौ' बाहुविमर्दनिष्ठौ 'अभूताम्' ।

व्याख्या—कौचित्=वीरौ । अन्योन्यसूतोन्मथनात्=परस्परसारथिमरणात् । तौ एव=द्वौ वीरौ, सूतौ=सारथी । रथिनौ=योद्धारौ च अभूताम्=आस्ताम् । तौ एव वीरौ । व्यश्वौ=नष्टघोटकौ सन्तौ । गदाव्यायतसम्प्रहारौ =गदादीर्घयुद्धौ । अभूताम्=आस्ताम् । भग्नायुधौ=खण्डितगदौ सन्तौ । तौ बाहुविमर्दनिष्ठौ=बाहुयुद्धसंलग्नौ अभूताम्=आस्ताम् ।

समासः—अन्योन्यस्य सूतौ अन्योन्यसूतौ तयोः अन्योन्यसूतयोः उन्मथनम् अन्योन्यसूतोन्मथनं तस्मात्, अन्योन्यसूतोन्मथनात् । विगतौ अश्वौ ययोस्तौ व्यश्वौ । गदाभ्यां व्यायतः संप्रहारः ययोः तौ गदाव्यायतसम्प्रहारौ । भग्ने आयुधे ययोः तौ भग्नायुधौ । बाह्वोः विमर्दे निष्ठा ययोः तौ बाहुविमर्दनिष्ठौ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—अन्यौ द्वौ वीरौ स्वस्वसूतयोः मरणात् रथिनौ सारथिनौ च अभूताम् । मृतघोटकौ सन्तौ गदायुद्धप्रवृत्तौ अभूताम् । भग्नगदौ सन्तौ बाहुयुद्धं (मल्लयुद्धम्) अकुर्वातामिति भावः ।

सञ्जीविनी—कौचिद्वीरावन्योन्यस्य सूतयोः सारथ्योरुन्मथनान्निधनात्तावेव सूतौ रथिनौ योद्धारौ चाभूताम् । तावेव व्यश्वौ नष्टाश्वौ सन्तौ गदाभ्यां व्यायतो दीर्घः संप्रहारो युद्धं ययोस्तावभूताम् । ततो भग्नायुधौ भग्नगदौ सन्तौ बाहुविमर्दे निष्ठा नाशो ययोस्तौ बाहुयुद्धासक्तावभूताम् । 'निष्ठा निष्पत्तिनाशान्ताः' इत्यमरः ।

भाषार्थ—कोई दो योद्धा अपने-अपने सारथियों के मारे जाने पर स्वयं रथ को हाँकते हुए युद्ध करने लगे, पर जब उनके घोड़े भी कट गये तब वे योद्धा गदा से युद्ध करने लगे, बाद गदा के भी टूट जाने पर मल्ल-युद्ध करने लगे ॥ ५२ ॥

परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रोरुत्क्रान्तवाय्वोः समकालमेव ।
अमर्त्यभावेऽपि कयोश्चिदासीदेकाप्सरःप्रार्थितयोर्विवादः ॥ ५३ ॥

अन्वयः—परस्परेण क्षतयोः समकालम् एव उत्क्रान्तवाय्वोः एकाप्सरःप्रार्थितयोः कयोश्चित् प्रहर्त्रोः अमर्त्यभावे अपि विवादः आसीत् ।

व्याख्या—परस्परेण=अन्योन्येन । क्षतयोः=नष्टदेहयोः । समकालमेव=युगपदेव यथा स्यात्तथा उत्क्रान्तवाय्वोः=उद्गतप्राणयोः=निष्क्रान्तप्राणयोः । एकाप्सरःप्रार्थितयोः=एकामेवाप्सरसमभिलषतोः कयोश्चित् द्वयोः । प्रहर्त्रोः =प्रहारकयोः वीरयोः । अमर्त्यभावेऽपि=देवत्वेऽपि । विवादः=विरोधः । आसीत्=अभूत् ।

समासः—उत्क्रान्तः वायुः ययोः तौ उत्क्रान्तवायू तयोः उत्क्रान्तवाय्वोः । समः कालः यस्मिन् कर्मणि तत् समकालम् । म्रियन्ते जना अस्मिन्निति मर्तः मर्त एव मर्त्यः न मर्त्यः अमर्त्यः अमर्त्यस्य भावः अमर्त्यभावः तस्मिन् अमर्त्यभावे । एका एव अप्सराः प्रार्थिता याभ्यामिति एकाप्सरःप्रार्थितौ तयोः एकाप्सरःप्रार्थितयोः । अथवा एकाप्सरसि प्रार्थितं ययोः तौ तयोः एकाप्सरःप्रार्थितयोः ।

भावार्थः—युद्धस्थले परस्परेण प्रहारेण युगपत् मृत्वा दिवंगतयो देवत्वं प्राप्तयोः द्वयोः वीरयोरपि एकाप्सरसः कृते विवादः समजनीति भावः ।

सञ्जीविनी—परस्परेणान्योन्यं क्षतयोः क्षततन्वोः समकालमेककालं यथा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथोत्क्रान्तवाय्वोर्युगपदुद्गतप्राणयोः। एकैवाप्सराः प्रार्थिता याभ्यां तयोरेकाप्सरःप्रार्थितयोः। प्रार्थितैकात्सरसोरित्यर्थः। 'वाहिताग्न्यादिषु' इति परनिपातः। अथवा, एकस्यामप्सरासि प्रार्थितं प्रार्थना ययोरिति विग्रहः। 'स्त्रियां बहुष्वप्सरसः इति बहुत्वाभिधानं प्रायिकम्। कयोश्चित्प्रहर्त्रोर्योधयोरमर्त्यभावेऽपि देवत्वेऽपि विवादः कलह आसीत् एकामिषाभिलाषो हि महद्वैरबीजमिति भावः।

भाषार्थ—एक दूसरे के प्रहार से एक समय में ही मरे हुए दो योद्धा युद्धस्थल में मरने के कारण देवता होकर जब स्वर्ग में गये, तब वहाँ एक ही अप्सरा पर दोनों रीझ गये और वहाँ भी फिर आपस में झगड़ने लगे ॥५३॥

व्यूहावुभौ तावितरेतरस्माद्भङ्गं जयं चापतुरव्यवस्थम्।
पश्चात्पुरोमारुतयोः प्रवृद्धौ पर्यायवृत्त्येव महार्णवोर्मी ॥ ५४ ॥

अन्वयः—तौ उभौ व्यूहौ पश्चात्पुरोमारुतयोः पर्यायवृत्त्या प्रवृद्धौ महार्णवोर्मी इव इतरेतरस्मात् अव्यवस्थं जयं भङ्गं च आपतुः।

व्याख्या—तौ = पूर्वोक्तौ। उभौ = द्वौ। व्यूहौ = सेनासमूहौ विभज्य स्थापितौ पश्चात् पुरः मारुतयोः = पृष्ठभागाग्रभागपवनयोः। पर्यायवृत्त्या = क्रमवर्तनेन। प्रवृद्धौ = वृद्धिं गतौ। महार्णवोर्मी = समुद्रतरङ्गौ। इव = यथा। इतरेतरस्मात् = अन्योन्यस्मात्। अव्यवस्थं = व्यवस्थारहितम्। जयं = विजयम्। भङ्गं = पराजयं च। आपतुः = प्रापतुः। प्राप्तवन्तौ।

समासः—पर्यायस्य वृत्तिः पर्यायवृत्तिः, तया पर्यायवृत्त्या। अर्णांसि सन्ति यस्यासौ अर्णवः महांश्चासौ अर्णव इति महार्णवः, महार्णवस्य उर्मी महार्णवोर्मी। नास्ति व्यवस्था यस्मिन् स अव्यवस्थः तम् अव्यवस्थम्।

भावार्थः—द्वे अपि उभयपक्षसेने तथैव अनिश्चितं जयं पराजयञ्च प्राप्तवत्यौ यथा पश्चादग्रे च गच्छद्वायुक्रमेण समुद्रतरङ्गौ वर्द्धेते ह्रसेते च। अर्थात् यथा समबलयोः सेनयोः कदाचित् जयः, कदाचिच्च पराजयो भवति तथैव तयोः व्यूहयोरपि जयपराजयौ भवतः स्मेति भावः।

सञ्जीविनी—तावुभौ व्यूहौ सेनासंघातौ। 'व्यूहस्तु बलविन्यासः' इत्यमरः। पश्चात्पुरश्च यौ मारुतौ। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते। तयोः महान्तावर्णवोर्मी पर्यायवृत्त्या क्रमवृत्त्या प्रवृद्धौ महार्णवोर्मी इव। इतरेतरस्मादन्योन्यस्माद् अव्यवस्थं व्यवस्थारहितमनियतं जयं भङ्गं पराजयं चापतुः प्राप्तवन्तौ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थ——जिस प्रकार वायु के वेग से समुद्र की तरंगें अव्यवस्थित रूप से आगे-पीछे बढ़ती-हटती रहती हैं उसी प्रकार वे दोनों सेनायें कभी हारती थीं कभी जीतती थीं ॥ ५४ ॥

परेण भग्नेऽपि बले महौजा ययावजः प्रत्यरिसैन्यमेव ।
धूमो निवर्त्येत समीरणेन यतस्तु कक्षस्तत एव वह्निः ॥ ५५ ॥

अन्वयः——महौजाः अजः परेण बले भग्ने अपि अरिसैन्यं प्रति एव ययौ समीरणेन धूमः निवर्त्येत वह्निः तु यतः कक्षः भवति ततः एव प्रवर्तते ।

व्याख्या——बले = स्वकीयसैन्ये । परेण = शत्रुबलेन । भग्ने = मर्दिते, विनाशिते अपि । महौजाः = प्रभूतबलः, महाबलः । अजः = रघुपुत्रः । अरिसैन्यं = शत्रुबलम् प्रति एव = शत्रुसैन्यसम्मुखमेव । ययौ = जगाम । हि समीरणेन = वायुना । धूमः = अग्निशिखा । निवर्त्येत = अपसर्येत । तु = किन्तु । वह्निः = अग्निः, यतः = यत्र । तत एव = तत्रैव प्रवर्तते, गच्छत्यर्थः ।

समासः—महत् ओजो यस्य स महौजाः । अरीणां सैन्यम् अरिसैन्यं तत् अरिसैन्यम् । वहति हव्यमिति वह्निः । सम्यग् ईते गच्छतीति समीरणः यद्वा सम्यग् ईरयति प्रेरयतीति समीरणः ।

भावार्थः——शत्रुसैन्यद्वारा स्वकीये सैन्ये भग्नेऽपि महाबलशाली अजः शत्रुसैन्यं प्रत्येव जगाम । यतो हि वायुना धूमः काममपसार्येत किन्तु अनलस्तु वायुसहयोगेन अग्रे वर्द्धते एव । अर्थात् यथा वायुः धूममपसारयितुं शक्नोति परं नाग्नि तथैव विपक्षसैन्यं काममजसैन्यं मर्दयेत्, परं नाजमिति भावः ।

सञ्जीविनी——बले स्वसैन्ये परेण परबलेन भग्नेऽपि महौजा महाबलोऽजोऽरिसैन्यं प्रत्येव ययौ । तथाहि समीरणेन वायुना धूमो निवर्त्येत कक्षादपसार्येत । वर्ततेर्ण्यन्तात्कर्मणि संभावनायां लिङ् । वह्निस्तु यतो यत्र कक्षस्तृणम् । 'कक्षौ तु तृणवीरुधौ' इत्यमरः । तत एव तत्रैव प्रवर्तत इति शेषः । सार्वविभक्तिकस्तसिः ।

भावार्थ—जिस प्रकार हवा से धुंआ के इधर-उधर हो जाने पर भी आग घास-फूस के तरफ ही जाती है, उसी प्रकार शत्रुओं द्वारा अपनी सेना इधर-उधर हो जाने पर भी महापराक्रमी अज शत्रुओं की सेना में बढ़ते ही चले गये ॥ ५५ ॥

रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान् दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः ।
निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः ॥ ५६ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः—रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान् दृप्तः एकवीरः सः महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तम्, अर्णवाम्भः इव, राजन्यकं निवारयामास ।

व्याख्या—रथी = रथारूढः । निषङ्गी = तूणीरवान् । कवची=वर्मधरः । धनुष्मान् = धानुष्कः, चापधारी । दृप्तः = रणगर्वितः । एकवीरः = अद्वितीयशूरः । सः = अजः । राजन्यकं = राजसमूहम् । महावराहः = शूकरावतारो भगवान् विष्णुः । कल्पक्षयोद्वृत्तं = प्रलयान्तकालोद्वेलम् । अर्णवाम्भः=समुद्रजलम् । इव = यथा । निवारयामास = निवारितवान् ।

समासः—एकश्चासौ वीरः एकवीरः । वरं श्रेष्ठम् अर्हन्तीति वराहः महांश्चासौ वराहः महावराहः । कल्पस्य क्षयः कल्पक्षयः कल्पक्षये उद्वृत्तमितिकल्पक्षयोद्वृत्तम् तत् कल्पक्षयोद्वृत्तम् । अर्णवस्य अम्भः अर्णवाम्भः तत् अर्णवाम्भः ।

भावार्थः—रथारूढः, तूणीरवान्, कवचधारी, धनुष्मान् रणगर्वितः रघुपुत्रः अजः एकाकी एव शत्रुसैन्यं तथैवारुणत् यथा वराहरूपधारी भगवान् विष्णुः प्रलयकाले वर्द्धमानं समुद्रजलमवारुधत् । अर्थात् यथा शूकरावतारः समुद्रजलं विदारयन् पृथिवीमुद्धारितवान् तथैवाजोऽपि शत्रुसैन्यं विदारयनग्रेसरो बभूवेति भावः ।

सञ्जीविनी—रथी रथारूढो निषङ्गी तूणीरवान् 'तूणोपासङ्गतूणीरनिषंगा इषुधिर्द्वयोः इत्यमरः । कवची वर्मधरो धनुष्मान्धनुर्धरो दृप्तो रणदृप्त एकवीरोऽसहायशूरः सोऽजो राजन्यकं राजसमूहम् । 'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ्' इत्यनेन वुञ्प्रत्ययः । महावराहो वराहावतारो विष्णुः कल्पक्षये कल्पान्तकाले उद्वृत्तमुद्वेलमर्णवाम्भ इव निवारयामास ।

भाषार्थ—जिस प्रकार वाराह रूपधारी भगवान् विष्णु प्रलय के समय समुद्र के बढ़े हुए जल को चीरते हुए आगे बढ़ते गये, उसी प्रकार रथ पर बैठे हुए कवच तथा तरकस को धारण किये हुए वे अद्वितीय वीर अज अकेले ही शत्रुओं की सेना को चीरते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे ॥ ५६ ॥

स दक्षिणं तूणमुखेन वामं व्यापारयन्हस्तमलक्ष्यताजौ ।
आकर्णकृष्टा सकृदस्य योद्धुं मौर्वीव बाणान्सुषुवे रिपुघ्नान् ॥ ५७ ॥

अन्वयः—सः आजौ दक्षिणं हस्तं तूणमुखेन वामं व्यापारयन् सन् अलक्ष्यत योद्धुं अस्य सकृत् आकर्णकृष्टा मौर्वी रिपुघ्नान् बाणान् सुषुवे इव ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या——सः=अजः। आजौ=युद्धे। दक्षिणं=अपसव्यम्। हस्तं=करम्। तूणीरमुखेन=निषङ्गमुखेन। वामं=अतिसुन्दरम्। व्यापारयन्=प्रेरयन्। अलक्ष्यत=अदृश्यत, बाणस्य धनुषि सन्धानं मोक्षणं तु नादृश्यत। सकृत्=एकवारम्। आकर्णकृष्टा=कर्णपर्यन्तमावर्जिता। योद्धुः=सांग्रामिकस्य। अस्य=अजस्य। मौर्वी=ज्या। रिपुघ्नान्=शत्रुविनाशकान्। बाणान्=शरान्। सुषुवे इव=सुषुवे किम्=जनयामास किमु।

समासः——तूणीरस्य मुखं तूणीरमुखं तेन तूणीरमुखेन। कर्णयतीति कर्णः कर्णमभिव्याप्य आकर्णम्, आकर्णमाकृष्टा आकर्णकृष्टा। रिपून् घ्नन्तीति रिपुघ्नाः, तान् रिपुघ्नान्।

भावार्थः——अजो हि दक्षिणं हस्तं तूणीरमुखेऽतिसुन्दरतया बाणान् प्रक्षिपन् इवादृश्यत, न तु सन्धानं न वा मोक्षणं दृश्यतेस्म। प्रतीयतेस्म यद् एकवारं कर्णपर्यन्तमाकृष्टा ज्या एव शत्रुनाशकान् बाणान् प्रसूते स्म।

सञ्जीविनी——सोऽजः आजौ संग्रामे दक्षिणं हस्तं तूणमुखेन निषङ्गविवरेण वाममतिसुन्दरम् 'वामं सव्ये प्रतीते च द्रविणे चातिसुन्दरे' इति विश्वः। व्यापारयन्नलक्ष्यत, शरसंधानादयस्तु दुर्लक्ष्या इत्यर्थः। सकृदाकर्णकृष्टा योद्धुरस्याजस्य मौर्वी ज्या रिपून्घ्नन्तीति रिपुघ्नाः तान्। 'अमनुष्यकर्तृके च' इति ठक् प्रत्ययः। बाणान्सुषुव इव सुषुवे किमु इत्युत्प्रेक्षा।

भाषार्थ——अज उस युद्ध में इतनी जल्दी बाण चला रहे थे कि यह पता नहीं चलता था कि उन्होंने कब अपना दाहिना हाथ तरकस पर रखा और कब बाण निकालकर बायें हाथ से धनुष पर रखा, किन्तु ऐसा मालूम पड़ता था कि वे जब कान तक धनुष की डोरी खींचते थे तब उसमें से शत्रुओं का नाश करने वाले बाण बराबर निकलते चले जा रहे हैं॥ ५७॥

स रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैर्व्यक्तोर्ध्वरेखा भ्रुकुटीर्वहद्भिः।
तस्तार गां भल्लनिकृत्तकण्ठैर्हुंकारगर्भैर्द्विषतां शिरोभिः॥ ५८॥

अन्वयः——सः रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैः व्यक्तोर्ध्वरेखाः भ्रुकुटीः वहद्भिः भल्लनिकृत्तकण्ठैः हुंकारगर्भैः द्विषतां शिरोभिः गां तस्तार।

व्याख्या——सः=अजः। रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैः=क्रोधदंशिताधिकरक्तदशनच्छदैः। व्यक्तोर्ध्वरेखाः=स्पष्टोपरिभागलेखाः। भ्रुकुटीः=भ्रूभङ्गान्। वहद्भिः=धारयद्भिः, क्रोधेन मस्तकसङ्कोचं कुर्वद्भिः। भल्लनिकृत्तकण्ठैः=

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मल्लच्छिन्नगलैः । हुंकारगर्भैः=हुंकारं कुर्वद्भिः । द्विषतां=शत्रूणाम् । शिरोभिः =मस्तकैः । गां=पृथिवीम् । तस्तार=आच्छादयामास ।

समासः--रोषेण दष्टा रोषदष्टा अत एव अधिका लोहिता ओष्ठा येषां तानि रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठानि, तैः रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैः । मल्लेन निकृत्ताः कण्ठा येषां तानि मल्लनिकृत्तकण्ठानि तैः मल्लनिकृत्तकण्ठैः । हुंकारः गर्भे येषां तानि हुंकारगर्भाणि तैः हुंकारगर्भैः । व्यक्ता ऊर्ध्वा रेखा यासां ता व्यक्तोर्ध्वरेखाः ता व्यक्तोर्ध्वरेखाः ।

भावार्थः--अजो हि शत्रूणां तैः शिरोभिः पृथिवीम् आच्छादयामास येषा-मोष्ठा अतिरोषेण दष्टतया रक्ता आसन्, शिरसि उत्थिता रेखाः स्पष्टतया प्रतीयन्तेस्म, गला मल्लैः छिन्ना आसन्, तथा हुंकारपूर्वकमग्रे वर्द्धन्ते स्मेति भावः ।

सञ्जीविनी—सोऽजः रोषेण दष्टा अत एवाधिकलोहिता ओष्ठा येषां तानि, तैः व्यक्ता ऊर्ध्वा रेखा यासां ता भ्रुकुटीर्भ्रूभङ्गान्वहद्भिः मल्लनिकृत्ता बाणविशेषछिन्नाः कण्ठा येषां तैः हुंकारगर्भैः सहुंकारैः हुंकुर्वद्भिरित्यर्थः । द्विषतां शिरोभिः गां भूमिं तस्तार छादयामास ।

भाषार्थ—जिन राजाओं ने क्रोध से अपने ओठों को चबा-चबाकर लाल कर लिया था और जो भौहें तान-तान कर हुंकार करते हुए आगे बढ़ रहे थे, उनके मस्तकों को भाले से काट-काट कर अज ने धरातल को ढँक दिया ।। ५८ ।।

सर्वैर्बलाङ्गैर्द्विरदप्रधानैः सर्वायुधैः कङ्कटभेदिभिश्च ।
सर्वप्रयत्नेन च भूमिपालास्तस्मिन्प्रजह्रुर्युधि सर्व एव ।। ५९ ।।

अन्वयः—सर्वे एव भूमिपालाः द्विरदप्रधानैः सर्वैः बलाङ्गैः कङ्कटभेदिभिः सर्वायुधैः च सर्वप्रयत्नेन च युधि तस्मिन् प्रजह्रुः ।

व्याख्या--द्विरदप्रधानैः=गजमुख्यैः । सर्वैः=सकलैः । बलाङ्गैः=सेनाङ्गैः । कङ्कटभेदिभिः=कवचभेदिभिः । सर्वायुधैः=समस्तशस्त्रैः । च सर्वप्रयत्नेन= सम्पूर्णप्रयासेन । च सर्वे=समे एव भूमिपालाः=पृथ्वीपतयः, राजानः । युधि =संग्रामे । प्रजह्रुः=प्रहारं कृतवन्तः । अजं प्राहरन्नित्यर्थः ।

समासः—द्वौ रदौ येषां ते द्विरदाः, द्विरदाः प्रधाना येषु तानि द्विरदप्रधा-नानि तैः द्विरदप्रधानैः । बलस्य अङ्गानि बलाङ्गानि तैः बलाङ्गैः । कं सुखं कटति वर्षति इति कंकटः कंकटं भेत्तुं शीलं येषां ते कंकटभेदिनः तैः कंकट-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भेदिभिः सर्वाणि च तानि आयुधानि इति सर्वायुधानि तैः सर्वायुधैः। सर्व-श्चासौ प्रयत्नः सर्वप्रयत्नः तेन सर्वप्रयत्नेन। भूमेः पालाः भूमिपालाः भूमिं पालयन्तीति वा भूमिपालाः।

भावार्थः—हस्तिघोटक-रथ-पदातिप्रभृतिभिः सर्वैः सेनाङ्गैः कवचभेदिभिः सर्वैः शस्त्रैः सर्वप्रयत्नेन पूर्णबलेन च ते भूपतयः अजे प्रहारं कर्तुमारब्धवन्त इति भावः।

सञ्जीविनी—द्विरदप्रधानैर्गजमुख्यैः सर्वैर्बलाङ्गैः सेनांगै। हस्त्यश्वरथ-पादान्तं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम्' इत्यमरः। कङ्कटभेदिभिः कवचभेदिभिः। 'उरच्छदः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। सर्वायुधैश्च बाहुबल-मुक्त्वान्तरमाह—सर्वप्रयत्नेन च सर्व एव भूमिपाला युधि तस्मिन्नजे प्रजह्रुः। तं प्रजह्रुरित्यर्थः। सर्वत्र सर्वकारकशक्तिसंभवात्कर्मणोऽप्यधिकरणविवक्षायां सप्तमी। तदुक्तम्—'अनेकशक्तियुक्तस्य विश्वस्यानेककर्मणः। सर्वदा सर्वथाभावा त्क्वचित्किंचिद्विवक्ष्यते'॥ इति॥

भाषार्थ—उस युद्ध में सभी राजा अश्व, गज, रथ, पदातिप्रभृति सब प्रकार-की सेनाओं से, कवच को काट देनेवाले सब प्रकार के तीक्ष्ण अस्त्रों से और सर्व प्रकार के उपायों द्वारा एक साथ अज के ऊपर प्रहार करने लगे॥ ५९॥

सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथः परेषां ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्यः।
नीहारमग्नो दिनपूर्वभागः किंचित्प्रकाशेन विवस्वतेव॥ ६०॥

अन्वयः—परेषां अस्त्रव्रजैः छन्नरथः सः नीहारमग्नः दिनपूर्वभागः किञ्चि-त्प्रकाशेन विवस्वता इव ध्वजाग्रमात्रेण लक्ष्यः बभूव।

व्याख्या—परेषां = शत्रूणाम्। अस्त्रव्रजैः = शस्त्रसमूहैः छन्नरथः = व्याप्त-स्यन्दनः। सः = अजः। नीहारमग्नः = हिमव्याप्तः। दिनपूर्वभागः = प्रातःकालः। किञ्चित्प्रकाशेन = ईषदातपेन। विवस्वता = सूर्येण। इव = यथा। ध्वजाग्रमा-त्रेण = पताकाग्रभागेन। लक्ष्यः = दृश्यः। बभूव = आसीत्।

समासः—अश्यन्ते असन्ति वा अस्त्राणि, अस्त्राणां व्रजाः अस्त्रव्रजाः तैः अस्त्रव्रजैः। छन्नः रथो यस्य स छन्नरथः। ध्वजस्य अग्रम् ध्वजाग्रम् ध्वजाग्रमेव ध्वजाग्रमात्रं तेन ध्वजाग्रमात्रेण, निर्ह्रियन्ते इति नीहाराः नीहारैः मग्नः नीहार-मग्नः पूर्वश्चासौ भागः पूर्वभागः दिनस्य पूर्वभागः दिनपूर्वभागः। किञ्चित् प्रकाशो यस्य स किञ्चित्प्रकाशः तेन किञ्चित्प्रकाशेन। विविधं वस्ते आच्छादय-तीति विवस्वान् यद्वा विवः रश्मिरस्यास्तीति विवस्वान्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—शत्रूणां बाणवर्षणैः आच्छन्नरथः अजः केवलं ध्वजाग्रमात्रेण तथैव दृश्यते स्म यथा नीहाराच्छन्नः प्रातःकालः किञ्चित्प्रकाशेन सूर्येण लक्ष्यते। अर्थात् तत्र महोग्रबाणवर्षणैर्ध्वजाग्रमात्रातिरिक्तं किमपि न दृश्यते स्मेति भावः।

सञ्जीविनी—परेषां द्विषामस्त्रव्रजैः शस्त्रसमुदायैश्छन्नरथः सोऽजः नीहारैर्हिमैर्मग्नो दिनपूर्वभागः प्रातःकालः किंचित्प्रकाशेनेषल्लक्ष्येण विवस्वतेव आच्छादितरथः ध्वजाग्रमात्रेण लक्ष्यो बभूव। ध्वजाग्रादन्यन्न किञ्चिल्लक्ष्यते स्मेत्यर्थः।

भावार्थ—इन राजाओं ने अज पर इतने बाण बरसाये कि उनके अस्त्रों से अज का रथ ढँक गया। जिस प्रकार कुहरे के दिनों में सुबह होने का ज्ञान धुंधले प्रकाश वाले सूर्य को देखकर होता है उसी प्रकार अज के रथ की पताका के सिरे को देखकर ही अज का ज्ञान होता था॥ ६०॥

प्रियंवदात्प्राप्तमसौ कुमारः प्रायुङ्क्त राजस्वधिराजसूनुः।
गान्धर्वमस्त्रं कुसुमास्त्रकान्तः प्रस्वापनं स्वप्ननिवृत्तलौल्यः॥ ६१॥

अन्वयः—अधिराजसूनुः कुसुमास्त्रकान्तः स्वप्ननिवृत्तलौल्यः असौ कुमारः प्रियंवदात् प्राप्तं प्रस्वापनं गान्धर्वम् अस्त्रं राजसु प्रायुङ्क्त।

व्याख्या—अधिराजसूनुः=महाराजरघुपुत्रः। कुसुमास्त्रकान्तः=पुष्पायुधमदनवन्मनोहरः। स्वप्ननिवृत्तलौल्यः=तन्द्रापरावृततृष्णः। असौ=एषः। कुमारः=युवराजः। प्रियम्वदात्=प्रियम्वदनामकात् गन्धर्वात्। प्राप्तम्=लब्धम्। प्रस्वापनं=निद्राकारकम्। अस्त्रं=सम्मोहननामकं शस्त्रम्। राजसु=नृपेषु विरोधिभूपालेषु। प्रायुंक्त=प्रयुक्तवान्। तत्प्रयोगेण सर्वे योद्धारो राजानो मृतवत् प्रसुप्ता इत्यर्थः।

समासः—प्रियं वदतीति प्रियंवदः तस्मात् प्रियम्वदात्। राजभ्योऽधिकः अधिराजः अधिराजस्य सूनुः अधिराजसूनुः। कुसुमान्येवास्त्राणि यस्य सः कुसुमास्त्रः कुसुमास्त्र इव कान्तः कुसुमास्त्रकान्तः। स्वप्नात् निवृत्तं लौल्यं यस्य सः स्वप्ननिवृत्तलौल्यः। कुमारति क्रीडतीति कुमारः। गन्धं सौरभम् अर्वतीति गन्धर्वः, गन्धर्वस्येदं गान्धर्वम्। प्रकर्षेण स्वापयतीति प्रस्वापनं तत् प्रस्वापनम्।

भावार्थः—महाराजस्य रघोः पुत्रः मदन इवातिसुन्दरो जागरूकः सावधानश्चाजः प्रियम्वदनामकात् गन्धर्वात् प्राप्तं संमोहननामकमस्त्रं शत्रुषु राजसु प्रयुक्तवान्। तेन प्रयोगेन ते शत्रवः मृतवत् प्रसुप्ता इति भावः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सञ्जीविनी—अधिराजसूनुर्महाराजपुत्रः कुसुमास्त्रकान्तो मदनसुन्दरः स्वप्ननिवृत्तलौल्यः स्वप्नवितृष्णः जागरूक इत्यर्थः। असौ कुमारोऽजः प्रियंवदात्पूर्वोक्ताद् गन्धर्वात्प्राप्तं गान्धर्वं गन्धर्वदेवताकम्। 'सास्य देवता' इत्यण्। प्रस्वापयतीति प्रस्वापनं निद्राजनकमस्त्रं राजसु प्रायुङ्क्त प्रयुक्तवान्।

भावार्थ—उसके बाद कामदेव के समान सुन्दर सदा सावधान रहने वाले उस रघुकुमार अज ने प्रियम्वद नाम के गन्धर्व से प्राप्त, उस प्रस्वापन नामक गान्धर्व अस्त्र को शत्रुसेना के ऊपर चलाया जिससे उन्हें नींद आ जाती है ॥६१॥

ततो धनुष्कर्षणमूढहस्तमेकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम्।
तस्थौ ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं निद्राविधेयं नरदेवसैन्यम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—ततः धनुष्कर्षणमूढहस्तं एकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालं ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहम् नरदेवसैन्यं निद्राविधेयं सत् तस्थौ।

व्याख्या—ततः गान्धर्वास्त्रप्रयोगानन्तरम्। धनुष्कर्षणमूढहस्तं=चापसन्धानशून्यकरम्। एकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालं=एकस्कन्धपतितशीर्षकसमूहम्। ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं=पताकायूपपतितशरीरम्। नरदेवसैन्यं=भूपालसेनम्। तस्थौ=अतिष्ठत्।

समासः—धनुषः कर्षणं धनुष्कर्षणं धनुष्कर्षणे मूढः हस्तो यस्य तत् धनुष्कर्षणमूढहस्तम्। शिरांसि त्रायन्ते यैः, तानि शिरस्त्राणि शिरस्त्राणां जालमिति शिरस्त्रजालम् एकश्चासौ अंसः एकांसः एकांसे पर्यस्तं शिरस्त्रजालं यस्य तत् एकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम्। स्तम्नाति स्तम्भः ध्वजानां स्तम्भाः ध्वजस्तम्भाः ध्वजस्तम्भेषु निषण्णा देहा यस्य तत् ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहम्। नराणां देवा नरदेवा नरदेवानां सैन्यमिति नरदेवसैन्यम्। विधातुं शक्यं विधेयं निद्राया विधेयं निद्राविधेयम्।

भावार्थः—गान्धर्वास्त्रप्रयोगेण तेषां राज्ञां सेना निद्रावशीभूता जाता, धनुष्कर्षणात्तेषां हस्ता अवरुद्धाः, तेषां शिरस्त्राणानि एकस्मिन् स्कन्धेऽवलम्बितानि तथा पताकादण्डे तेषां शरीराणि पतितानि। तान्यवलम्ब्य ते प्रसुप्ता इति भावः।

सञ्जीविनी—ततो धनुष्कर्षणे चापकर्षणे मूढहस्तमव्यापृतहस्तम् एकस्मिन्नंसे पर्यस्तं त्रस्तं शिरस्त्राणां शीर्षण्यानां जालं समूहो यस्य तत्। ध्वजस्तम्भेषु निषण्णा अवष्टब्धा देहा यस्य तत्। नरदेवानां राज्ञां सेनैव सैन्यं चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्प्रत्ययः। निद्राविधेयं निद्रापरतन्त्रं तस्थौ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषार्थ—गान्धर्वास्त्र के छोड़ते ही राजाओं की सेना सो गई, नींद से सैनिकों के हाथ ऐसे रुक गये कि वे अपने धनुष तक को नहीं खींच पाये। उनकी पगड़ियाँ गिरकर एक तरफ कन्धे पर झूलने लगीं और शरीर पताका के खम्भों के सहारे स्थित हो गया ॥ ६२ ॥

ततः प्रियापात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः ।
तेन स्वहस्तार्जितमेकवीरः पिबन्यशो मूर्तमिवावभासे । ६३ ॥

अन्वयः—ततः कुमारः प्रियोपात्तरसे अधरोष्ठे जलजं निवेश्य दध्मौ तेन एकवीरः स्वहस्तार्जितं मूर्तं यशः पिबन् इव आवभासे ।

व्याख्या—ततः=शत्रुसेनास्वप्नानन्तरम् । कुमारः=युवराजः अजः प्रियोपात्तरसे=इन्दुमत्यास्वादितमाधुर्ये । अधरोष्ठे=ओष्ठाधरभागे । जलजं=शङ्खम् । निवेश्य=संस्थाप्य । दध्मौ=ध्मातवान् । मुखानलेन पूरितवान् । तेन=ओष्ठनिविष्टजलजेन । एकवीरः=अद्वितीयशूरः । सः=अजः । स्वहस्तार्जितं=निजभुजबललब्धम् । मूर्तं=मूर्तिमत् । यशः=कीर्तिम् । पिबन्=पानं कुर्वन् । इव=यथा । आवभासे=शुशुभे ।

समासः—प्रियया उपात्तः रसः यस्य सः प्रियोपात्तरसः तस्मिन् प्रियोपात्तरसे । अधरश्चासौ ओष्ठः अधरोष्ठः तस्मिन् अधरोष्ठे । स्वस्य हस्तौ स्वहस्तौ स्वहस्ताभ्यामर्जितं स्वहस्तार्जितं तत् स्वहस्तार्जितम् । एकश्चासौ वीरः एकवीरः ।

भावार्थः—शत्रुसेनास्वप्नानन्तरं स अजः तस्मिन् ओष्ठे शंखं निधाय दध्मौ यस्य रसास्वाद इन्दुमत्या गृहीत आसीत् । तेन ओष्ठस्थापितेन शङ्खेन पराक्रमी कुमारोऽजः स्वबाहुबलेनार्जितं स्वकीयं मूर्तिमत् यशः पिबन्निव शुशुभे इति भावः ।

सञ्जीविनी—ततः कुमारोऽजः प्रिययेन्दुमत्योपात्तरस आस्वादितमाधुर्ये अतिश्लाघ्य इति भावः । अधरोष्ठे जलजं शङ्खं निवेश्य । 'जलजं शङ्खपद्मयोः' इति विश्वः । दध्मौ मुखमारुतेन पूरयामास । तेनौष्ठनिविष्टेन शङ्खेनैकवीरः स स्वहस्तार्जितं मूर्तं मूर्तिमद्यशः पिबन्निवावभासे । यशसः शुभ्रत्वादिति भावः ।

भाषार्थ—इसके बाद अद्वितीय वीर कुमार अज ने अपनी प्रिया इन्दुमती के चुम्बन का रसास्वाद लेने वाले अधरोष्ठ पर शंख को रखकर बजाया ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने बाहुबल से उपार्जित मूर्तिमान् अपने यश को पी रहे हों ॥ ६३ ॥

शङ्खस्वनाभिज्ञतया निवृत्तास्तं सन्नशत्रुं ददृशुः स्वयोधाः ।
निमीलितानामिव पङ्कजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशाङ्कम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः—स्वयोधाः शङ्खस्वनाभिज्ञतया निवृत्ताः सन्तः निमीलितानां पङ्कजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशाङ्कम् इव सन्नशत्रुं तं ददृशुः ।

व्याख्या—शङ्खस्वनाभिज्ञतया = जलजरवज्ञाततया । निवृत्ताः = प्रत्यागताः । अजवीरसैनिकाः । सन्नशत्रुं = निद्रानिलीनशत्रुम् । तम् = अजम् । निमीलितानां = अमुकुलितानाम्, पङ्कजानां = कमलानाम् । मध्ये = गर्भे, स्फुरन्तं = विकसितं प्रफुल्लं चलन्तम् । प्रतिमाशशाङ्कं = प्रतिबिम्बचन्द्रम् । इव = यथा । ददृशुः = दृष्टवन्तः, अवलोकयामासुः ।

समासः—अभिजानन्तीति अभिज्ञाः, शं खनतीति शंखः, शं खं यस्य स शङ्खः, शाम्यति अलक्ष्मीति वा शङ्खः, शंखस्य स्वनं शंखस्वनं शंखस्वनस्य अभिज्ञाः शंखस्वनाभिज्ञाः शंखस्वनाभिज्ञानां भावः शंखस्वनाभिज्ञता तया शंखस्वनाभिज्ञतया । सन्नाः शत्रवो यस्य स सन्नशत्रुः तं सन्नशत्रुं । स्वस्य योधाः स्वयोधाः । प्रतिमीयतेऽनया सा प्रतिमा, शशति उत्प्लुत्य गच्छतीति शशः, शशः अङ्के यस्य स शशाङ्कः, प्रतिमा शशाङ्को यस्य स प्रतिमाशशाङ्कः तं प्रतिमाशशाङ्कम् ।

भावार्थः—अजशंखध्वनिं निशम्य परावृत्ताः अजसैनिका मूर्च्छया प्रसुप्तानां शत्रूणां मध्ये चलन्तमजं मुकुलितानां कमलानां मध्ये परिस्फुरन्तं प्रतिबिम्बरूपिणं चन्द्रमसमिवावलोकयामासुः ।

सञ्जीविनी—शङ्खस्वनस्याजशङ्खध्वनेरभिज्ञतया प्रत्यभिज्ञातत्वान्निवृत्ताः प्राक् पलाय्य संप्रति प्रत्यागताः स्वयोधाः सन्नशत्रुं निद्राणशत्रुं तमजं निमीलितानां मुकुलितानां पङ्कजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमा चासौ शशाङ्कश्च तं प्रतिमाशशाङ्कं प्रतिबिम्बचन्द्रमिव ददृशुः ।

भाषार्थ—शंख की ध्वनि को पहचान कर लौटे हुए अज के सैनिकों ने सोते हुए शत्रुओं के बीच में अज को इस प्रकार देखा जिस प्रकार मुकुलित कमलों के बीच में चन्द्रमा चमक रहा हो ॥ ६४ ॥

सशोणितैस्तेन शिलीमुखाग्रैर्निक्षेपिताः केतुषु पार्थिवानाम् ।
यशो हृतं संप्रति राघवेण न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः ॥ ६५ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः——सम्प्रति राघवेण वः यशः हृतं कृपया जीवितं तु न इति वर्णा तेन सशोणितैः शिलीमुखाग्रैः पार्थिवानां केतुषु निक्षेपिताः ।

व्याख्या—संप्रति=इदानीम् । राघवेण=रघुपुत्रेण अजेन । हे राजानः ! वः=युष्माकम् । यशः=कीर्तिः । हृतम्=जितम् । जीवितं=जीवनं प्राणाः तु कृपया=दयया, न तु असामर्थ्येन । न=नहि हृतम् । इति =एवम् । वर्णाः=अक्षराणि । सशोणितैः=सरुधिरैः । शिलीमुखाग्रैः=वाणाग्रभागैः । तेन कुमारेण अजेन । पार्थिवानां=राज्ञाम् । केतुषु=ध्वजेषु, पताकास्तम्भेषु । निक्षेपिताः=निवेशिताः, अजेन प्रेरितैरन्यैः स्वसैन्यकैः लिखिता इत्यर्थः ।

समासः—रघोरपत्यं पुमान् राघवः तेन राघवेण । वर्णयन्तीति वर्णाः । शोणितेन सहितानि सशोणितानि तैः सशोणितैः । शल्यं मुखे येषां ते शिलीमुखाः शिलीमुखानामग्राणिशिलीमुखाग्राणि तैः शिलीमुखाग्रैः पृथिव्या ईश्वराःपार्थिवाः तेषां पार्थिवानाम् ।

भावार्थः—हे राजानः ! इदानीम् अजेन इतः पूर्वं रघुणा च युष्माकं यशस्तु हृतं किन्तु दयया प्राणाः न हृताः, इतीमानि अक्षराणि वाणानां रुधिरार्द्रैरग्रभागैः स्वसैनिकद्वारा शत्रुध्वजस्तम्भेषु लिखितानीति भावः ।

सञ्जीविनी—संप्रति राघवेण रघुपुत्रेण । पूर्वं रघुणेतिभावः । हे राजानः ! वो युष्माकं यशो हृतम् । जीवितं तु कृपया न हृतम् । न त्वशक्त्येति भावः । इत्येवंरूपा वर्णाः एतदर्थप्रतिपादकं वाक्यमित्यर्थः । सशोणितैः शोणितदिग्धैः शिलीमुखाग्रैर्वाणाग्रैः साधनैस्तेनाजेन प्रयोजककर्त्रा पार्थिवानां राज्ञां केतुषु ध्वजस्तम्भेषु निक्षेपिताः प्रयोज्यैरन्यैर्निवेशिताः लेखिताः इत्यर्थः । क्षिपतेर्ण्यन्तात् कर्मणि क्तः ।

भाषार्थ—उन मूर्च्छित पड़े हुए राजाओं की पताकाओं पर रुधिर से लिप्त बाणों के अग्रभाग से अज ने यह लिखवा दिया कि हे राजाओं ! इस समय रघुपुत्र अज ने आप लोगों के यश को तो ले लिया ही, किन्तु दया करके प्राण नहीं लिये ॥ ६५ ॥

स चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः ।
ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुर्भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे ॥ ६६ ॥

अन्वयः—चापकोटिनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुः सः भीतां प्रियाम् एत्य वचः बभाषे ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्या—चापकोटीनिहितैकबाहुः = धनुरग्रभागस्थापितैकहस्तः। शिरस्त्र-निष्कर्षणभिन्नमौलिः = शीर्षकापनयनश्लथचूडः, श्लथकेशबन्धः, ललाटबद्धश्रम-वारिबिन्दुः = मस्तकसञ्जातश्रमजलबिन्दुः। सः = अजः। भीतां = भयमापन्नाम्, उद्विग्नाम्। प्रियां = दयिताम्, इन्दुमतीम्। एत्य = प्राप्य। वचः = वक्ष्यमाणं वचनम्। बभाषे = अवोचत्।

समासः—चापस्य कोटिः चापकोटिः चापकोट्यां निहितः एकः बाहुः येन स चापकोटीनिहितैकबाहुः। शिरः त्रायते रक्षतीति शिरस्त्राणं शिरस्त्राणस्य निष्कर्षणं शिरस्त्राणनिष्कर्षणं शिरस्त्राणनिष्कर्षणेन भिन्ना मौलिः यस्य सः शिरस्त्राणनिष्कर्षणभिन्नमौलिः। श्रमस्य वारि श्रमवारि श्रमवारिणः बिन्दवः श्रमवारिबिन्दवः। ललाटे बद्धाः श्रमवारिबिन्दवो यस्य सः ललाटबद्धश्रम-वारिबिन्दुः।

भावार्थः—धनुषः कोट्यग्रभागे निहितैकहस्तः, शिरस्त्राणापनयनेन विश्लथकेशः, ललाटे दृश्यमानश्रमबिन्दुः अजः भयोद्विग्नां, प्रियतमामिन्दुमतीमुपस्थाय सस्नेहमवोचदिति भावः।

सञ्जीविनी—चापकोट्यां निहितं एकबाहुर्येन स शिरस्त्रस्य निष्कर्षणे-नापनयनेन भिन्नमौलिः श्लथकेशबन्धः। 'चूडाकिरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः' इत्यमरः। ललाटे बद्धाः श्रमवारिबिन्दवो यस्य स सोऽजो भीतां प्रियामिन्दु-मतीमेत्यासाद्य वचो बभाषे।

भाषार्थ—धनुष के एक छोर पर हाथ को रखे हुए युद्धकालीन टोप के हटा देने से बिखरे केश वाले और ललाट पर पसीने की बूंदों से युक्त वे अज युद्ध के देखने से डरी हुई अपनी प्रिया इन्दुमती के पास आकर बोले ॥६६॥

इतः परानर्भकहार्यशस्त्रान्वैदर्भि ! पश्यानुमता मयाऽसि।
एवंविधेनाहवचेष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः ॥ ६७ ॥

अन्वयः—हे वैदर्भि ! त्वं इतः अर्भकहार्यशस्त्रान् परान् पश्य मया द्रष्टुम् त्वं अनुमता असि एभिः एवंविधेन आहवचेष्टितेन मम हस्तगता त्वं प्रार्थ्यसे।

व्याख्या—हे वैदर्भि != अयि विदर्भराजपुत्रि ! इन्दुमति !। इतः = इदानीम्। अर्भकहार्यशस्त्रान् = बालकापहार्यायुधान्। परान् = शत्रून् त्वं पश्य = अवलोकय। मया = अजेन। अनुमता = द्रष्टुमनुमोदिता असि। एभिः =

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजभिः। एवंविधेन = निद्रारूपेण। आहवचेष्टितेन। मम = अजस्य। हस्तयोः = करयोः। गता = प्राप्ता। त्वं = भवती। प्रार्थ्यसे = अपजिहीर्ष्यसे, एवंविधरणकर्मणा बलान्नेतुम् अभिलप्स्यसे।

समासः—हर्तुं योग्यानि हार्याणि अर्भकैः हार्याणि शस्त्राणि येषां तेऽर्भकहार्यशस्त्राः तान् अर्भकहार्यशस्त्रान्। एवं विधा यस्य तत् एवंविधम् तेन एवंविधेन। आहवस्य चेष्टितं आहवचेष्टितम् तेन आहवचेष्टितेन।

भावार्थः—अयि विदर्भराजतनये! एवंविधान् शत्रून् पश्य, येषां वस्त्राणि बालका अपि अपहर्तुं शक्नुवन्ति। मया द्रष्टुं तुभ्यमनुमतिं दीयते। इमे राजानः अनेनैव बलेन युद्धं कृत्वा मम हस्तात् त्वामपहर्तुमिच्छन्ति। अर्थात् अजः नेत्रहस्तयोः सङ्केतेन रणे प्रसुप्तान् नृपान् प्रदर्श्य परिहासपूर्वकमब्रवीदिति भावः।

सञ्जीविनी—हे वैदर्भि इन्दुमती! इतः इदानीमर्भकहार्यशस्त्रान् बालकापहार्यायुधान् पराञ्शत्रून्पश्य। मयाऽनुमतासि। द्रष्टुमिति शेषः। एभिर्नृपैरेवंविधेन निद्रारूपेणाहवचेष्टितेन रणकर्मणा मम हस्तगता हस्तगतवद्दुर्ग्रहेत्यर्थः। त्वं प्रार्थ्यसे अपजिहीर्ष्यस इत्यर्थः। एवंविधेनेत्यत्र। स्वहस्तनिर्देशेन सोपहासमुवाचेति द्रष्टव्यम्।

भाषार्थ—अयि विदर्भराजकुमारी! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, देखो तो सही युद्धस्थल में राजा लोग इस प्रकार सोये हुये हैं कि बालक भी इनके अस्त्र छीन सकते हैं। देखो, इसी बल पर ये मेरे हाथों से तुमको छीनना चाहते थे॥ ६७॥

तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्सद्यो विमुक्तं मुखमाबभासे।
निःश्वासबाष्पापगमात्प्रपन्नः प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः॥ ६८॥

अन्वयः—प्रतिद्वन्द्विभवात् विषादात् सद्यः विमुक्तं तस्याः मुखं निःश्वासबाष्पापगमात् आत्मीयं प्रसादं प्रपन्नः आत्मदर्श इव आबभासे।

व्याख्या—प्रतिद्वन्द्विभवात् = शत्रुजन्यात्। विषादात् = दैन्यात्। सद्यः = सपदि। विमुक्तं = त्यक्तम् रहितम्। तस्याः = इन्दुमत्याः। मुखम् = आननम्। निःश्वासबाष्पापगमात् = श्वासप्रश्वासोष्मविनाशात्। आत्मीयं = स्वकीयम्। प्रसादं = प्रसन्नतां, नैर्मल्यम्। प्रपन्नः = प्राप्तः। आत्मदर्शः = दर्पणः, मुकुरः। इव = यथा। आबभाषे = दिदीपे।

समासः—द्वन्द्वं प्रति प्रतिद्वन्द्वं प्रतिद्वन्द्वमस्ति येषां ते प्रतिद्वन्द्विनः प्रतिद्वन्द्विभ्यो भवः प्रतिद्वन्द्विभवः तस्मात् प्रतिद्वन्द्विभवात्। निःश्वासस्य बाष्पः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निःश्वासबाष्पः निःश्वासबाष्पस्य अपगमः निःश्वासबाष्पापगमः तस्मात् निःश्वासबाष्पापगमात् । आत्मन इदमात्मीयः तमात्मीयम् । आत्मा स्वरूपं दृश्यतेऽनेति आत्मदर्शः ।

भावार्थः—शत्रूणां भयात् समुत्पन्नया दीनतया रहितम् इन्दुमत्या मुखं तद्दर्पण इव चमत्कृतं जातं यः निःश्वासबाष्पापगमात् निर्मलो जायते, इति भावः ।

सञ्जीविनी—प्रतिद्वन्द्विभवाद्रिपूत्थाद्विषादाद्दैन्यात्सद्यो विमुक्तं तस्या मुखं निःश्वासस्य यो बाष्प ऊष्मा । 'बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः' इति विश्वः । तस्यापगमाद्धेतोरात्मीयं प्रसादं नैर्मल्यं प्रपन्नः प्राप्तः आत्मा स्वरूपं दृश्यतेऽनेनेत्यात्मदर्शो दर्पण इव । आबभासे ।

भावार्थ—जब इन्दुमती को यह निश्चय हो गया कि शत्रु मारे गये तब उसका मुँह उस दर्पण के समान सुशोभित हो गया जिस पर पड़ी हुई सांस की भाप पोछ दी गई हो ।। ६८ ।।

हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षाद्वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत् ।
स्थली नवाम्भःपृषताभिवृष्टा मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम् ।। ६९ ।।

अन्वयः—सा हृष्टा अपि ह्रीविजिता सती प्रियं साक्षात् स्वयं न अभ्यनन्दत् किन्तु नवाम्भःपृषताभिवृष्टा स्थली अभ्रवृन्दं मयूरकेकाभिः इव सखीनां वाग्भिः अभ्यनन्दत् ।

व्याख्या—सा = इन्दुमती । हृष्टा = प्रसन्ना अपि, पत्युः पराक्रमेण प्रसन्ना अपि । ह्रीविजिता = लज्जाधीना यस्मात् कारणात् तस्मात् । प्रियं = दयितमजम् । साक्षात् = स्वयम् । न = नहि । अभ्यनन्दत् = प्रशशंस, स्वमुखेन प्रशंसां नहि कृतवती, किन्तु नवाम्भःपृषताभिवृष्टा = नूतनजलबिन्दुभिषिक्ता । स्थली = अकृत्रिमा भूमिः । अभ्रवृन्दं = मेघसमूहम् । मयूरकेकाभिः = नीलकण्ठवाणीभिः, बर्हिवंचनैः इव = यथा । सखीनां = सहचरीणाम् वाग्मीनाम् । वाग्भिः = वचनैः । अभ्यनन्दत् = अभिनन्दितवती ।

समासः—ह्रिया विजिता ह्रीविजिता । पर्षन्तीति पृषताः अम्भसः पृषता अम्भःपृषता नवाश्च ते अम्भःपृषताः नवाम्भःपृषता नवाम्भःपृषतैः अभिवृष्टा नवाम्भःपृषताभिवृष्टा । मह्यां रौतीति मयूरः । के मूर्ध्नि कायतीति केका, मयूरस्य केकाः मयूरकेकाः ताभिः मयूरकेकाभिः । अभ्राणां वृन्दमभ्रवृन्दम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—निजपत्युः अजस्य पराक्रमेण इन्दुमती परमप्रसन्ना जाता, अथापि लज्जया स्वयं तदभिनन्दनं कर्तुं नाशक्नोत् किन्तु यथा नूतनजलबिन्दुभिः आर्द्रा भूमिः मयूरवाण्या मेघानां स्वागतं करोति तथैव सा सखीवचनैः स्वपत्युः प्रशंसां कृतवतीति भावः।

सञ्जीविनी—सेन्दुमती हृष्टापि पत्युः पौरुषेण प्रमुदितापि ह्रिया विजिता यतोऽतः प्रियमजं साक्षात्स्वयं नाभ्यनन्दन्न प्रशशंस। किंतु नवैरम्भःपृषतैः पयोबिन्दुभिरभिवृष्टाऽभिषिक्ता स्थल्यकृत्रिमा भूमिः। 'जानपदकुण्डगोणस्थल०' इत्यादिनाऽकृत्रिमार्थे ङीष्। अभ्रवृन्दं मेघसंघं मयूरकेकाभिरिव सखीनां वाग्भिरभ्यनन्दत्।

भाषार्थः—जिस प्रकार नये बादलों की बूंदों से भींगी हुई वनस्थली मयूर के शब्दों से मेघों का अभिनन्दन करती है उसी प्रकार अपने पति के पराक्रम से अत्यन्त प्रसन्न हुई इन्दुमती लज्जा के कारण स्वयं तो कुछ नहीं कह सकी, किंतु सखियों के वचनों द्वारा अज का अभिनन्दन किया॥ ६९॥

इति शिरसि स वामं पादमाधाय राज्ञामुदवहदनवद्यां तामवद्यादपेतः।
रथतुरगरजोभिस्तस्य रूक्षालकाग्रा समरविजयलक्ष्मीः सैव मूर्ता बभूव॥ ७०॥

अन्वयः—अवद्यात् अपेतः सः इति राज्ञां शिरसि वामं पादम् आधाय अनवद्यां तां उदवहत् रथतुरगरजोभिः रूक्षालकाग्रा सा एव तस्य मूर्त्ता समरविजयलक्ष्मीः बभूव।

व्याख्या—अवद्यात्=गर्ह्यात्, निन्दनीयाम्। अपेतः=शून्यः, दोषरहितः। सः=अजः। इति=इत्थम्। राज्ञां=भूपालानाम्। शिरसि=मस्तके। वामं=सव्यम्। पादं=चरणम्। आधाय=निधाय, कृत्वा। अनवद्यां=दोषरहितां सर्वाङ्गसुन्दरीम्। तां=इन्दुमतीम्। उदवहत्=उपानयत्, स्वकीयां कृतवान्। तस्य=अजस्य। रथतुरगरजोभिः=स्यन्दनाश्वधूलिभिः। रूक्षालकाग्रा=अचिक्कणकेशा। सा=इन्दुमती एव मूर्ता=मूर्तिमती। समरविजयलक्ष्मीः=संग्रामजयश्रीः। बभूव=जाता। एतल्लाभादन्यः को विजयलक्ष्मीलाभ इत्यर्थः।

समासः—न उद्यते न उच्यते इत्यवद्यं तस्मात् अवद्यात्। तुरेण त्वरया गच्छन्तीति तुरगाः, रमन्तेऽत्रासौ रथः, रजतीति रजः, रथस्य तुरगाः रथतुरगाः रथतुरगानां रजांसि रथतुरगरजांसि तैः रथतुरगरजोभिः। रूक्षाणि अलकानामग्राणि यस्याः सा रूक्षालकाग्रा। विजयस्य लक्ष्मीः विजयलक्ष्मी। समरे या विजयलक्ष्मीः समरविजयलक्ष्मीः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावार्थः—प्रशंसनीयो निर्दोषजः एवं शत्रुनृपतीनां मस्तकेषु वामं चरणं निधाय तां सर्वाङ्गसुन्दरीमिन्दुमतीं प्राप्तवान् तथा रथाश्वखुरोत्थधूलिभिः रूक्षालका सा इन्दुमती एव मूर्तिमती समरभूमिलक्ष्मीरजायतेति भावः।

सञ्जीविनी—नोद्यते नोच्यत इत्यवद्यं गर्ह्यम्। 'अवद्यपण्यवर्यागर्ह्योपणितव्यानिरोधेषु' इत्यनेन निपातः। 'कुपूयकुत्सितावद्यखेटगर्ह्याणकाः समाः' इत्यमरः। तस्मादपेतः निर्दोष इत्यर्थः। सोऽज इति राज्ञां शिरसि वामं पादमाधायानवद्यामदोषां तामिन्दुमतीमुदवहदुपानयत्। आत्मसाच्चकारेत्यर्थः अयमर्थः— 'तमुद्वहन्तं पथिभोजकन्याम्' इत्यत्र न श्लिष्टः। तस्याजस्य रथतुरगाणां रजोभी रूक्षाणि परुषाण्यलकाग्राणि यस्याः सा सेन्दुमत्येव मूर्ता मूर्तिमती समरविजयलक्ष्मीर्बभूव। एतल्लाभादन्यः को विजयलक्ष्मीलाभ इत्यर्थः।

भाषार्थ—इस प्रकार निर्दोष वे अज उन राजाओं के शिरों पर बाँया पैर रखकर सर्वाङ्गसुन्दरी उस इन्दुमती को लेकर चले। रथ के घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूलि से इन्दुमती के केश भर गये थे, उस समय वह साक्षात् विजयलक्ष्मी जैसी जान पड़ती थी ॥ ७० ॥

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः संनिवृत्तं
विजयिनमभिनन्द्य श्लाघ्यजायासमेतम्।
तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभून्
नहि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ॥ ७१ ॥

अन्वयः—प्रथमपरिगतार्थः रघुः विजयिनं श्लाघ्यजायासमेतं सन्निवृत्तं तम् अभिनन्द्य तदुपहितकुटुम्बः सन् शान्तिमार्गोत्सुकः अभूत् हि कुलधुर्ये सति सूर्यवंश्याः गृहाय न भवन्ति।

व्याख्या—प्रथमपरिगतार्थः=अजागमनात् पूर्वमेवावगतवृत्तान्तः। रघुः=दिलीपपुत्रः। विजयिनं=विजेतारम्। श्लाघ्यजायासमेतं=योग्यपत्नीयुक्तम्। संनिवृत्तं=प्रत्यागतम्। तम्=अजम्। अभिनन्द्य=प्रशस्य। तदुपहितकुटुम्बः=तद्विन्यस्तपरिवारभारः। सन्। शान्तिमार्गोत्सुकः=मोक्षमार्गोत्कण्ठितः। आसीत्=बभूव। वानप्रस्थाश्रमं गत्वा श्रवणमननादिपरो जात इत्यर्थः। कुलधुर्ये=वंशधुरन्धरे सति। सूर्यवंश्या=सूर्यकुलोत्पन्ना राजानः। गृहाय=गृहस्थाश्रमाय। नहि भवन्ति=न कल्पन्ते, चतुर्थाश्रमं सेवितुं वनं व्रजन्तीत्यर्थः।

समासः—प्रथमं परिगतः अर्थः येन स प्रथमपरिगतार्थः। जायतेऽस्यामिति जाया श्लाघयितुं योग्या श्लाघ्या श्लाघ्या जाया श्लाघ्यजाया, श्लाघ्यजायया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समेत: श्लाघ्यजायासमेत: तं श्लाघ्यजायासमेतम् । तस्मिन् उपहित: कुटुम्ब: येन स तदुपहितकुटुम्ब: । शान्ते: मार्ग: शान्तिमार्ग: शान्तिमार्गे उत्सुक: शान्तिमार्गोत्सुक: । धुरं वहतीति धुर्य: कुले कुलस्य वा धुर्य: कुलधुर्य: तस्मिन् कुलधुर्ये । वंशे भवा वंश्या सरत्याकाशे इति सूर्य: सूर्यस्य वंश्या: सूर्यवंश्या: । गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम् तस्मै गृहाय । विजयोऽस्यास्तीति विजयी तं विजयिनम् ।

भावार्थ:—अजस्यागमनात् पूर्वमेव विवाहसमरविजयवृत्तान्तज्ञाता रघु: योग्यपत्नीसहितं प्रत्यागतं विजयिनं पुत्रमजमभिनन्द्य तस्मिन् परिवारपालनभारं निधाय वानप्रस्थाश्रमनियमनिर्वाहार्थं वने गन्तुमुत्सुकोऽभवत् । हि सूर्यवंशोद्भवा भूपाला योग्ये पुत्रे जाते गृहस्थाश्रमे न सज्जन्ते इति भाव: ।

इति कविवर-कालिदासप्रणीते रघुवंशे महाकाव्ये
पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिकृतायां व्याख्यायां
विमलाख्यायां सप्तम: सर्ग: समाप्त: ।

सञ्जीविनी—प्रथममजागमनात्प्रागेव परिगतो ज्ञातोऽर्थो विवाहविजयरूपो येन स प्रथमपरिगतार्थो रघुर्विजयिनं विजययुक्तं श्लाघ्यजायासमेतं सन्निवृत्तं तमजमभिनन्द्य तस्मिन्नज उपहितकुटुम्ब: सन् । 'सुतविन्यस्तपत्नीक:' इति याज्ञवल्क्यस्मरणादिति भाव: । शान्तिमार्गे मोक्षमार्गे उत्सुकोऽभूत् । तथाहि कुलधुर्ये कुलधुरंधरे सति सूर्यवंश्या गृहाय गृहस्थाश्रमाय न भवन्ति ।

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया
व्याख्यया समेतो महाकविकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
अजपाणिग्रहणनामक: सप्तम: सर्ग: ।

भाषार्थ—महाराज रघु को यह सब समाचार अज के पहुँचने के पहले ही मिल चुका था । इसलिए उन्होंने विजयी तथा योग्य स्त्री के सहित आये हुए अज का अभिनन्दन किया और उन्हें कुटुम्ब का भार सौंप कर मोक्ष मार्ग की प्राप्ति के लिए उत्सुक हो गये । क्योंकि सूर्यवंशी राजाओं का यह नियम है कि वे पुत्र के योग्य हो जाने पर गृहस्थाश्रम में रहना पसन्द नहीं करते ।। ७१ ।।

इस प्रकार त्रिपाठ्युपाह्व पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठी द्वारा लिखित
चन्द्रकला नामक हिन्दी टीका में रघुवंश महाकाव्य का
अजपाणिग्रहण नामक सप्तम सर्ग समाप्त ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षष्ठसर्ग—श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकपादः	श्लोकसंख्या
अ	
अकार्यचिन्तासमकालमेव	३९
अथ स्तुते वन्दिभिरन्वयज्ञैः	८
अथाङ्गदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या	५३
अथाङ्गराजादवतार्य चक्षुः	३०
अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं	५९
अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि	५१
अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं	५४
अनेन पाणौ विधिवद् गृहीते	६३
अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून्	२८
अनेन यूना सह पार्थिवेन	३५
अनेन सार्द्धं विहम्बुराशेः	५७
अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुः	३२
असौ कुमारस्तमजोऽनुजातः	७८
असौ महाकालनिकेतनस्य	३४
असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः	५४
असौ शरण्यः शरणोन्मुखानां	२१
अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोः	४३
अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्तेः	३३
अस्त्रं हरादाप्तवता दुरापं	६२
आ	
आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना ततोऽन्यः	१५
आयोधने कृष्णगतिं सहायं	४२
आरूढमद्रीनुदधीन् वितीर्णं	७७
इ	
इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ	६५
इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां	७१
ए	
एवं तयोक्तं तमवेक्ष्य किञ्चित्	२५
ऐ	
ऐरावतास्फालनविश्लथं यः	७३
क	
कश्चित् कराभ्यामुपगूढनालं	१३
कश्चिद् यथाभागमवस्थितेऽपि	१९
कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये	२२
कुलेन कान्त्या वयसा नवेन	७९
कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्	१८
क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणां	२३
ज	
जगाद चैनामयमङ्गनाथः	२७
जातः कुले तस्य किलोरुकीर्तिः	७४
ज्याघातरेखे सुभुजो भुजाभ्यां	५५
ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य	४०
त	
ततः परं दुष्प्रसहं द्विषद्भिः	३१
ततः सुनन्दावचनावसाने	८०
ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा	२२
तथा गतायां परिहासपूर्वं	८२
तया स्रजा मङ्गलपुष्पमय्या	८४
तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं	६९
तस्यः प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि	४४
तस्यान्वये भूपतिरेष जातः	४१

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्लोकपादः	श्लोकसंख्या
तस्मिन्नभिद्योतितबन्धुपद्मे	३६
तस्मिन् विधानातिशये विधातुः	११
तस्मिन् समावेशितचित्तवृत्ति	७०
तस्यां रघोसूनुरुपस्थितायां	६८
तामग्रतस्तामरसान्तराभां	३७
ताम्बूलवल्ली परिणद्धपूगा	६४
तासु श्रिया राजपरम्परासु	५
तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां	१२
तेषां महार्हासनसंस्थितानां	६
त्रस्तेन तार्क्ष्यात् किल कालियेन	४९
न	
निवेश्य वामं भुजमासनार्द्धे	१६
निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थं	२९
नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा	४६
नृपं तमावर्तमनोज्ञनाभि	५२
नेत्रव्रजाः पौरजनस्य तस्मिन्	७
प	
परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नं	४
पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः	६०
पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति	७६
पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणाम्	९
प्रमुदितपक्षमेकस्तत्	८६
प्रलोभिताऽप्याकृतिलोभनीया	५८
म	
मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानं	१०
महेन्द्रमासाद्य महोक्षरूपं	७२
य	
यमात्मनः सद्मनि सन्निविष्टः	६५
यस्मिन् महीं शासति वाणिनीनां	५७
यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा	४७
यस्यावरोधस्तनचन्दनानां	४८
र	
रतेर्गृहीतानुनयेन कामं	२
व	
विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेः	६१
विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रं	१७
विस्रंस्तमंसादपरो विलासी	१४
वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः	३
श	
शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं	८५
स	
स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेशान्	१
सङ्ग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुः	३८
सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रिः	६७
सम्भाव्य भर्तारममुं युवानं	५०
सा चूर्णगौरं रघुनन्दनस्य	८३
सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं	८१
सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणं	४५
स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयः	६६

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तमसर्ग—श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकपादः	श्लोकसंख्या
अ	
अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां	१
अन्योऽन्यसूतोन्मथनादभूतां	५२
अभ्यर्द्धमार्गे परबाणलूना	४५
अर्द्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः	१०
आ	
आधोरणानां गजसन्निपाते	४६
आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या	६
आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ	४२
आसीद् वरः कण्टकितप्रकोष्ठः	२२
इ	
इतः परानर्भकहार्यशस्त्रान्	६७
इतः श्वसुर्भोजकुलप्रदीपः	२९
इति शिरसि स वामं	७०
इत्युद्गताः पौरवधूः	१६
उ	
उत्थापितः संयति रेणुरश्वैः	३९
उपान्तयोर्निष्कुषितं विहङ्गैः	५०
क	
कश्चिद् द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः	५१
ज	
जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या	९
त	
ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे	६३
ततस्तदालोकनतत्पराणां	५
ततो धनुष्कर्षणमूढहस्तं	९२
ततोऽवतीर्याशु करेणुकायाः	१७
तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधाः	२०
तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं	२७
तनुत्यजां वर्मभृतां विकोशैः	४८
तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्यां	३५
तयोरपाङ्गप्रतिसारितानि	२३
तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्	६८
तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधं	३६
तावत् प्रकीर्णाभिनवोपचारं	४
ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यः	१२
तासां मुखैरासवगन्धगर्भैः	११
तिस्रस्त्रिलोकप्रथितेन सार्द्धं	३३
तौ स्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा	२८
द	
दुकूलवासाः स वधूसमीपं	१९
न	
नदत्सु तूर्येष्वविभाव्यवाचः	३८
नितम्बगुर्वी गुरुणा प्रयुक्ता	२५
प	
पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशः	३७
परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रोः	५३
परस्परेण स्पृहणीयशोभं	१४
परेण भग्नेऽपि बले महौजाः	५५
पूर्वं प्रहर्त्ता न जघान भूयः	४७

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्लोकपादः	श्लोकसंख्या
प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः संनिवृत्तं	७१
प्रदक्षिणप्रक्रमणात् कृशानोः	२४
प्रमन्यवः प्रागपि कोसलेन्द्रे	३४
प्रसाधिकालम्बितमग्रपादं	७
प्रहारमूर्च्छापगमे रथस्थाः	४४
प्रियंवदात् प्राप्तमसौ कुमारः	६१
भ	
भर्तापि तावत् क्रथकैशिकानां	३२
म	
मत्स्यध्वजा वायुवशाद्विदीर्णैः	४०
महार्हसिंहासनसंस्थितोऽसौ	१८
र	
रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां	१५
रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्	५६
रथो रथाङ्गध्वनिना विजज्ञे	४१
ल	
लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते	३०
व	
विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन	८

श्लोकपादः	श्लो
व्यूहावुभौ तावितरेतरस्मात्	
श	
शङ्खस्वनाभिज्ञतया निवृत्ताः	
शिलीमुखोत्कृत्तशिरः फलाढ्या	
स	
स चापकोटी निहितैकबाहुः	६६
स छिन्नमूलः क्षतजेन रेणुः	४३
स दक्षिणं तूणमुखेन वामं	५७
स राजलोकः कृतपूर्वसंवित्	३१
सरोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैः	५८
सर्वैर्बलाङ्गैर्द्विरदप्रधानैः	५९
सशोणितैस्तेन शिलीमुखाग्रैः	६५
सान्निध्ययोगात् किल तत्र शच्याः	३
सेनानिवेशान् पृथिवीक्षितोऽपि	२
सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथः परेषां	६०
स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः	१३
ह	
हविः शमीपल्लवलाजगन्धी	२६
हस्तेन हस्तं परिगृह्य वध्वाः	२१
हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षात्	४९

sai 15

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha